सूचना

—:*:—

विदित हो कि मैंने जैनबालबोधकके चार भाग बनानेकी इच्छाकी थी किन्तु प्रमादसे बहुत दिन तक पूर्ति नहिं कर पाया। अर्थात् प्रथमभाग वी० नि० संवत् २४२६ सालमें बनाया था। द्वितीय भाग वीर नि० सं० २४४३ में और संशोधित द्वितीयभाग १० वर्षबाद वीर नि० सं० २४४३ में प्रकाशित किया था इससे ४ वर्ष बाद तृतीय भाग और उसके ६ मास बाद यह चतुर्थ भाग लिख पाया हूं।

इस भागके पाठोंकी सूची देखने वा आद्योपांत पढनेसे आपको मालूम होगा कि—इसके प्रत्येक पाठमें जैनधर्मकी शिक्षा व साधारण नीतिज्ञान यथाशक्ति भरा गया है। कारण इसका यह है कि—आजकल प्रारंभहीसे जैनधर्मकी शिक्षा न मिलनेसे व पाश्चात्य विद्याकी प्रचुरतासे अंगरेजी पढनेवाले जैनी लडकोंके चित्तमेंसे जैनधर्मसंबंधी सदाचार और महत्त्वका अंश क्रमशः निकलता जाता है। जिसका फल यह देखा जाता है—हमारे अनेक जैनी भाई ग्रेजुयेट होनेपर जैनधर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ होनेके कारण जैनधर्मका एक दम लोट फेर करके एक नवीन ही संस्कार कर देनेमें कटिबद्ध हो गये हैं। भविष्यतमें भी यदि प्रारंभसे ही जैनधर्मकी शिक्षा नहिं मिलैगी तो सब बालक प्रायः इस सनातन पवित्र जैनधर्मसे अनभिज्ञ तैयार होनेसे इस जैनधर्मका शीघ्र ही ह्रास हो जायगा इस कारण समस्त जैनी बालकोंको प्रारंभसे ही जैनधर्मकी और सदाचारताकी शिक्षा देनेके लिये जैनधर्मसंबंधी पाठोंकीही बहुलता रक्खी गई है।

इसके सिवाय इन भागोंमें यह भी विशेषता है कि—अनेक पाठशालाओंमें स्वास्थ्य, व धर्मसंबंधी जीवाजीवविचार आदि विषयोंकी पुस्तकें

निवेदन ।

जैनविद्यालयों और शिक्षाशालाओंमें पढने वाले छात्रोंको धार्मिक और लौकिक दोनों प्रकारकी शिक्षाका समुचित ज्ञान करानेके लिये सुप्रसिद्ध लेखक पं० पन्नालालजी बाकलीवाल कृत जैनबाल-बोधकका यह चौथा भाग सुलभजैनग्रंथमालामें उस्मानाबाद निवासी गांधी कस्तूरचंद्रजीके सुपुत्र बालचंदजीके स्मरणार्थ उनके सुपुत्र श्रीमान् शेठ नेमिचंदजी वकील द्वारा प्रदत्त द्रव्यसे छपाया जाता है आशा है हमारे बंधु इससे लाभ उठावेंगे.

विनीत—श्रीलाल जैन

मंत्री—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

६ विश्वकोपलेन, बाघबाजार कलकत्ता ।

पाठ और विषयोंकी सूची।

श्रीपरमात्मने नमः ।

जैनबालबोधक ।

चतुर्थ भाग ।

दोहा ।

देव धर्म गुरुको नमूं, जिन वच चितमें धार ।
जैनबालबोधक तुरिय, संग्रह करूं विचार ॥ १ ॥

श्रीमहावीर जिन प्रार्थना ।

(न्यायालंकार पं० मक्खनलाल जैन कृत)

हे गुणसागर वीर प्रभो जिन, शुद्ध रूप हो जग ख्याता ।
राग द्वेष सब दोष दूर कर, जगत समस्त वस्तु ज्ञाता ॥ १ ॥
इच्छा नहीं आपके स्वामी, जग अनादि है नियम यही ।
पुण्य पाप हम जो जब करते फल भोगें स्वयमेव वही ॥ २ ॥
तो भी ध्यान और गुण चिन्तन, करें आपका जो प्राणी ।
वे भी परमेश्वर हो जावें, यही बताया जिनवाणी ॥ ३ ॥
सरल चित्त हो शुद्ध भाव हों, अरु करुणा हो हितकारी ।
सब जीवोंका हित हो हमसे, लोक बन्धुता अति प्यारी ॥४॥

परके दोष कहें नहि कब हूं, हित मित सत्य वचन बोलें।
करें कार्य निष्काम सभी हम, हृदय ग्रंथि मनसे खोलें ॥ ५ ॥
गुरुजन गुणीजनोंकी सेवा, करें हृदयसे सुखकारी।
इन्द्रिय विजय और संयमसे, करें निजातम ब्रह्मचारी ॥ ६ ॥
वर्ण भेद रख मैत्री पूर्वक, भारतका उत्थान करें।
शुद्ध स्वदेश वस्तु वर्ते हम, सदा स्वपर कल्याण करें ॥ ७ ॥
धर्म कर्ममें अटल रहें हम, यही भावना करते हैं।
"लाल" बाल सिर नाय वीरको, ध्यान उन्हींका धरते हैं ॥८॥

१. स्तुतिसंग्रह।

दोहा।

तुम देवनके देव हो, सुख सागर गुनखान।
मूरति गुन को कहि सकै, करौं कछू थुति गान ॥ १ ॥
फलै कल्प तरु वेल ज्यों, वांछित सुर नर राज।
चिंतामनि ज्यों देत है, चिंतित अर्थ समाज ॥ २ ॥
स्वामी तेरी भक्तिसों, भक्त पुण्य उपजाय।
तीन अरथ सुख भोगवैं, तीनों जगके राय ॥ ३ ॥
तेरी थुति जे करत हैं, तिनकी थुति जग होय।
जे तुम पूजैं भावसों पूजनीक ते लोय ॥ ४ ॥
नमस्कार तुमकों करै विनय सहित शिरनाय।
वंदनीक ते होत हैं, उत्तम पदको पाय ॥ ५ ॥
जे आज्ञा पालैं प्रभू, तिन आज्ञा जगमांहि।
नाम जपै तिस नामका, जस फल जगमें छांहि ॥ ६ ॥

सफल नयन मेरे भये, तुम मुख शोभा देख।
जीभ सफल मेरी भई, तुम गुन नाम विशेख ॥ ७ ॥
सफल चित्त मेरो भयो, तुम गुन चिंतत देव।
पाय सफल आयें भये, हाथ सफल करि सेव ॥ ८ ॥
सीस सफल मेरौ भयौ, नमौ तुमै भगवान।
नर भौ लाहो मै लहा, चरन कमल सरधान ॥ ९ ॥
गणधर इन्द्र न जात हैं, तुम गुन-सागर पार।
कौन कथा मेरी तहां, लीजे प्रीति निहार ॥ १० ॥
तातैं वंदौं नाथ जी, नमौ सुगुन समुदाय।
तीर्थंकर पदकौं नमौं, नमौं जगत सुखदाय ॥ ११ ॥
पूजा थुति अरु वंदना, कीनी निज मन आन।
द्यानत करुनाभावसौं, कीजे आप समान ॥ १२ ॥

इति स्तुति बारसी।

ब्र० ज्ञानानन्दजीकृत श्रीगुरु स्तुति।

कुमति विदारी भवभयहारी, नग्न विहारी तप धनधारी।
आनन्द-सागर ज्ञान उजागर, शांति सुधाकर हे सुखकारी ॥
कर्म-विनाशी सुगुन प्रकाशी, जग जीवनके हितकारी।
नित सुख दुखमें शत्रु मित्रमें, घर अरु बनमें हे समधारी ॥ १ ॥
मार्ग बताया पार लगाया, जो आया तव चरन शरनमें।
इह जगवासी भव दुखियाके, हृदय विराजो आ इक छिनमें ॥
शीत परै है वर्षा भारी, अरु गरमीमें भानु तपे जब।
चौपथ तरु तल परवत ऊपरि, निहचल है तुम ध्यान धरहु जब ॥

भव तन भोग रोग लखि त्यागे, मोह मल्लको मार भगाया।
यातैं ही क्या अनुपम आनंद, उर न समाकर तनपर छाया॥
कब ऐसा वह शुभ दिन आवे, अमर निरंतर जब निज ध्यावे।
मुनि व्रत धरकरि कर्म खपावे, शिव रमनीको फिर आ पावे॥३॥

ब्र० ज्ञानानंदजीकृत शारदास्तवन।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे, जगदंबे अघनाश हमारे।
सत्यस्वरूपे मंगलरूपे, मन मंदिरमें तिष्ठ हमारे॥
जंबू स्वामी गौतम गणधर, हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे।
जगतें स्वयं पार है करके दे उपदेश बहुत जन तारे॥ १ ॥
कुंद कुंद अकलंक देव अरु, विद्यानन्द आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चंद्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे॥
तूने उत्तम तत्व प्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षय कर डारे।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रवि शशि छिपते नित्य विचारे॥
भवभयपीडित व्यथितचित्त जन, जब जो आये सरन तिहारे।
छिन भरमें उनके तब तुमने, करुनाकरि सब संकट टारे॥
जब तक विषयकषाय नशै नहि, कर्म शत्रु नहिं जांय निवारे।
तब तक ज्ञानानंद रहै नित, सब जीवनतैं समता धारे॥२॥

दर्शन दशक।

छप्पय।

देखे श्री जिनराज आज सब विघ्न विलाये।
देखे श्री जिनराज, आज सब मंगल आये॥

देखे श्री जिनराज, काज करना कछु नाही।
देखे श्री जिनराज, हौंस पूरी मन माही॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, भौजल अंजुलि जल भया।
चिंतामनि पारस कल्पतरु, मोह सबनिसौं उठ गया॥ १॥
देखे श्री जिनराज, भाज अघ जांहि दिसंतर।
देखे श्री जिनराज काज सब होंहि निरंतर।
देखे श्री जिनराज, राज मन वांछित करिये।
देखे श्री जिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये॥
तुम देखे श्री जिनराज पद, रोम रोम सुख पाइये।
धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथको नाइये॥
धन्य धन्य जिन धर्म, कर्मकौं छिनमें तोरै।
धन्य धन्य जिन धर्म, परम पदसौं हित जोरै॥
धन्य धन्य जिन धर्म, भर्मको मूल मिटावै।
धन्य धन्य जिन धर्म, शर्मकी राह बतावै॥
जग धन्य धन्य जिन धर्म यह, सो परगट तुमने किया।
भवि खेत पाप तप तपनकौं, मेघ रूप है सुख दिया॥ ३॥
तेज सूरसम कहूं तपत दुख दायक प्रानी।
कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरत मानी॥
वारिधिसम गुन कहूं, खारमें कौन भलप्पन।
पारस सम जस कहूं, आपसम करै न परतन॥
इन आदि पदारथ लोकमें, तुम समान क्यों दीजिये।
तुम महाराज अनुपम दशा, मोहि अनूपम कीजिये॥ ४॥

---

१ सुखकी, आत्म हितकी।

तब विलंब नहिं कियौ, चीर द्रोपदिको बाढ्यो।
तब विलंब नहि कियौ, सेठ सिंहासन चाढ्यो।
तब विलंब नहिं कियौ, सियातैं पावक टार्‌यो।
तब विलंब नहिं कियौ, नीर मातंग उवार्‌यौ।

इह विध अनेक दुख भगतके, कर दूर किय सुख अवनि।
प्रभु मोहि दुःख नासन विषै, अब विलंब कारन कवनि॥५॥

कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी।
राह आनि तुम ध्यान, फिकिर भाजी दुःखकारी॥
देखे श्रीजिनराज, पाप मिथ्यात विलायो।
पूजा थुति बहु भगति, करत सम्यक गुन आयौ॥

इस मारवाड़ संसारमैं, कल्पवृक्ष तुम दरस है।
प्रभु मोह देहु भवभव विषै, यह वांछा मन सरस है॥६॥

जय जय श्री जिनदेव, सेव तुमही अघ नाशक।
जय जय श्री जिनदेव, भेव षट द्रव्य प्रकाशक॥
जय जय श्री जिनराज, एक जो प्राणी ध्यावे।
जय जय श्री जिनदेव, टेव अहमेव मिटावै॥

जय जय श्री जिनदेव प्रभु, हेय कर्म रिपु दलनकौं।
हूजे सहाय संघरायजी, हम तयार शिव चलनको॥७॥

जय जिनंद आनंद कंद, सुरवृन्द वंद पद।
ज्ञानवान सब जान, सुगुन मनि खान आन पद॥
दीन दयाल कृपाल, भविक भौजाल निकालक।
आप बूझ सब सूझ, गूझ नहिं बहु जन पालक॥

प्रभु दीन बंधु करुनामयी, जग उधरन तारन तरन।
दुख रास निकास स्वदासकों, हमें एक तुम ही सरन॥ ८॥

देख नीक लखि रूप, वंदिकरि वंदनीक हुव।
पूजनीक पद पूज, ध्यानकर ध्यावनीक ध्रुव॥
हरष बढाय बनाय, गाय जस अंतर जामी।
दरब चढ़ाय अघाय, पाप संपति निधि स्वामी॥
तुम गुण अनेक मुख एक सौं, कौन भांति बरनन करौं।
मन वचन काय बहु प्रीतिसौं, राम नाम ही सों तरौं॥

चैत्यालय जो करै, धन्य सो श्रावक कहिये।
तामैं प्रतिमा धरै धन्य सो भी सरदहिये॥
जो दोनों विस्तरै, संघनायक ही जानौ।
बहुत जीवकों, धर्म्म मूल कारण सरधानौ॥
इस दुखम काल विकरालमैं, तेरो धर्म जहां चलै।
हे नाथ काल चौथौ तहां, इति भीति सब ही हलै॥ १०॥

दर्शन दशक कवित्त, चित्त सों पढ़े त्रिकालं।
प्रतिमा सन्मुख होय; खोय चिंता गृहजालं॥
सुखमैं निसिदिन जाय, अंत सुरराय कहावै।
सुर कहाय सिवपाय; जनम मृति जरा मिटावै॥
धनि जैन धर्म दीपक प्रगट, पाप तिमिर क्षयकार है।
लखि 'साहिब राय'[१] सु आंखि सौं, सरधा तारन हार है॥११॥

---

१ साहिबराय नामके—द्यानतरायजीके एक मित्र थे, उन्हीका नाम इनमें प्रेमसे सार्थ डाल दिया है।

२. धर्मोपदेश।

दोधकांतवेशरी छंद।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहि, धर्म विशेष जानि आराधहि।
धर्म प्रधान कहै सब कोय, अर्थ काम धर्महितैं होय। ४॥
धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वान।
धर्म पंथ साधन विना, नर तिर्यंच समान॥ १॥

अर्थ—सुपुरुष धर्म अर्थ इन तीन पदार्थोंका साधन करते हैं इनमेंसे भी धर्मको विशेषतया जानकर आराधन करते हैं सब कोई धर्म को ही प्रधान कहते है क्योंकि अर्थ (धन) और काम एकमात्र धर्म साधनसे ही होते हैं। धर्म करनेसे सांसारिक सुख और धर्मसे ही मुक्ति होती है उस धर्म पंथको (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको) साधे विना मनुष्य पशुकी समान है॥ १॥

कवित्त ३१ मात्रा।

जैसे पुरुष कोइ धनकारन, हींडत[1] दीप दीप चढ़ यानै[2]।
आवत हाथ रतन चिंतामणि, डारत जलैधि[3] जान पाषान॥
तैसैं भ्रमत भ्रमत भव सागर, पावत नर शरीर परधान।
धर्म यत्न नहिं करत 'बनारसि' खोवत वादि[4] जन्म अज्ञान॥२॥

मत्तगयंद सवैया।

ज्यों मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतंगज ईंधन ढोवै।
कंचन भाजन धूलि भरै शठ, मूढ सुधारससों पग धोवै॥

---

१ फिरता है. २ गाडी नौका रेल जहाज वगेरहमें. ३ समुद्रमें. ४ व्यर्थ,

बाहित कागउडावन कारण, डारि महामणि मूरख रोवै ।
त्यों यह दुर्लभदेह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै ॥ ३ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी अत्यंत दुर्लभ मनुष्य शरीरको पाकर धर्म साधनके विना व्यर्थ ही खो देता है वह मतिहीन शठ विना विवेकके मानो हाथीको सजाकर उससे ईंधन ढोता है, या सोनेके थालमें धूल भरता है, या अमृतसे पांव धोता है या कौवेको उडानेके लिये चिंतामणि रत्न फेंककर न मिलनेसे रोता है ॥ ३ ॥

कवित्त ३१ मात्रा ।

ज्यों जरमूर उखारि कल्पतरु, बोवत मूढ कनकको खेत ।
ज्यों गजराज वेचि गिरवर सम, कूर कुबुद्धि मोल खर लेत ।
जैसे छांडि रतन चिंता मणि, मूरख काचखंड मनदेत ।
तैसें धर्म विसार 'बनारसि' धावत अधम विषयसुख हेत ॥ ४ ॥

जो अधम प्राप्त हुये धर्मको छोड़कर विषयसुख भोगनेके लिये दौडते हैं वे बडे ही मूर्ख हैं. वे क्या करते हैं—मानो कल्प वृक्षको जड़मूलसे उखाड़कर धतूरेका खेत बोते हैं अथवा वे क्रूरबुद्धि पर्वत समान हस्तीको बेचकर गधा मोल लेते हैं. अथवा वे मूर्ख चिंतामणि रत्नको छोड़कर काचके खंड लेते हैं ।

सोरठा ।

ज्यों जल बूडत कोइ. वाहन तजि पाहन गहै ।
त्यों नर मूरख होइ, धर्म छांड़ि सेवत विषय ॥ ५ ॥

जैसे कोई जलमें डूबता हुआ नावको छोड़कर पत्थरको ग्रहण

करता है तैसैं ही जो नर मूरख हैं वे ही धर्म छोड़कर विषय सेवन करते हैं ॥ ५ ॥

३. इतिहासविद्या ।

इतिहास उस विद्याको कहते हैं जिसमें प्राचीन कालके राज्य व राजा और तीर्थंकर महात्माओंका यथार्थ वर्णन हो. ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपने बाप दादोंका हाल सुनना और पढना न चाहे ? किन्तु इस बातके पढनेकी सबको चाह होती है कि हमारे बाप दादे व उनसे पहिलेके लोग कैसे थे और जिसप्रकार हम इस अंगरेजी राज्यमें सुखी हैं, उसप्रकार हमारे पूर्वजोंने भी पहि- लेके राज्योंमें सुख भोगा था या दुःख ? देशकी दशा पहिलेके समय कैसी थी, कौन २ राजा प्रतापी व न्यायी हुये और कौन २ राजा अत्याचारी व अन्यायी हुये, पहिले समयमें किस २ वि- द्याके पारगामी कौन कौनसे महात्मा व विद्वान् हो गये. इत्यादि बातोंका जिस पुस्तकसे हाल मालूम हो, उसहीका नाम इतिहास है. फारसी पढे हुए इसको तवारीख और अंगरेजी पढे हुए इस को हिष्ट्री कहते हैं. हरएक देशके इतिहासोंके भिन्न २ पुस्तक बने हुए हैं परन्तु इतिहासोंमें अनेक पुरानी बातोंका पता नहिं लगा है. तथापि अनेक इतिहास पूरे भी हैं. इतिहासके मुख्य तीन भाग हैं. आर्योंका प्राचीन समय १ मुसलमानोंका समय २ और अंगरेजोंका समय ३. हे बालको ! तुमको भी इतिहास अवश्य पढने चाहिये क्योंकि इतिहासोंके पढनेसे अनेक प्रकारकी शिक्षायें मिलती हैं ।

४. लक्षण।

१। पदार्थोंको जाननेके लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप ये चार उपाय हैं।

२। बहुतसे मिले हुये पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थको जुदा करने वाले हेतु (करण) को लक्षण कहते हैं। जैसे जीवका लक्षण चेतना।

३। लक्षणके दो भेद हैं एक आत्मभूत दूसरा अनात्मभूत।

४। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें मिला हो उसे आत्मभूत लक्षण कहते हैं। जैसे,—अग्निका लक्षण उष्णपना।

५। जो लक्षण वस्तुके स्वरूपमें न मिला हो उसे अनात्मभूत लक्षण कहते हैं। जैसे—लठैतका लक्षण लाठीवाला।

६। सदोष लक्षणको लक्षणाभास कहते हैं। लक्षणके दोष तीन हैं एक अव्याप्ति दूसरा अतिव्याप्ति, तीसरा असंभव दोष।

७। जिस वस्तुका लक्षण किया जाय उसे लक्ष्य कहते हैं।

८। जो लक्षण लक्ष्यके एकही देशमें व्यापै सब लक्ष्योंमें न पाया जावे उसे अव्याप्ति दोष कहते हैं। जैसे पशुका लक्षण (पहचान) सींग कहना।

९। जो लक्षण किया जाय वह लक्षण लक्ष्य और अलक्ष्य दोनोंमें व्यापै उसे अतिव्याप्ति दोष कहते हैं। जैसे,—गौका लक्षण सींग करना।

१०। लक्ष्यके सिवाय अन्य पदार्थोंको अलक्ष्य कहते हैं।

११। जो लक्षण लक्ष्यमें सर्वथा पाया ही नहि जावे उसे असंभव दोष कहते हैं। जैसे,—अग्निका लक्षण शीतलता करना।

५. पूजाधिकार।

सवैया ३१ मात्रा।

लोपै दुरित हरै दुख संकट, आपै रोग रहित नितदेह।
पुण्य भंडार भरै जस प्रगटै, मुकतिपंथसों करै सनेह॥
रचै सुहाग देय शोभा जग, परभव पहुंचावत सुर गेह।
कुगति बंध दलमलहि 'बनारसि' वीतराग पूजाफल येह॥१॥

अर्थ— वीतराग भगवानकी पुजा पापोंको हरती है, दुखसंकटको दूर करती है हमेशह रोगरहित देहकरती है, पुण्यके भंडार भरती है, यशको प्रगट करती है, मोक्षमार्गमें प्रीति करवाती है. सौभाग्य रचती व जगतमें शोभा देती है, परभवमें स्वर्ग ले जाती है और कुगतिबंधको नष्ट करदेती है॥ १॥

देवलोक ताको घर आंगन, राज रिद्ध सेवहिं तस पाय।
ताके तन सौभाग्य आदिगुन, केलि विलास करै नित आय॥
सो नर तुरित तरै भवसागर, निर्मल होय मोक्षपद पाय।
द्रव्य भाव विधिसहित 'बनारसि' जो जिनवर पूजै मन लाय॥

जो कोई द्रव्य से भाव विधि सहित मन लगाकर जिनेंद्रभगवानको पूजता है उसकेलिये स्वर्ग तो अपने घरके आंगनकी समान होजाता है और राजसंपदा उसके चरण पूजती है उसके शरीरमें सौभाग्य आदि गुण नित्यकेलिये विलास करते रहते हैं और वह मनुष्य कर्ममलरहित होय शीघ्रही भवसागरसे तिर करके मोक्षपद पाजाता है॥ २॥

ज्यों नर रहै रसाय कोप करि, त्यों चिंताभय विमुख बखान।
ज्यों कायर शंकै रिपु देखत, त्यों दारिद्र भजै भय मान॥
ज्यों कुनार परिहरै पंडपति, त्यों दुर्गति छंडै पहिचान।
हितुज्यों विभो तजै नहि संगति, सो सब जिनपूजा फलजान॥

जिस प्रकार कोई नर गुस्सा होकर विमुख हो बैठ जाता है उसी प्रकार जिनभगवानकी पूजा करनेवालेके चिंता भय विमुख हो जाते हैं तथा शत्रुको देखकर जिस प्रकार कायर भयभीत होता है उसी प्रकार उसका दारिद्र भय मान कर भाग जाता है और जिस प्रकार कुनार निर्बल पतिको छोड़ देती है उसी प्रकार उसको दुर्गति छोड़ देती है तथा संपदायें मित्र समान उस पुरुषका संग नहिं छोडतीं॥ ३॥

जो जिनेंद्र पूजै फूलनसौं, सुर नयनन पूजा तिस होय।
वंदै भाव सहित जो जिनवर, वदंनीक त्रिभुवनमें सोय॥
जो जिन सुजस करे जन ताकी, महिमा इंद्र करे सुर लोय।
जो जिन ध्यान करत वानारसि, ध्यावे मुनि ताके गुन जोय॥ ४॥

जो कोई जिनेंद्र भगवानको पुष्पोंसे पूजता है वह मनुष्य देवोंके नयनोंसे पूजा जाता है अर्थात् देव उसका हमेशह दर्शन करते रहते हैं और जो कोई भावसहित भगवानकी वंदना करता है वह तीन लोकमें वंदनीक हो जाता है अर्थात् तीर्थंकर पद पा जाता है और जिनेंद्र भगवानके गुण गाता है उसकी स्वर्गलोकमें इन्द्र प्रशंसा करता है तथा जो कोई जिनेंद्र भगवान का ध्यान करता है उस पुरुषका ध्यान मुनिगण किया करते है। अर्थात् वह सिद्धपदको पा जाता है जिसका ध्यान मुनिजन हमेशह किया करते हैं॥ ४॥

६. कालविभाग.

———:o:———

सृष्टि अनादि है। इसका कर्त्ता वा हर्त्ता कोई नहीं है परन्तु भिन्न भिन्न कालमें इसका परिवर्तन होता रहता है। परिवर्त्तन भी दो प्रकारसे होता है अर्थात् एक तौ वृद्धिरूप एक ह्रासरूप। जिसका नाम उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल है। उत्सर्पणीकाल क्रमसे उन्नतिरूप (विकाशरूप) होता है अवसर्पणीकाल ह्रासरूप (अवनतिरूप) होता है। उत्सर्पणीकालमें जीवोंकी आयु कायादि क्रम २ से एक खासहद् तक बढते रहते हैं और अवसर्पणीकालमें क्रमसे घटते २ एक हद्तक घट जाते हैं। प्रत्येक काल दश कोडाकोडी सागरका होता है सागरकी गिनती अंकोंसे नहिं कह सकते इस लिये इस संख्याका नाम असंख्यातवर्ष है। दोनो कालोंको मिलाकर वीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्प काल होता है।

प्रत्येक उत्सर्पिणीकालके छह छह विभाग माने गये हैं। अवनतिरूप अवसर्पिणीकालके पहिले विभागका नाम सुषमा सुषमा काल है यह समय चार कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इस समयके मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है। शरीरकी ऊंचाई तीन कोशकी (छह हजार धनुष या १२००० गजकी) होती है। ये मनुष्य वडे ही सुंदर सरल चित्तके होते हैं। भोजन की इच्छा तीन दिन वाद होती है। और इच्छा होते ही कल्प वृक्षोंसे प्राप्त हुवा भोजन बेरकी बराबर करते हैं। इनके मल

मूत्रकी बाधा वा कोई बीमारी नहिं होती। पुरुष स्त्री दोनों एक ही साथ एक ही उदरसे पैदा होते हैं। युवा होकर पति पत्नी-वत् व्यवहार करते हैं. इस कालमें इस भूमिको भोगभूमि कहते हैं। मनुष्यको भोगभूमियोंमें बहन भाईकासा नाना मानना नहिं होता। वस्त्र आभूषण आदि भोगोपभोगकी सामग्री दश प्रकारके कल्प वृक्षोंसे प्राप्त होती है। ये कल्पवृक्ष पृथिवी जाति के परमाणुओंके होते हैं, वनस्पति जातिके नहिं होते। पुत्री पुत्रके पैदा होते ही माता पिता उसी वक्त मर जाते हैं। बालक अपने अंगूठेका रस चूस २ कर ४६ दिनमें पूर्ण युवा हो जाते हैं। स्त्री पुरुष दोनों साथ मरते हैं। मरते समय स्त्रीको छींक और पुरुषको जंभाई आती है। इस समयमें क्रमसे सबकी आयु कायादि कम होते जाते हैं।

इस उत्तम भोगभूमिके पश्चात् तीन कोड़ाकोड़ी सागरका सुषमा काल आता है इस कालमें मध्यम भोग भूमिकी सी सब बातें होती हैं अर्थात् इस कालके प्रारंभ होनेके समय मनुष्योंकी ऊंचाई घटकर दो कोशकी (आठ हजार गजकी) आयु दो पल्यकी होती है। यह भी क्रमशः घटती जाती है। भोजन दो दिन बाद बहेड़ेकी बराबर करते हैं। भोजनादि सामग्री सब कल्पवृक्षोंसे पाते हैं। इन दोनों कालोंमें कोई राजा महाराजा नहिं होता सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश भी ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षोंके सामने प्रगट नहिं होता। सिंहादि क्रूर जन्तुओंका भी स्वभाव शांत रहता है।

इसके पश्चात् सुषमादुःषमा नामका तीसरा विभाग दो

कोड़ाकोड़ी सागरका होता है। इस विभागके मनुष्योंकी आयु एक पल्यकी और ऊंचाई एक कोसकी (चार हजार गजकी) होती है। इस कालके मनुष्य एक दिन बाद आंवले बराबर खाते हैं। इस कालमें भी आयुकायादि क्रमसे घटते जाते हैं, यद्यपि इतिहासका प्रारम्भ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालके प्रथम विभागसे ही प्रारम्भ होता है, परन्तु प्रकृत इतिहासका प्रारंभ तीसरे विभागके अंतसे ही होता है क्योंकि इस तीसरे हिस्सेके अंत तक मनुष्योंको विना परिश्रमके भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे ही प्राप्त होती रहती है और इनमें कोई धर्म कर्मका आचरण भी नहिं रहता जिससे कि मनुष्योंके जीवन चरित्रमें परिवर्तन हो। इस तीसरे कालके अंतमें ही कुलकरोंकी (मनुओं की) उत्पत्ति होती है। कुलकरोंकी उत्पत्तिसे पहिले मनुष्योंका कोई नाम नहिं होता, स्त्रियां पुरुषोंको आर्य और पुरुष स्त्रियोंको आर्ये कहकर पुकारते हैं और इस समयमें कोई वर्ण भेद भी नहिं होता सब एकसे होते हैं।

चौथा विभाग व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोड़ी सागरका होता है, इस कालका नाम दुःपमासुषमा काल होता है। इसके प्रारंभमें मनुष्यकी आयु ८४ लाख पूर्वकी होती है। और शरीरकी ऊंचाई ग्यारह सौ गजकी होती है, इस कालके अंतमें जाकर शरीरकी ऊंचाई ७ हाथकी रह जाती है, यह समय कर्म भूमिका कहलाता है, क्योंकि इस समयमें मनुष्योंका जीवन धारण करनेके लिये व्यापारादि कार्य (कर्म) करने पड़ते हैं। राज्य, व्यापार, धर्म, विवाह, विद्याध्ययनादि समस्त कार्य इसी

कालके प्रारम्भसे होने लगते हैं। इसी हिस्सेमें जीवन चलानेके अन्यान्य साधनोंकी उन्नतिका प्रारम्भ होता है। इसी कालमें चौवीस तीर्थंकर (महा पुरुष) उत्पन्न होते हैं और अपने ज्ञानसे सच्चे धर्मका प्रकाश करते हैं। इनकी उपाधि तीर्थंकर हुआ करती है, इस चौथे काल तक ही मोक्षमार्ग जारी रहता है, इस के बाद मोक्ष जाना बंद हो जाता है इस कालको ही सतयुग कह सकते हैं। चक्रवर्ती, नारायण प्रतिनारायण आदि प्रसिद्ध शलाका पुरुष भी इसी चौथे कालमें होते हैं, जिनका कुछ वर्णन आगेके पाठमें दिया जायगा।

इसके पश्चात् अवसर्पिणी कालका पांचवा हिस्सा दुःषमा नामका होता है, यह इक्कीस हजार वर्षका होता है। इसमें मनुष्य शरीरकी आयु बल और ऊंचाई बहुत कम हो जाती है। इसके प्रारम्भमें तो सात हाथका शरीर होता है और १२० वर्षकी आयु होती है। फिर प्रति हजार वर्षमें पांच वर्ष आयु घटती जाती है। अंत समयमें दो हाथका शरीर और २० वर्षकी आयु रह जाती है उस समय मनुष्य मांसभक्षी और वृक्षोंपर बंदरोंकी समान रहने वाले होते हैं। धर्मका सर्वथा अभाव हो जाता है।

छठे भागमें और भी अवनति हो जाती है, इस छठे कालका नाम दुःषमादुःषमा है, इस कालके जब उनचास दिन बाकी रह जाते हैं, धूल, हवा, पानी, अग्नि, पत्थर, मिट्टी, लकड़ीकी सात सात दिनों तक वर्षा होती है. अर्थात् प्रबलता होती है और इसकी प्रबलताके कारण आर्यखंडके संपूर्ण पशु, पक्षी मनुष्य नगर, ग्राम, देश, मकान आदि नष्ट हो जाते हैं। इसीको प्रलय

काल कहते हैं । केवल ऐसे प्राणी जो माता पिताके संयोगसे उत्पन्न होते हैं, देवोंके द्वारा स्वयं पहाड़ोंकी गुफा वगेरह सुरक्षित स्थानोंमें जाकर अपनेको बचालेते हैं। यही समय अवनति रूप अवसर्पिणी नामकी पूर्णताका अंत समय है।

इस प्रकार अवसर्पिणी काल पूरा हो जानेके पश्चात् उत्सर्पिणी कालका (उन्नति रूप कालका) प्रारंभ होता है. इसके भी छह विभाग होते हैं। पहिला विभाग वही इक्कीस हजार वर्ष का दुःषमादुःषमा काल होता है, इस कालके प्रारंभमें जो मनुष्य पशु बच गये थे, वे आकर वसते हैं और क्रमसे उन्नति करते जाते हैं। २१ हजार वर्षके वाद फिर २१ हजार वर्षका दूसरा दुःषमा काल आता है इसमें भी मनुष्योंकी आयुकायादि क्रमसे बढ़ते जाते हैं, इसके वाद तीसरा सुषमा दुःषमा चौथा दुःषमासुषमा पांचवाँ सुषमा वा छठा सुषमासुषमा काल होता है। इनमें आयुकायादिकी वृद्धि होती जाती है। तीसरे कालमें अर्थात् अवसर्पिणीके चौथे कालकी समान फिर चौवीस तीर्थंकरादि ६३ शलाका पुरुष (महापुरुष) होते हैं और धर्मकी प्रवृत्ति बढ़ती २ जाती है। इस कर्मभूमिके वाद चौथे कालमें जघन्य भोगभूमि (अवसर्पिणीके तीसरे कालकी समान) पांचवेंमें मध्यम भोगभूमि, छट्ठेमें उत्तम भोगभूमि इस प्रकार होकर उत्सर्पिणी काल पूर्ण हो जाता है उसके वाद फिर अवसर्पिणी काल पूर्वकी समान प्रारंभ होता है।

इस प्रकार आर्य खंडमें समयका परिवर्तन हमेशह होता रहता है। वर्तमान समय अवसर्पिणी कालका (अवनति रूप

कालका) पांचवां विभाग वर्त्त रहा है, इसके इक्कीस हजार वर्षमें से २४५० के करीब बीत चुके हैं। इसके पहिले चौथा काल (जिसमें तीर्थंकरादि ६३ शलाका पुरुष हो गये हैं) बीत चुका है, उस कालकी आदिमें अर्थात् तीसरे कालके अंतमें जब एक पल्य रहजाता है, उसमें १४ कुलकर होते हैं वहांसे इतिहासका प्रारंभ होता है।

७. प्रमाण।

१। सच्चे ज्ञानको प्रमाण कहते हैं, प्रमाणके दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष प्रमाण दूसरा परोक्ष प्रमाण।

२। जो पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकारका है एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

३। जो ज्ञान इंद्रिय और मनकी सहायतासे पदार्थको एक देश स्पष्ट जाने उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

४। जो ज्ञान विना किसीकी सहायताके पदार्थको स्पष्ट जानें उसे पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

५। पारमार्थिक प्रत्यक्ष दो प्रकारका है। एक विकल पारमार्थिक, दूसरा सकल पारमार्थिक।

६। रूपी पदार्थोंको विना किसीकी सहायताके स्पष्ट जाने उसे विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

७। विकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकारका है। एकका नाम अवधिज्ञान, दूसरेका नाम मनःपर्यय ज्ञान है।

८। द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिये जो रूपी पदार्थोंको स्पष्ट जानें उसे अवधिज्ञान कहते हैं

९। द्रव्य क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लिये हुये जो दूसरेके मनमें तिष्ठते हुये रूपी पदार्थको स्पष्ट जाने उसे मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं।

१०। केवल ज्ञानको सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

११। जो त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थोंको युगपत् (एकसाथ) स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं।

१२। जो दूसरेकी सहायतासे पदार्थको स्पष्ट जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

१३। परोक्ष प्रमाण पांच प्रकारका है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

१४। पहले अनुभव किये हुये पदार्थके याद करनेको स्मृति कहते हैं।

१५। स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थोंमें जोडरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे—यह वही मनुष्य है जिसे कल देखा था। इसके एकत्व प्रत्यभिज्ञान, सादृश्य प्रत्यभिज्ञान आदि अनेक भेद हैं।

१६। स्मृति और प्रत्यक्षके विषय भूत पदार्थमें एकता दिखाते हुये जोडरूप ज्ञानको एकत्व प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे—यह वही मनुष्य है जिसे कल देखा था।

१७। स्मृति और प्रत्यक्षके विषयभूत पदार्थोंमें सदृशता दिखाते हुये जोड़रूप ज्ञानको सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। जैसे.—यह गौ गवयके (रोजके) सदृश है।

१८। व्याप्तिके ज्ञानको तर्क (चिंता) कहते हैं।

१९। साध्यसाधनके अविनाभाव संबंधको व्याप्ति कहते हैं। अर्थात्–जहां जहां साधन (हेतु) हो, वहां वहां साध्यका होना और जहां २ साध्य नहीं होय वहां २ साधनके भी न होनेको अविनाभाव संबंध कहते हैं। जैसे,—जहां २ धूम है वहां २ अग्नि है और जहां २ अग्नि नहीं है वहां वहां धूम भी नहीं है।

२०। जो साध्यके विना न हो उसे साधन (हेतु) कहते हैं। जैसे—अग्निका हेतु (साधन) धूम है।

२१। इष्ट अवाधित और असिद्ध पदार्थको साध्य कहते हैं।

२२। वादी प्रतिवादी दोनों ही जिसको सिद्ध (निश्चय) करना चाहैं उसको इष्ट कहते हैं।

२३। जो दूसरे प्रमाणोंसे वाधित न हो अर्थात् खंडित न हो उसे अवाधित कहते हैं। जैसे,—अग्निमें ठंडापन साधना प्रत्यक्ष प्रमाणसे वाधित है इस कारण यह ठंडापन साध्य नहीं हो सकता।

२४। जो दूसरे प्रमाणोंसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निश्चय न हो उसे असिद्ध कहते हैं।

२५। साधनके द्वारा (हेतुसे) साध्यके ज्ञान होनेको अनुमान कहते हैं।

२६। सदोष हेतुको हेत्वाभास कहते हैं। हेत्वाभास चार प्रकारका है, १ असिद्धहेत्वाभास. २ विरुद्धहेत्वाभास, ३ अनैकांतिकहेत्वाभास (व्यभिचारी हेत्वाभास) और ४ अकिंचित्कर-हेत्वाभास।

२७। जिस हेतुके अभावका (न होनेका) निश्चय हो अथवा उसके सद्भावमें (होनेमें) संदेह (शक) हो उसको असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं। जैसे,—"शब्द नित्य है, क्योंकि शब्द नेत्रका विषय है" परंतु शब्द कर्णका विषय है, नेत्रका विषय नहिं हो सकता इस कारण 'नेत्रका विषय' यह हेतु देना असिद्धहेत्वाभास है।

२८। साध्यसे विरुद्ध पदार्थके साथ जिस हेतुकी व्याप्ति हो उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे,—"शब्द नित्य है क्योंकि परिणामी (क्षण क्षणमें पलटनेवाला) है. इस अनुमानमें परिणामी हेतुकी व्याप्ति अनित्यके साथ है, नित्यके साथ नहीं इसलिये नित्यत्वका परिणामी हेतु देना विरुद्धहेत्वाभास है।

२९। जो हेतु पक्ष, सपक्ष, विपक्ष इन तीनोंमें व्यापे उसको अनैकांतिक (व्यभिचारी) हेत्वाभास कहते हैं। जैसे,—"इस कमरेमें धूम है क्योंकि इसमें अग्नि है।" यहां अग्नि हेतु पक्ष सपक्ष विपक्ष तीनोंमें व्यापक होनेसे अनैकांतिकहेत्वाभास हो गया।

३०। जहां साध्यके रहनेका शक हो उसे पक्ष कहते हैं। जैसे ऊपरके दृष्टांतमें कमरा।

३१। जहां साध्यके सद्भावका (मोजूदगीका) निश्चय हो उसे सपक्ष कहते हैं. जैसे धूमका सपक्ष गीले ईंधनसे मिली हुई अग्निवाला रसोई घर है।

३२। जहां साध्यके अभावका (गैर मोजूदगीका) निश्चय हो उसे विपक्ष कहते हैं जैसे अग्निसे तपा हुवा लोहेका गोला।

३३। जो हेतु कुछ भी कार्य (साध्यकी सिद्धि) करनेमें

समर्थ न हो उसे अकिंचित्करहेत्वाभास कहते हैं। इसके अनेक भेद हैं सो दूसरे ग्रंथोंसे जानना।

३४। मिथ्याज्ञानको प्रमाणाभास कहते है। प्रमाणाभास तीन प्रकारका है। संशय, विपर्यय, और अनध्यवसाय।

३५। विरुद्ध अनेक कोटीके स्पर्श करनेवाले ज्ञानको संशय कहते हैं। जैसे,—यह सीप है या चांदी।

३६। विपरीत एक कोटीके निश्चय करनेवाले ज्ञानको विपर्यय कहते हैं। जैसे,—सीपको चांदी जान लेना।

३७। 'यह क्या है' ऐसे प्रतिभासको अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे,—मार्ग चलते हुयेको तृण वगैरहका स्पर्श होनेका अनिश्चित ज्ञान होना।

८. गुरुसेवाका उपदेश.

अडिल्ल छंद।

पाप पंथ परिहरहिं, धरहिं शुभ पंथ पग।
पर उपकार निमित्त, बखानहिं मोक्ष मग॥
सदा अवंछित चित्त, जु तारन तरन जग।
ऐसे गुरुको सेवत, भागहिं करम ठग॥ १॥

जिन्होंने पापका मार्ग छोड़ दिया और पुण्यमार्गमें चलते हैं तथा परोपकारके लिये मोक्षमार्गका उपदेश करते हैं, चित्तमें किसी भी प्रकारकी वांछा न रखकर जगसे आप तरते और दूसरोंको तारते हैं, ऐसे गुरुकी सेवा पूजा करनेसे कर्मरूपी ठग भाग जाते हैं॥ १॥

हरिगीतिका छंद ।

मिथ्यात दलन सिद्धांतसाधक, मुकति मारग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुराय पाप बखानिये ।
संसार सागर तरन तारन, गुरु जहाज विशेखिये ।
जगमांहि गुरुसम कह बनारसि, और कोउ न देखिये ॥

मिथ्या ज्ञानको दलनेवाले और सिद्धांत वा मुक्तिमार्गको साधनेवाले सुगति दुर्गति करनी अकरनी तथा पुराय पापको वर्णन करनेवाले संसार सागर तरने और तारनेवाले गुरु एक प्रकारके जहाज हैं। इस कारण जगतमें गुरुकी समान अन्य कोई हितु नहीं है।

मत्तगयंद

मातु पिता सुत बंधु सखी जन, मीत हितू सुख कामन पीके ।
सेवक साज मतंगज बाज, महादल राज रथी रथनीके ।
दुर्गति जाय दुखी विललाय, परै सिर आय अकेलहि जीके ।
पंथ कुपंथ गुरू समझावत, और सगे सब स्वारथ हीके ॥ २ ॥

माता, पिता, पुत्र, भ्राता, सखीजन, हितैषी मित्र, सुखदायक स्त्री, तथा सजे हुये सेवक, हाथी, घोड़े, रथ, रथचढ़े राजा वा सेनापति ये सब अपने २ मतलबके हैं, जब कि यह जीव दुर्गतिमें जाकर दुखी होकर बिलबिलाता है तौ अकेला ही दुःख भोगता है कोई काम नहीं आते, गुरु ही एक ऐसे हैं, जो पापमार्ग व मोक्षमार्ग समझाकर कुगतिसे बचाते हैं । ३ ॥

वस्तुछंद ।

ध्यान धारन ध्यान धारन विषय सुख त्याग ।
करुना रस आदरन, भूमि सैन इंद्रीनिरोधन ॥
व्रतसंयम दान तप, भगति भाव सिद्धांत साधन ।
ये सब काम न आवहिं, ज्यों बिन नायक सैन ।
शिव सुख हेतु बनारसी, कर प्रतीति गुरुबैन ॥ ४ ॥

ध्यानका धारन करना, विषयसुखका त्याग करना, करुणारस का आदर करना, जमीनपर सोना, इन्द्रियोंको वशमें करना, व्रत, तप, संयम, दान, भक्ति भाव, सिद्धांतका पठन पाठन, ये सब कार्य बिना नायकके सेनाकी तरह गुरुके बिना कोई कामके नहीं हैं, इसकारण शिवसुखके लिये गुरुके वचनानुसार ही प्रतीति करके चलना चाहिये ॥ ४ ॥

——:०:——

९ चौदह कुलकर ।

जब तीसरे कालके अंत होनेमें एक पल्यका आठवां भाग बाकी रहा तब आषाढ़ सुदी १५ पूर्णमासीके दिन सायंकालको पश्चिम में तो सूर्य अस्त होता दिखाई दिया और पूर्वमें चन्द्रमाका उदय होता दिखाई दिया । यद्यपि सूर्य चंद्रमा अनादि कालसे अस्त उदय होते रहते हैं परन्तु इन तीनों कालोंमें ज्योतिरंग जातिके कल्पवृक्षोंके प्रकाशमें दिखाई नहिं देते थे, सो तीसरे कालका जब अंत हो गया तो कल्पवृक्षोंका प्रकाश कम होनेसे सूर्य चंद्रमा

दीखने लगे। इनको देखकर उस समयके भोगभूमिया लोग बहुत डरे और डरकर उनमेंसे जो अधिक प्रतापशाली काल परिवर्त्तनके नियमोंको जाननेवाले प्रतिश्रुत नामके एक महाशय थे, सब जनोंने उन्हीके पास जाकर सूर्य चन्द्रमाको दिखाकर अपने भयका हाल कहा। उन्होंने सबको समझाया—ये सूर्य चंद्रमा हमेशहसे रहते हैं कल्प वृक्षोंका प्रकाश क्षीण होनेसे अब दीखने लगे हैं। इनसे डरनेका कोई कारण नहीं है और भविष्यमें जीवन निर्वाह कैसा होगा वे सब बातें भी बताकर उनका भय दूर कर दिया, ये ही प्रतिश्रुत पहिले कुलकर हुये।

इनके असंख्यात करोड़ों वर्ष बाद सन्मति नामके दूसरे कुल-कर हुये, इनके समयमें ज्योतिरंग जातिके वृक्षोंका प्रकाश इतना मंद हो गया कि नक्षत्र और तारोंका प्रकाश भी नहिं दबा जिससे आकाशमें चारों तरफ तारे दिखाई देने लगे, उन्हे देखकर उस समयके मनुष्योंको फिर भय हुआ और इनके पास आकर भयका कारण कहा तो उन्होंने और नक्षत्रोंके (ज्योतिष चक्रके) हमेशह रहनेका तत्त्व समझाया और रात्रि दिन सूर्य ग्रहण चंद्र ग्रहण सूर्यका उत्तरायन दक्षिणायन होना आदि सब भेद समझा ज्योतिष विद्याकी प्रवृत्ति की।

इनके भी असंख्यात करोड़ वर्षोंबाद क्षेमंकर नामके तीसरे कुलकर हुये। अबतक सिंहादि क्रूर जंतु शांत थे पर इनके सम-यमें उनके क्रूरता आगई और वे मनुष्योंको तकलीफ देने लगे। पहिले मनुष्य इन पशुओंके साथ रहते थे, प्यार करते थे परन्तु

क्षेमंकरके समझानेसे अब उन पशुओंसे जुदे रहने लगे और उनका विश्वास करना छोड दिया।

इनके असंख्यात करोड वर्ष बाद चौथे क्षेमंधर नामके कुलकर हुये। इनके समयमें सिंहादि जंतुओंकी क्रूरता और भी बढ़ गई थी और इनसे बचनेके लिये इन्होंने लाठी सोटा रखनेकी सम्मति दी।

इनके पश्चात् असंख्यात करोड वर्षबाद पांचवें सीमंकर नामके कुलकर हुये। इनके समयमें कल्पवृक्ष बहुत कम हो गये थे और फल भी थोड़ा देने लगे थे इस कारण मनुष्योंमें विवाद होने लगा. इन्होंने अपनी बुद्धिसे कल्पवृक्षोंकी हद्द बांधदी थी और अपनी हद्दके अनुसार उससे फल लेकर काम चलाने लगे।

इनके पश्चात् असंख्यात करोड वर्ष बीते बाद सीमंधर नाम के छठे कुलकर हुये। इनके समयमें कल्पवृक्षोंके लिये विवाद और भी अधिक होने लगा। क्योंकि—कल्पवृक्ष बहुत घट गये थे और (वस्त्रादिवस्तुरूप) फल भी बहुत कम देते थे। अतएव इन कुलकरने उनका विवाद दूर किया और फिर नये प्रकारसे वृक्षोंकी हद्द बांधी।

इनके पश्चात् फिर सातवें कुलकर विमलवाहन हुये। इन्होंने हाथी घोडा ऊंट बैल आदि सवारी करने योग्य पशुओं पर सवारी करना बताया।

इनके पश्चात् असंख्यात करोड वर्षबाद आठवें कुलकर चक्षुष्मान् नामके हुये। इनके समयसे पहिले तो माता पिता

संतानकी उत्पत्ति होनेके साथ ही मर जाते थे परंतु अब इनके समयमें मातापिता संतानकी उत्पत्ति होनेके क्षण भर बाद मरने लगे सो इन्होंने सब समझाया कि संतान क्यों होती है?

इनके असंख्यात करोड वर्षबाद नवमे कुलकर यशस्वान् नामके हुये। इनके समयमें मातापिता कुछ समय संतानके साथ ठहर कर मरने लगे। इन्होंने संतानको आशीर्वादादि देनेकी विधि बताई।

इनके पश्चात् असंख्यात करोड वर्षबाद दशवें मनु अभिचंद्र हुये। इनके समयमें प्रजा अपनी संतानके साथ क्रीडा करने लगी थी। इन कुलकरने क्रीडा करने वा संतान पालनेकी विधि बतलाई थी।

इनके सैकडों वर्षबाद चंद्राभ नामके ग्यारहवें कुलकर उत्पन्न हुये। इनके समयमें प्रजा संतानके साथ पहिलेसे और भी अधिक दिनों तक रह कर मरने लगी।

इनके पश्चात् बारहवें कुलकर मरुदेव नामके हुये। उस समय की व्यवस्था सब इनके ही अधीन थी। इन्होंने जलमार्गमें गमन करनेके लिये छोटी बडी नाव चलानेका उपाय बताया, पहाडों पर चढनेके लिये सीढियां बनाना बताया। इन्हीके समयमें छोटी बडी कई नदियां और उप समुद्र उत्पन्न हुये (मेघभी न्यूनाधिक रीतिसे बरसने लगे) यहां तक स्त्री और पुरुष दोनों युगल उत्पन्न होते थे।

इनके कुछ समय बाद तेरहवें प्रसेनजित नामके कुलकर हुये। इनके समय संतान जरायुसे ढकी हुई उत्पन्न होने लगी। इन्होंने

उसको फाडकर संतान निकालनेका उपाय बताया। प्रसेनजित् अपनी माताके युगल उत्पन्न नहीं हुये थे। अकेले ही उत्पन्न हुये। इनके पिताने जिसके अकेली पुत्री पैदा हुई उससे विवाह करके विवाह करनेकी पद्धति प्रचलित की थी।

इनके पश्चात् चौदहवे नाभिराय कुलकर हुये, जिनका हाल अगले पाठमें जुदा बताया जायगा।

इन कुलकरोंमें किसीको अवधिज्ञान व किसीको ज्ञातिस्मरण होता था। प्रजाको जीवनका उपाय बतानेके कारण ये मनु कहलाते हैं और इन्होंने कई कुलोंकी स्थापना की अतः इनको कुलकर भी कहने लगे। इन्होंने दोषी मनुष्योंको दंड देनेका विधान भी बताया था और वह इस प्रकार था—

पहिलेके प्रतिश्रुत, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर इन पांच कुलकरोंने दोष होने पर दोषियोंको 'हा' इस प्रकार पश्चातापरूप बोल देना ही दंड रक्खा था। इतने दंडसे ही वे फिर कभी दोष नहिं करते थे। और सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्, अभिचंद्र इन पांचोंने 'हा' 'मा' इस प्रकार दो शब्दोंको बोलना ही दंड रक्खा था और अंतके चार कुलकरोंने 'हा' 'मा' 'धिक्' इस प्रकार तीन शब्द बोलकर दंड देना निश्चय किया था।

१०. नय।

१। वस्तुके एक देशको जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं।

२। नय दो प्रकारका है। एक निश्चयनय दूसरा व्यवहार-नय। व्यवहारनयको उपनय भी कहते हैं।

३। वस्तुके किसी असली अंशको ग्रहण करनेवाला ज्ञान निश्चय नय है। जैसे—मिट्टीके घड़ेको मिट्टीका घड़ा कहना।

४। किसी निमित्तके वशसे एक पदार्थको दूसरे पदार्थ रूप जाननेवाले ज्ञानको व्यवहारनय कहते हैं। जैसे,-मिट्टीके घड़ेको घी रहनेके निमित्तसे घीका घड़ा कहना।

५। निश्चय नय दो प्रकारका है। एक द्रव्यार्थिकनय, दूसरा पर्यायार्थिकनय।

६। द्रव्य अर्थात् सामान्यको ग्रहण करै उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

७। जो विशेष अर्थात् द्रव्यके किसी गुण या पर्यायको विषय करै उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं।

८। द्रव्यार्थिकनय, नैगम, संग्रह और व्यवहारके भेदसे तीन प्रकारका है।

९। दो पदार्थोंमेंसे एकको गौण और दूसरेको प्रधान करके भेद अथवा अभेदको विषय करनेवाला ज्ञान नैगम नय है। तथा पदार्थके संकल्पको ग्रहण करनेवाला ज्ञान नैगम नय है। जैसे,—कोई आदमी रसोई घरमें चावल लेकर बीनता था। किसीने

उससे पूछा कि क्या कर रहे हो? तब उसने उत्तर दिया कि-भात बना रहा हूं। यहां चावल और भातमें अभेद विवक्षा है। अथवा चावलोंमें भातका संकल्प है।

१०। अपनी जातिका विरोध नहिं करके अनेक विषयोंका एकपनसे ग्रहण करै उसको संग्रह नय कहते हैं। जैसे—जीवके कहनेसे चारों गतिके सब जीवोंका ग्रहण होता है।

११। संग्रह नयसे ग्रहण किये हुये पदार्थको विधिपूर्वक भेद करै सो व्यवहार नय है। जैसे जीवके भेद त्रस स्थावर आदि करने।

१२। पर्यायार्थिक नय चार प्रकारके हैं, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत।

१३। भूत भविष्यतकी अपेक्षा नहिं करकें वर्त्तमान पर्यायमात्रको ग्रहण करै सो ऋजुसूत्र नय है।

१४। लिंग, कारक, वचन, काल, उपसर्ग आदिके भेदसे जो पदार्थको भेदरूप ग्रहण करै उसे शब्द नय कहते हैं। जैसे—दार, भार्या, कलत्र ये तीनों भिन्न २ लिंगके शब्द एक ही स्त्री पदार्थके वाचक हैं सो यह नय स्त्री पदार्थको तीन भेदरूप ग्रहण करता है इसी प्रकार कारकादिकके दृष्टांत जानने।

१५। अनेक अर्थोंको छोड़कर जो एक ही अर्थमें रूढ़ (प्रसिद्ध) हो, उसको जाने वा कहै सो समभिरूढ़ नय है। जैसे—गो शब्द के पृथ्वी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यतासे गो। नाम गाय वा वैलका ही ग्रहण किया जाता है सो उसको चलते, वैठते सोते सब अवस्थामें सब लोग गो ही कहते हैं तथा पीला

कपड़े पहरनेवालेको पीतांबर कहते हैं परंतु पीले कपड़े पहरने वाले सबको ही पीतांबर नहिं कहके श्रीकृष्णको ही पीतांबर कहते हैं क्योंकि यह शब्द श्रीकृष्णमें ही रूढ़ या प्रसिद्ध हो गया है।

१६। जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणमे पदार्थको ग्रहण करै वा कहै सो एवंभूत नय है। जैसें— पुजारीको पूजा करते समय ही पुजारी कहना अन्य समयमें नहिं कहना।

१७। व्यवहार नय (उपचार वा उपनय) तीन प्रकारका है सद्भूत व्यवहार नय, असद्भूत व्यवहार नय, और उपचरित व्यवहार नय, इसका दूसरा नाम उपचरितासद्भूत व्यवहार नय भी है।

१८। एक अखंड द्रव्यको भेदरूप विषय करनेवाले (जानने वाले) ज्ञानको सद्भूत व्यवहार नय कहते हैं। जैसे जीवके केवल ज्ञानादिक वा मतिज्ञानादिक गुण हैं. अथवा जीवको रागादि- भावोंका कर्त्ता कहना क्योंकि जीवकी सत्तामें ही रागादिक भाव- रूप पर्याय होती हैं।

१९। जो मिले हुये भिन्न पदार्थोंको अभेदरूप ग्रहण करै वा कहै सो असद्भूत व्यवहार नय है। जैसे—यह शरीर मेरा है। अथवा मिट्टीके घड़ेको घीका घड़ा कहना, तथा जीवको द्रव्यकर्म या शरीरादिक नोकर्मोंका कर्त्ता कहना।

१९। अत्यंत भिन्न पदार्थोंको जो अभेदरूप ग्रहण करै वा कहै सो उपचरित व्यवहार नय है। जैसे—हाथी, घोड़ा, महल मकान मेरे हैं तथा जीवको घटपटादिका कर्त्ता कहना।

२० । जो शुद्ध द्रव्यको ग्रहण करै उसे शुद्ध निश्चय नय कहते हैं । जैसे—जीवको शुद्ध दर्शन ज्ञान अर्थात् केवल दर्शन केवल ज्ञानका कर्त्ता कहना ।

२१ । जो अशुद्ध द्रव्यको ग्रहण करैं उसे अशुद्ध निश्चय नय कहते हैं । जैसे जीवको क्षयोपशमरूप मतिज्ञानादिकका कर्त्ता कहना ।

——:o:——

११. जिन वचन सेवाका उपदेश ।

कुंडलिया छन्द ।

देव अदेव नही लखै, सुगुरु कुगुरु नहि सूझ ।
धर्म अधर्म गिनै नही, कर्म अकर्म न बूझ ॥
कर्म अकर्म न बूझ, गुण रु औगुण नहि जानहि ।
हित अनहित नहि सधै, निपुण मूरख नहि मानहि ॥
कहत बनारसि ज्ञान दृष्टि, नहि अध अवेवाहि ।
जैन वचन दृगहीन, लखे नहि देव अदेव हि ॥ १ ॥

अर्थ—जिन वचन रूपी नेत्रोंसे रहित अज्ञानी अंधे होते हैं । उनके ज्ञान दृष्टि नहिं होती इस कारण वे मूर्ख न तो देव कुदेव को पहिचानते, न कुगुरु सुगुरुको जानते, न धर्म अधर्मको गिनते और न कर्म अकर्म ही समझते, न उनसे हित अहित ही सधता मूरख पंडितमें भी भेद नहिं मानते अतएव जैन शास्त्रोंका स्वाध्याय (पठन पाठन) करते रहना चाहिये ॥ १ ॥

सवैया ३१ मात्रा ।

ताको मनुज जनम सब निष्फल, मन निष्फल निष्फल जुगकान।
गुण अर दोष विचार भेद विधि, ताहि महा दुर्लभ है ज्ञान ॥
ताको सुगम नरक दुख संकट, अगम्यपंथ पदवी निर्वान ।
जिनमत वचन दयारस गर्भित, जे न सुनत सिद्धांत वखान ॥

अर्थ—जिनमत वचन दयारस पूरित हैं ऐसे जैन सिद्धांतको जो नहिं सुनता उस मनुष्यका जन्म पाना व्यर्थ है । उसका मन वा कान पाना भी व्यर्थ है। उसके लिये गुणदोषोंका विचार करनेको विवेक मिलना भी दुर्लभ है तथा उसके लिये नरकमें जाकर दुख संकट सहने तो सुगम हैं किंतु मोक्षपद पाना बहुत मुस्किल है ॥ २ ॥

षट्पद (छप्पय) ।

अमृतको विष कहैं, नीरको पावक मानहिं ।
तेज तिमिर सम गिनहिं, मित्रको शत्रु बखानहिं ॥
पहुपमाल कहि नाग, रतन पत्थर सम तुल्लहिं।
चंद्र किरण आताप स्वरूप, इहि भांति जु भुल्लहिं ॥
करुणा निधान अमलान गुण, प्रगट बनारसि जैनमत ।
परमत समान जो मन धरत, सो अजान मूरख अपत ॥ ३ ॥

अर्थ—जैनमत (जैनागम) प्रगटतया निर्मल गुणवाली करुणाकी (दयाकी) खानि है। इसको जो कोई अन्य मतोंकी समान जानता है वह मूर्ख वा अज्ञानी अमृतको तो विष कहता है और जलको अग्नि मानता है, प्रकाशको अंधकारके समान गिनता है तथा मित्रको शत्रु कहता है । पुष्पोंकी मालाको सर्प

और रतनको पत्थरकी समान तुलना करता है। तथा चंद्रमाकी शीतल किरणोंको आतापकारी समझकर भूलता है॥ ३॥

मरहट्टा छंद।

शुभधर्म विकाशै, पाप विनाशै, कुपथ उथप्पन हार।
मिथ्यामत खंडै, कुनय विहंडै, मंडै दया अपार॥
तृष्णामद मारै, राग विडारै, यह जिन आगम सार।
जो पूजै ध्यावै, पढै पढावै, सो जगमाहि उदार॥ ४॥

अर्थ—जो सार जिनागमको पढता पढाता है मनन करता वा पूजता है वह जगतमें उदार पुरुष है और वह शुभ धर्मको प्रकाशता है पापको नष्ट करता है कुमार्गको उत्थापन करनेवाला है, मिथ्यामतको खंडन करता है कुनयोंको दलता है अपार दया का मंडन करता है, तृष्णामदको मारकर राग द्वेषको छोड़ देता है॥ ४॥

——:०:——

१२. त्रेसठ शलाकापुरुष (उत्तमपुरुष)

——:०:——

इस भरतक्षेत्रमें वर्त्तमान अवसर्पिणीकालके ६ विभागमेंसे चौथा–दुखमासुखमा नामका काल ४२ हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरका होता है। इसी कालमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती ९ नारायण ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र इसप्रकार ६३ उत्तम पुरुष (शलाकापुरुष) जगत्पूज्य होते हैं। इनके शिवाय ९ नारद ११ रुद्र और २४ कामदेव भी जगन्मान्य उत्तम

पुरुष होते हैं वे भी परंपराय मोक्षगामी होते हैं। सो गत चतुर्थ कालमें नीचे लिखे ६३ उत्तम पुरुष होगये हैं।

तीर्थंकर उन्हें कहते हैं कि जो धर्मतीर्थके प्रवर्तक हों और स्वर्गोंमेंसे वा सर्वार्थसिद्धि आदिक उपरिके विमानोंमेंसे (देव-योनिसे)¹ चयकर किसी राजाधिराजकी पटराणीके गर्भमें आवें। और जिनके चार प्रकारके देवदेवांगनाओंद्वारा गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक हों। केवलज्ञान प्राप्त होनेपर समस्त देशोंमें धर्मोपदेश द्वारा असंख्य जीवोंको मोक्ष मार्गमें लगाकर वा मुक्तकरके स्वयं मोक्षको प्राप्त होते हों।

ऐसे तीर्थंकर वर्त्तमानमें—ऋषभनाथ १ अजितनाथ २ शंभ-वनाथ ३ अभिनंदन ४ सुमतिनाथ ५ पद्मप्रभ ६ सुपार्श्वनाथ ७ चंद्रप्रभ ८ पुष्पदन्त ९ शीतलनाथ १० श्रेयांसनाथ ११ वासुपूज्य १२ विमलनाथ १३ अनन्तनाथ १४ धर्मनाथ १५ शान्तिनाथ १६ कुंथुनाथ १७ अरनाथ १८ मल्लिनाथ १९ मुनिसुव्रत २० नमिनाथ २१ नेमिनाथ २२ पार्श्वनाथ २३ और वर्द्धमान ये २४ हो गये हैं।

चक्रवर्ति—वे होते हैं कि जो छह खंड राज्य करके अन्तमें तपश्चर्यापूर्वक स्वर्ग मोक्षादिक उत्तम गतिको या नरक प्राप्त हों। ऐसे चक्रवर्ति १ भरत² २ सगर ३ मघवा ४ सनत्कुमार ५ शान्ति-नाथ ६ कुंथुनाथ ७ अरनाथ ८ सुभौम ९ पद्मनाथ १० हरिषेण ११ जयसेन और १२ ब्रह्मदत्त ये बारह हो गये हैं।

---

¹ कोई कोई तीर्थंकर नरकसे भी मनुष्य योनिमें आते हैं। ² ये भारत चक्रवर्ति आदि तीर्थंकर ऋषभनाथजीके सौ पुत्रोंमेंसे बडे पुत्र थे।

नारायण—तीन खंडके राजाधिराज होते हैं। नारायण दीक्षा धारण नहिं करते। उनका राज्यावस्थामें ही मरण होता है इस कारण वे नरकगामी होते हैं। नरकसे निकलकर फिर तीर्थंकरादि होकर मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। ऐसे नारायण वर्त्तमानमें अर्थात् गत चतुर्थ कालके अंतमें १ त्रिपिष्ट २ द्विपिष्ट ३ स्वयंभू ४ पुरुषोत्तम ५ नरसिंह ६ पुंडरीक ७ दत्तदेव ८ लक्ष्मण और ९ कृष्ण ये नव हो गये हैं।

प्रतिनारायण—भी तीन खंडके अधिपति होते हैं। जिनकी मृत्यु राज्यावस्थामें ही सुदर्शन चक्रसे नारायणके हाथसे होती है और फिर नारायण उन्ही तीनों खंडोंका राज्य करता है। प्रतिनारायण भी नरक जाकर परंपरा मोक्षपदको प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रतिनारायण १ अश्वग्रीव २ तारक ३ मेरुक ४ निशुंभ ५ मधुकैटभ ६ प्रह्लाद ७ बलि ८ रावण और ९ जरासिन्धु ये नव हो गये हैं।

बलभद्र—नारायणकी अपर माताके उदरसे उत्पन्न हुये नियमसे बडे भाई होते हैं। नारायण और बलभद्रमें अनन्यप्रीति होती है। नारायणकी मृत्युके पश्चात् बलभद्र मुनि होकर स्वर्ग अथवा मोक्ष ही जाते हैं। ऐसे बलभद्र १ विजय २ अचल ३ धर्मप्रभ ४ सुप्रभ ५ सुदर्शन ६ नंदि ७ नंदिमित्र ८ पद्म अर्थात् रामचन्द्र और ९ कृष्णके भाई बलदेवजी ये नव हो गये हैं।

इसी प्रकार ९ नारद ११ रुद्र और २४ कामदेवादिक भी हो गये हैं। इन सब उत्तम पुरुषोंका जिसमें चरित्र लिखा हो उस को पुराण वा प्रथमानुयोग (इतिहास) कहते हैं।

१३. निक्षेप।

१। युक्तिद्वारा सुयुक्त मार्ग होते हुये कार्यवशतः नाम स्थापना द्रव्य और भावमें पदार्थका न्यास (स्थापन) करना सो निक्षेप है। निक्षेप चार प्रकारके हैं-नामनिक्षेप, स्थापना-निक्षप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप।

२। गुण जाति द्रव्य क्रियाकी अपेक्षा विनाही अपनी इच्छा-नुसार लोकव्यवहारके लिये किसी पदार्थकी संज्ञा करनेको नाम निक्षेप कहते हैं। जैसैं,—किसीने अपने लड़केका नाम हाथी-सिंह रख लिया। परंतु उसमें हाथी और सिंहके समान गुण जाति द्रव्य क्रिया कुछ भी नहीं है।

३। धातु काष्ठ पाषाण आदि साकार वा निराकार पदार्थमें 'वह यह है' इसप्रकार अवधान करके निवेश (स्थापन) करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं। जैसै,—पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमाको पार्श्वनाथ कहना अथवा सतरंजके मोहरोंको हाथी घोड़ा, वजीर, बादशाह वगेरह कहना। नामनिक्षेपमें मूल पदार्थ की तरह पूज्य अपूंज्य बुद्धि नहीं होती, स्थापना निक्षेपमें होती है। जैसैं,—किसीने अपनेलड़केका नाम पार्श्वनाथ रख लिया तौ उस लड़केका सत्कार पार्श्वनाथकी तरह नहीं होता परन्तु पार्श्वनाथकी धातुपाषाणमयी प्रतिमामें पार्श्वनाथ भगवानकास सत्कार होता है।

४। जो भूत भविष्यतकी पर्यायकी अपेक्षा वा मुख्यता लेकर वर्तमानमें कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैसैं,—राजाके पुत्रको

(युवराजको) राजा कहना। तथा भूतकालमें डिपुटी साहब थे उनका ओंधा चले जानेपर भी डिपुटी साहब कहना।

५। वर्त्तमान पर्याय युक्त वस्तुको उसी रूप कहना सो भाव निक्षेप है। जैसें,—राज्य करते पुरुषको राजा कहना।

——:०:——

१४. अहिंसाका उपदेश।

——:०:——

घनाक्षरी छंद।

सुकृतकी खान इन्द्रपुरीकी नसैनी जान,
पापरजखंडनको पौनिरासि पेखिये।
भवदुख पावक बुझाइवेको मेघमाला,
कमला मिलायवेको दूतीज्यों विशेखिये॥
सुगतिबधूसों प्रीति, पालवेको आलीसम,
कुगतिके द्वारदृढ़ आगलगी देखिये।
ऐसी दया कीजे चित, तिहूंलोक प्राणी हित.
और करतूत काहू, लेखैमै न लखिये॥ १॥

अर्थ— जो दया पुण्य कार्योंकी खानि है, स्वर्गपुरी जानेके लिये नसैनीकी समान है, पापरूपी धूल उड़ानेके लिये आंधी है, संसारके दुखरूपी अग्निको बुझानेके लिये मेघमाला है, लक्ष्मीसे (धनसे) मिलाप करानेके लिये होशियार दूती है। उत्तमगति रूपी वधूसे प्रीति पालन करनेके लिये सखी समान है, कुगति-

का द्वार बंद करनेके लिये मजबूत अर्गल समान है ऐसी तीन लोकके प्राणियोंकी हित करनेवाली दयाको ही चित्तमें धारण करो इस दयाधर्मके सिवाय दूसरोंकी किसी भी करतूतको हिसावमें ही मत लावो ॥ १ ॥

अमानक छंद ।

जो पश्चिम रवि उगै, तिरै पाषाणं जल ।
ओ उलटै भुवि लोक, होय शीतल अनल ॥
जो मेरू डिग मगै, सिद्धि कहँ होय मल ।
तवहू हिंसा करत न उपजत पुण्य फल ॥ २ ॥

अर्थ—सूर्य कदाचित् पश्चिममें उदय हो जाय, जलपर पत्थर तिर सकता है, पृथिवी भी उलट सकती है, अग्नि शीतल स्वभाव वाली होना सहज है, सुमेरु पर्वत चलायमान हो सकता है, सिद्धि कदाच निष्फल हो सकती है । परन्तु जीवोंकी हिंसा करनेसे (यज्ञादिकसे) पुण्यकी प्राप्ति कदापि नहिं हो सकती ॥ ३ ॥

घनाक्षरी छंद ।

अगनिमें जैसे अरविंद न विलोकियत,
सूर अथवत जैसे वासर न मानिये ।
सांपके वदन जैसे अमृत न उपजत,
कालकूट खाये जैसें जीवन न जानिये ।
कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसे
वाढ़त रसांस रोग नाश न वखानिये ।

प्राणीवधमाहिं तैसें धर्मकी निसानी नाहिं,

याहीतैं बनारसी विवेक मन आनिये ॥ ३ ॥

अर्थ—अग्निमें कमल पैदा होते जैसें नहिं दीखते, सूरजके अंत होनेसे जैसें दिन नहिं माना जाता, सर्पके मुखसे कभी अमृत पैदा नहिं हो सकता, कालकूट विप खानेसे किसीका जीवन हो गया नहीं जाना गया, तथा कलह करनेसे जैसे किसी को सुयश मिला नहिं सुना गया, और शरीरमें रसांस (सूजन) बढ़नेसे किसीका रोग नाश हुवा जैसें नहिं कहा जा सकता उसी प्रकार प्राणीवध (जीवहिंसा) में धर्मका नाम निशान भी नहिं हो सकता इसकारण मनमें विवेक लाकर पशुहिंसासे विरक्त ही रहना चाहिये ॥ ३ ॥

सवैया ३१ मात्रा।

दीरघ आयु नाम कुल उत्तम, गुण संपति आनंद निवास।

उन्नति विभव सुगम भवसागर, तीनभवन महिमा परकास॥

भुजबलवंत अनंतरूप छवि, रोग रहित नित भोग विलास।

जिनके चित्त दयाल तिन्होंके, सब सुख होंय बनारसिदास॥४॥

अर्थ—जिनके चित्तमें दया है अर्थात् जो दयालु हैं उनको दीर्घायु कुल उत्तम गुण संपत्ति, आनंदका निवास, विभवकी उन्नति, भवसागरसे तरना सुगम, तीन भुवनमें महिमाका प्रकाश होना, भुजामें बल, सुंदर रूप, रोग रहित शरीर, नित्य नये भोग विलास आदि समस्त प्रकारके सुख होते हैं ॥ ४ ॥

१५. चौदहवें कुलकर महाराज नाभिराय.

——:०:——

तेरहवें कुलकरके कुछ ही समय बाद महाराजा नाभिराय हुये। ये चौदहवें कुलकर थे। इनके सामने कल्पवृक्ष प्रायः नष्ट हो चुके थे। क्योंकि तेरह कुलकरोंका समय भोगभूमिका था। जिस समयमें और जहां विना किसी व्यापारके भोगोपभोगकी सामग्री प्राप्त होती रहती है उस समयको भोगभूमिका समय कहते हैं। यह भोगभूमि महाराज नाभिरायके सम्मुख नष्ट हो गई और कर्मभूमिका प्रारम्भ हुआ अर्थात् जीविकाके लिये व्यापार आदि कर्म (कार्य) करनेकी आवश्यकता हुई।

इस समयके लोग व्यापारादिक कार्योंसे बिलकुल अपरिचित थे। खेती आदि करना कुछ नहिं जानते थे और कल्पवृक्ष नष्ट हो जानेके कारण अपनी भूख वा अन्य जरूरतें पूर्ण करनेके लिये बड़ी चिंता हुई तब व्याकुलचित्त होकर महाराजा नाभिरायके पास आये।

यह समय युगके परिवर्त्तनका था। कल्पवृक्षोंके नष्ट हो जाने के साथ ही जल, वायु, आकाश, अग्नि, पृथ्वी आदिके संयोगसे धान्योंके अंकुर स्वयं उत्पन्न हुये और बढ़कर फलयुक्त हो गये तथा अन्यान्य फलवाले अनेक वृक्ष भी उत्पन्न हुये। जल पृथ्वी आदिके परमाणु इस परिमाणमें मिले थे कि उनसे स्वयं ही वृक्षोंकी उत्पत्ति हो गई परंतु उस समयके मनुष्य इन वृक्षोंका उपयोग करना नहिं जानते थे। इस कारण महाराजा नाभिरायके

पास जाकर उन लोगोंने अपने क्षुधादिक दुःखोंको कहा और स्वयं उत्पन्न हुये वृक्षोंका प्रयोजन पूछा।

महाराज नाभिरायने उनका भय दूर कर उपयोगमें आ सकने वाले धान्य वृक्ष और फलके वृक्षोंको बताया। और उनको उपयोगमें लानेकी रीति भी बताई। तथा जो वृक्ष हानि करनेवाले थे जिससे जीवनमें बाधा आती और रोग आदि उत्पन्न हो सकते थे उनसे दूर रहनेके लिये उपदेश दिया।

वह समय कर्मभूमिके उत्पन्न होनेका था। उस समय लोगों के पास वर्त्तन आदि कुछ भी नहीं थे अतएव महाराजा नाभिरायने हाथीके मस्तकपर मिट्टीके थाली आदि वर्त्तन स्वयं बनाकर अग्निमें पकाकर काममें लानेकी विधि बताई तथा नाभिराय के समयमें बालककी नाभिमें नाल लगी हुई दिखाई दी उसको काटनेकी विधि बताई।

हाथीके माथेपर वर्त्तन बनाने तथा भोजन बनाना न जानने आदिके कारण इस समयके लोगोंको आज कलके मनुष्य विचारे असभ्य वा जंगली कहते और इसी परसे इतिहासकार परिवर्त्तन के इस कालको दुनियांका बाल्यकाल समझते हैं परंतु जैन इतिहासकी दृष्टिसे उस समयके लोग असभ्य वा जंगली नहीं थे, क्योंकि वह समय काल परिवर्त्तनका था। जिस प्रकार एक समाजके मनुष्योंको दूसरी समाजके चाल चलन अटपटे मालूम होते हैं और वे उनको अच्छी तरहसे संपादन नहिं कर सकते उसी प्रकार भोगभूमिके समयमें भोगोपभोग पदार्थ कल्पवृक्षोंसे स्वयं प्राप्त होते थे और वे मिलने बंद हो गये तो उन्हे अपना

जीवन निर्वाह करना कठिनसा हो गया इस कारण महाराज नाभिरायका वह समय बड़ा विकट वा अटपटा मालूम दिया सो यह समयका प्रभाव था इस कारण जैन इतिहास उस समयके मनुष्योंको असभ्य नहिं कह सकता न वह जगतका बाल्यकाल था किंतु कर्म भूमिका बाल्यकाल था, उस समय जीवन निर्वाह के साधन बहुत ही अपूर्ण थे।

महाराजा नाभिरायकी महारानीका नाम मरुदेवी था, मरुदेवी बड़ी ही विदुषी रूपवती पुण्यवती थी। महाराज नाभिराय कर्मभूमिकी प्रवृत्ति करनेवाले तथा सबसे पहिले धर्म मार्गको प्रकाशित करनेवाले भगवान् ऋषभदेवके पिता थे।

भगवान् ऋषभनाथके उत्पन्न होनेके पंद्रह महीने पहिले महाराजा नाभिराय और महारानी मरुदेवीके रहनेके लिये इंद्रकी आज्ञासे कुबेरके देवोंने एक बड़ा सुन्दर नगर बनाया था। वह नगर ४८ कोश लंबा और ३६ कोश चौड़ा बनाया गया था। इस नगरका नाम अजोध्या रक्खा गया। वर्त्तमानमें यह नगरी बहुत छोटी और उजाड़ रह गई है। जिस देशमें यह नगर था, उसका नाम आगे जाकर सुकोशलदेश पड़ा था, इस कारण अजोध्याका एक नाम सुकोशला भी है। इस नगरीमें जो लोग भिन्न २ इधर उधरके प्रदेशोंमें रहते थे उन्हे लाकर देवोंने बसाया महाराज नाभिरायके लिये इस नगरके मध्य भागमें बहुत ही सुन्दर राजभवन बनाया गया था। इस नगरमें शुभ मुहूर्त्तसे राजाका प्रवेश कराया गया। भगवान् ऋषभदेव इनके यहां उत्पन्न

होनेवाले थे, इसलिये महाराज नाभिरायका इन्द्रोंने राज्याभिषेक कराया था।

भगवान् ऋषभनाथके उत्पन्न होनेके पूर्व पंद्रह मास तक महाराज नाभिरायके आंगनमें तीन वक्त रत्नोंकी वर्षा कुवेर किया करता था।

भगवानके गर्भमें आनेसे पहिले भगवानकी माता मरुदेवीने इस प्रकार सोलह सुपने देखे। १ सफेद ऐरावत हाथी, २ गंभीर आवाज करता हुआ एक वडा भारी वैल, ३ सिंह, ४ लक्ष्मीदेवीका कलसोंसे स्नान, ५ दो पुष्प मालायें, ६ तारों सहित चंद्रमंडल, ७ उदय होता हुआ सूर्य, कमलोंसे ढके हुये दो सुवर्ण कलश, ९ सरोवरमें क्रीड़ा करती हुई मछलियां, १० एक वडा भारी तालाब, ११ समुद्र, १२ [illegible]ंहासन, १३ रत्नमय विमान, १४ पृथिवीको फाड़कर आता हुआ नागेंद्रभवन १५ रत्नोंकी राशि, १६ विना धूयेकी जलती हुई अग्नि। इन सोलहों स्वप्नोंके देखे वाद माताने एक महान वैलको अपने मुखमें प्रवेश करते हुये देखा। ये स्वप्न रात्रिके पिछले पहरमें देखे। प्रातःकाल उठते ही मरुदेवी स्नानादिके पश्चात् महाराज नाभिरायके पास गई। महाराजने महारानीको अपने निकट सिंहासनपर विठाया। और महारानीने अपने स्वप्न कहकर सुनाये तव महाराजने अपने अवधिज्ञानसे जानकर कहा कि तुम्हारे गर्भमें प्रथम तीर्थंकर

१ प्रत्येक तीर्थंकरके जन्मसे पहिले जन्मनगरकी रचना इन्द्रकी आज्ञासे कुवेर बनाता है।

आये हैं। आषाढ़ सुदी २ उत्तराषाढ़ नक्षत्रके दिन भगवान ऋषभदेव महारानी मरुदेवीके गर्भमें आये। जब भगवान ऋषभ देव गर्भमें आये तीसरे कालके (अवनतिरूप परिवर्त्तनके) चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ माह बाकी रह गये थे अर्थात्-इतने वर्ष तीसरे कालके शेष बचे थे उस समय भगवान ऋषभदेव गर्भमें आये।

भगवानके गर्भमें आते ही इन्द्रोंने व चार प्रकारके देवोंने आकर अजोध्या नगरीकी प्रदक्षिणा दी और माता पिताको नमस्कार करके उत्सव (गर्भ कल्याणकी क्रिया) किया और देवियोंने माताकी सेवा करना प्रारंभ कर दी।

——:o:——

१६. द्रव्योंके सामान्य गुण।

——:o:——

१। गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं।

२। द्रव्यके पूरे हिस्सेमें और उसकी समस्त पर्यायोंमें (हालतोंमें) जो रहे उसको गुण कहते हैं।

३। गुण दो प्रकारके होते हैं। एक सामान्य गुण, दूसरा विशेषगुण।

४। जो गुण समस्त (द्रव्योंमें) व्यापै उसको सामान्यगुण कहते हैं।

५। जो समस्त द्रव्योंमें न व्यापै उसे विशेषगुण कहते हैं।

६। समान्यगुण अनेक हैं परंतु उनमें मुख्य गुण ६ हैं जसे-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व।

७। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो उसको अस्तित्वगुण कहते हैं।

८। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उसको वस्तुत्वगुण कहते हैं। जैसे—घड़ेकी अर्थक्रिया जलधारण है।

९। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सदा एकसा न रहै और जिसकी पर्यायें (हालतें) बदलती रहैं उसको द्रव्यत्वगुण कहते हैं।

१०। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी ज्ञानका विषय हो उसे प्रमेयत्वगुण कहते हैं।

११। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका द्रव्यपणा कायम रहैं अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहिं परिणमै और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमै तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्त-गुण विखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

१२। जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उसे प्रदेशत्व कहते हैं।

१३। जिनमें उपर्युक्त गुण हैं वे द्रव्य कुल छह हैं जैसे, जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

१७. सत्यवचन प्रशंसा.

——:०:——

छप्पय ।

गुणनिवास विश्वास वास, दारिद दुख खंडन ।
देव अराधन योग, मुक्ति मारग मुख मंडन ॥
सुयश केलि आराम, धाम सज्जन मन रंजन ।
नाग वाघ वश करन, नीर पावक भय भंजन ॥
महिमा निधान संपति सदन, मंगल मीत पुनीत मग ।
सुखरासि बनारसि दास भन, सत्य वचन जयवंत जग ॥१॥

अर्थ—सत्य वचन जगतमें जयवंत हो क्योंकि-सत्य वचन गुणोंका निवास है, विश्वासका स्थान है, दरिद्रोंका दुःख खंडनेवाला है। देवोंके द्वारा आराधनीय है। मुक्तिमार्ग मुखका मंडन यानी शोभा है। सुयशरूपी केलिके आरामका धाम (घर) है। सज्जनोंका मनरंजन करनेवाला है। सांप व्याघ्रको वश करनेवाला है। जल अग्निका भय दुर करनेवाला है। महिमाका खजाना, संपदाका घर, मंगलकारक मित्र या पवित्रताका मार्ग और सुखकी राशि है ॥ १ ॥

सवैया ३१ मात्रा ।

जो भस्मंत करै निज कीरति, ज्यों वन अग्नि दहै वन सोय।
जाके संग अनेक दुख उपजत, बढै वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
जामैं धरम कथा नहिं सुनियत, ज्यों रवि वीच छांहिं नहिं होय।
सोही मिथ्या वचन बनारसि, गहत न ताहि विचक्षण होय॥२॥

अर्थ—जिस प्रकार दावाग्नि वनको भस्म करती है उसी प्रकार जो असत्य वचन अपनी कीर्त्तिको भस्म कर देता है और जिस प्रकार जलके सींचनेसे वृक्ष बढ़ता है उसी प्रकार जिस के कारण अनेक दुख उपजते हैं तथा जिस प्रकार सूर्यके और पदार्थके वीचमें छांह नहिं होती उस प्रकार जिसमें धर्मकी कथा नहिं सुनी जाती ऐसे मिथ्या वचनको विचक्षण लोग कदापि नहिं अपनाते ॥ २ ॥

रोडक छंद ।

कुमति कुरीत निवास, प्रीत परतीत निवारन।
रिद्धसिद्ध सुख हरन, विपत दारिद् दुखकारन॥
परवंचन उतपत्ति, सहज अपराध कुलच्छन।
सो यह मिथ्या वचन, नाहि आदरत विचच्छन ॥ ३ ॥

अर्थ—मिथ्या वचन कुरीतियोंका घर है, प्रीति और परतीतका नाशक है, रिद्धिसिद्धि और सुखका हरन करनेवाला है, दारिद् और दुःखोंका कारण है, दुसरोंकों ठगाई करनेका उत्पत्ति स्थान है, स्वाभाविक अपराध व कुलच्छन है इस कारण विचक्षण पुरुष मिथ्या वचनका कदापि आदर नहिं करते ॥ ३ ॥

घनाक्षरी कविता।

पावकतैं जल होय, वारिधतैं थल होय,
शस्त्रतैं कमल होय ग्राम होय वनतैं।
कूपतैं विवर होय, पर्वततैं घर होय।
वासवतैं दास होय हितू दूरजनतैं॥

सिंहतैं कुरंग होय व्याल स्याल अंग होय,

विषतै पियूष होय, माला अहिफणतैं।

विषमतैं सम होय संकट न व्यापै कोय,

एते गुण होंय सत्यवादीके वचनतें ॥ ४ ॥

अर्थ—सत्यवादीके सत्य वचन कहनेसे अग्नि तो पानी हो जाती है, समुद्र सूखकर जमीन निकल आती है, शस्त्र फूल हो जाता है, जंगलमें गांव वस जाता है, कूआ छोटासा छेद हो जाता है, पर्वत घर वन जाता है, इन्द्र नौकर वन जाता है, शत्रु मित्र हो जाता है,सिंह हाथीके समान सीधा और व्याल गीदड़के समान डरपोक वन जाता है, इसके सिवाय विष अमृत, सांपका फण फूलमाल, टेडा सीधा हो जाता है और किसी तरहका भी संकट नहीं आता।

——:०:——

१८. युगादि पुरुष भगवान ऋषभनाथ।

——:०:——

छप्पय।

ऋषभदेव रिषिनाथ वृषभ लच्छन तन सोहै।

नाभिरायकुल कमल मात मरुदेवी मोहै ॥

चौरासी लख पुव्व आव, शतपंचधनुष तन।

नगर अयोध्या जनम कनकवपु वरन हरन मन ॥

सर्वार्थसिद्धितैं गमन पदमासन केवल ज्ञानवर।

शिरनाय नमौं जुगजोरि कर मो जिनंद भवतापहर ॥१॥

१। तीर्थंकरका नाम	ऋषभदेव
२। चरणोंमें चिन्ह	वृषभ (बैल)
३। पिताका नाम	नाभिराय
४। माताका नाम	मरुदेवी।
५। आयु	चौरासी लाखपूर्वका
६। शरीरकी ऊंचाई	पांचसौ धनुष
७। जन्मनगरी	अयोध्यापुरी
८। शरीरका वर्ण	सुवर्णसम
९। पूर्वजन्मस्थान	सर्वार्थसिद्धि।
१०। निर्वाणसमयका आसन	पद्मासन

महाराजा नाभिरायके भगवान ऋषभनाथका जन्म चैत्र कृष्णा नवमी उत्तराषाढ़ नक्षत्रके पिछले भाग अभिजित् नक्षत्रमें हुवा। भगवानको जन्मसे ही मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान था। भगवानका जन्म होते ही स्वर्ग आदि देवोंके स्थानोंमें कई ऐसे कौतूहल पूर्ण कार्य हुये जिनसे चौंककर देवोंने अपने अवधिज्ञानसे भगवानका जन्म हुवा जान लिया और वे सब बड़ी धूमधामके साथ ऐरावत हाथीको लेकर अयोध्या आये। प्रथम तो अयोध्या नगरीकी तीन प्रदक्षिणा दीं फिर इन्द्राणीको प्रसूतिघरमें भेजकर भगवानको मगाया। इंद्राणी माताको माया-मयी निद्रामें मग्नकरके भगवानको उठा लाई और इन्द्रको ला सौंपा इन्द्रने भगवानका रूप निरीक्षण करनेकेलिये एक हजार नेत्र बनायें तौभी वह तृप्त न हुवा फिर ऐरावत हाथी पर बिठा कर गाजे बाजे सहित समस्त देव सुमेरु पर्वत पर ले गये। भगवान्

प्रथम स्वर्गके सौधर्म इन्द्रकी गोदीमें मेरु पर्वतपर गये थे और सनत्कुमार और माहेंद्रस्वर्गके दो इन्द्र भगवान पर चमर ढोरते थे। ईशान स्वर्गका इन्द्र भगवानके शिरपर छत्र लगाये हुये था। सुमेरु पर उत्तरकी तरफ पांडुक वनमें अर्धचन्द्राकार पांडुक-शिला है उसपर भगवानको सिंहासनपर विराजमान किया और क्षीर सागरके जल भरे एक हजार आठ कलशोंसे अभिषेक कराकर इन्द्राणीने वस्त्राभूषण पहराये। अनेक प्रकारसे नृत्य गीतादिसे सबजने भक्ति दिखाकर फिर गाजे बाजे सहित ऐरावत हस्तीपर बिठाकर भगवानको अयोध्या नगरीमें लाये और नाभिराय महाराजकी गोदीमें देकर तांडवनृत्य करके सब इन्द्रादिक देव अपने २ स्थान गये फिर नाभिराय महाराजने भी पुत्र जन्मका बड़ा उत्सव किया। ऋषभदेव धर्मके सबसे पहिले प्रकाशक थे इस कारण इनका नाम वृषभस्वामी (वृषभ-धर्मके, स्वामी-नाथ) रक्खा। माता पिता इन्हे वृषभ कह कर पुकारते थे।

बालक भगवानकी सेवाके लिये इन्द्रने अनेक देव देवियां सेवामें रख छोड़ी थीं उनके द्वारा लालन पालन वा खेल करते हुये दोजके चंद्रमाके समान बढ़ते थे। भगवान बड़े सुंदर थे सबको मनभावते थे। देवगण भगवानकी बराबरही अपना बालक शरीर बनाकर भगवानके साथ खेलते थे। भगवानके लिये समस्त वस्त्र आभूषण नित्य नये स्वर्गसे आया करते थे।

भगवान् ऋषभ स्वयंभू थे उन्होंने विना पाठशालामें पढ़े ही समस्त प्रकारका ज्ञान वा विद्यायें प्राप्त करली थीं। भगवानने

गणित ज्योतिष, छंद शास्त्र, अलंकार, व्याकरण, चित्रकला, लेखनप्रणाली संगीतशास्त्र आदि समस्त विद्याओंमें पारदर्शिता प्राप्त की थी। देववालकोंके साथ समस्त प्रकारके खेल खेलते वा जल क्रीड़ा तैरना आदि मनोविनोद करते रहते थे। भगवानकी वाल चेष्टायें सबको मनोमुग्धकर होती थीं। उनके समस्त प्रकारके कार्य वा चेष्टायें परोपकारार्थ ही हुवा करती थीं।

युवावस्था होनेपर भगवानके पिता नाभिरायने विवाह करनेको कहा। भगवानने भी समस्त पृथिवीको अपने आदर्श चरित्रसे चलानेके लिये विवाहादि समस्त प्रवृत्ति करनेके लिये विवाह की सम्मति दी। वह सम्मति केवल 'ओं' शब्द वोलकर ही दी थी और महाराजने कच्छ महाकच्छ नामके दोनों राजाओंकी दो कन्या यशस्वती और सुनंदासे उनका विवाह करा दिया

एक दिन महारानी यशस्वतीने पिछली रात्रिमें चार स्वप्न देखे—प्रथम स्वप्नमें मेरुपर्वतद्वारा समस्त पृथिवीको निगलते हुये देखा दूसरे स्वप्नमें चंद्र और सूर्य सहित मेरुपर्वत देखा। तीसरे स्वप्नमें कमलों सहित एक तालाव देखा और चौथे स्वप्नमें समुद्र देखा। प्रातः काल उठकर महारानी यशस्वतीने भगवान् ऋषभके पास जाकर स्वप्नोंका फल पूछा तो भगवानने इन स्वप्नोंका फल छह खंडपर राज्य करनेवाले चक्रवर्ती पुत्रका गर्भमें आना वताया।

चैत्रकृष्ण नवमीके दिन जव ब्रह्मयोग उत्तराषाढ़ नक्षत्र तीनं लग्न और चंद्रमा धनराशिपर था तव भगवानके प्रथमपुत्र भरत

चक्रवर्तिका जन्म हुआ और भगवानने अपने पुत्र भरतके अन्न-प्राशन, मुंडनकर्म कर्णछेदन यज्ञोपवीतधारण आदि समस्त (षोड्श संस्कार) संस्कार विधिपूर्वक कर समस्त लोगोंको दिखाये।

भरतके पश्चात् भगवानके वृषभसेन, अनंतविजय, महासेन, अनंतवीर्य, अच्युत, वीर, वीरवर, श्रीषेण, गुणसेन, जयसेनादिक ९९ पुत्र और हुये, तथा इसी यशस्वतीदेवीसे एक कन्या हुई जिसका नाम ब्राह्मी था।

इनके सिवाय दूसरी स्त्री सुनंदासे बाहुबली नामके एक पुत्र और सुंदरी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। सब मिलाकर भगवान १०३ पुत्र कन्याओंके पिता थे।

एक दिन भगवानका चित्त जगतमें अनेक भिन्न २ प्रकारकी कलाओं और विद्याओंके प्रचारके लिये उद्विग्न होने लगा उसी समय उनके पास उनकी दोनों कन्यायें ब्राह्मी और सुन्दरी आईं इनकी इस समय युवावस्था प्रारंभ ही हुई थी। दोनोंको भगवानने अपनी गोदीमें बिठाया और अ आ इ ई, आदि स्वरोंसे प्रारंभ करके अक्षरज्ञान प्रारंभ कराया और इकाई दहाई आदि से अंकगणित पढ़ाना प्रारंभ किया। भगवान ऋषभदेवके चरित्रमें अपने पुत्रोंके पढ़ानेका हाल कन्यायोंके पढ़ानेके बाद आया है इससे अनुमान होता है कि भगवानने स्त्री शिक्षाका महत्व विशेष प्रगट करनेके लिये ही ऐसा किया था कि स्त्रीशिक्षा ही पुरुषशिक्षाका मूल कारण है। इन दोनों कन्याओंको व्याकरण छंद न्याय काव्य गणित अलंकार संगीतादि अनेक विषयोंकी

शिक्षा दी थी। इन दोनों कन्याओंको पढ़ानेके लिये ही भगवानने स्वायंभुव नामका व्याकरण बनाया था। इसके शिवाय छंद अलंकार तर्क आदि शास्त्र भी बनाये थे।

पुत्रियोंको पढ़ानेके बाद भरतादि १०१ पुत्रोंको भी भगवानने समस्त विद्यायें पढ़ाई। इनमें कई पुत्रोंको खास करके कोई २ विद्या विशेषताके साथ पढ़ाई। जैसे—भरतको नीतिशास्त्र नृत्य शास्त्र, वृषभसेनको संगीत शास्त्र और वादन शास्त्र, अनंतविजयको चित्रकारी नाट्यकला और मकान बनानेकी विद्या विशेष प्रकारसे पढ़ाई थी। बाहुबलीको कामशास्त्र वैद्यकशास्त्र धनुर्वेद विद्या और पशुओंके लक्षणोंका जानना व रत्न परीक्षाका ज्ञान कराया था। इसी प्रकार अन्यान्य समस्त विद्यायें प्रजामें प्रचार करनेके लिये अपने पुत्रोंको पढ़ाई थीं।

नाभिरायके समय जो धान्य फल स्वयं प्राकृतिक उत्पन्न हुये थे उनमें भी रस आदि कम होने लगा और वे सब वृक्ष क्षीण होने लगे तब समस्त प्रजा महाराज नाभिके पास आई और अपने इन कष्टोंको कहा तो महाराजने सबको भगवानके पास पहुंचाया तब भगवानने आर्यखंडकी प्रजाके कष्ट दूर करनेको और उनके कृषि आदि व्यवहार बनानेके लिये इन्द्रको आज्ञा करी और इंद्रने कृषिकार्य वा वाणिज्यादि समस्त कार्य प्रजा जनोंको बताये अर्थात् जिनमंदिरोंकी रचना की, देश प्रदेश नगर आदिकी रचना की, सुकोशल, अवंती, पुंड्र, अंध्र, असमक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्म, समुद्रक, कश्मीर उसीनर, आनर्त्त, वत्स, पंचाल मालव दशार्ण कच्छ मगध वि-

दर्भ कुरुजांगल करहाट महाराष्ट्र सौराष्ट्र आभीर कोकण वन-वास आंध्र कर्णाट कौशल चौल केलर दास अभिसार सौवीर सुरसेन, अपरांत, विदेह, सिंधु, गांधार, यवन, चेदि पल्लव कांबोज आरद्‌ वाल्हीक तुरुष्क शक और केकय इन बावन देशोंका विभाग किया।

इन देशोंमेंसे कई देश ऐसे थे जिनमें अन्नकी उत्पत्ति नदियोंसे जल सींचकर की जाती थी और कई ऐसे थे जिनमें वर्षाके जलसे खेती हो सकती थी और कई देश दोनों प्रकारके थे परंतु कइयोंमें जलकी बहुलता व कईयोंमें कमी थी।

प्रत्येक देशके राजा लोग भी नियत कर दिये थे। कई देश ऐसे थे जो लुटेरों शिकारी और पशुओंको पालनेवाले शूद्रोंके अधीन थे प्रत्येक देशमें राजधानी बनाई गई थी।

छोटे वडे गावोंकी रचना इस प्रकार बनाई थी। जिनमें कांटों की बाडसे घिरे हुये घर थे और जिनमें बहुधा किसान शूद्र रहते थे ऐसे १०० घरोंकी वस्तीको छोटा गांव और ४०० घरों की वस्तीवालेको बडा गांव बताया। छोटे गांवकी सीमा एक कोशकी बड़े गांवकी दो कोशकी रक्खी गई और गावोंकी सीमा श्मशान, नदी, वडके झुंड, बबूल आदिके कांटेदार वृक्षोंसे तथा पर्वत गुफाओंसे बांधी गई थी। गांवोंको बसाना, उपभोग करना गांव निवासियोंके लिये नियम बनाना, गांवकी अन्य आवश्यकताओंको पूरा करने आदिका अधिकार राज्यके अधीन रक्खा।

जिन वडे गावोंमें वडे २ महल हवेलियां थी, वडे २ दरवाजे थे और जिनमें वडे २ प्रसिद्ध पुरुष बसाये थे उनका नाम नगर (शहर) रक्खा गया।

नदियों और पर्वतोंसे घिरे हुये गावोंको खेड (जिनको आजकल खेड़ा कहते हैं) और पर्वतोंसे घिरे हुये स्थानोंको खर्वट नाम दिया गया । जिन गावोंके आस पास पांच सौ घर थे उन्हें मांडव और समुद्रके आस पासवाले स्थानोंको पत्तन (पट्टण) तथा नदीके पासवाले ग्रामोंको द्रोणमुख संज्ञा दी । राजधानियोंके आठ आठ सौ गांव, द्रोणमुख गावोंके अधीन चार चार सौ गांव और खर्वटोंके अधीन दो दो सौ गांव रक्खे गये ।

भगवानने प्रजाको शस्त्रधारण करना उनका उपयोग करना खेती करना, लेखन, व्यापार विद्या शिल्प कला, हस्तकौशल आदि समस्त कारीगारी बताई ।

उस समय जिन्होंने शस्त्रधारण कर प्रजाकी रक्षाका काम स्वीकार किया उनको तो क्षत्रिय और जिन्होंने खेती, व्यापार, पशुपालनका कार्य स्वीकार किया उन्हे वैश्य और इन दोनोंकी सेवा करनेका कार्य स्वीकार किया उन्हे शूद्रवर्ण स्थापन किया । पहिले वर्णव्यवहार न था, यहींसे वर्णव्यवहार चला ।

इस प्रकार कर्मयुग वा कर्मभूमिका प्रारंभ भगवान् ऋषभेश्वरने आषाढ कृष्णा प्रतिपदाको किया था । इस कारण भगवान कृतयुगके करनेवाले युगादि पुरुष कहलाते हैं और इसी लिये समस्त प्रजा उन्हें विधाता, स्रष्टा, विश्वकर्मा आदि नामोंसे पुकारने लगी थी।

इस युगके प्रारंभ करनेके कितने ही वर्षवाद नाभिराज महाराजके द्वारा भगवान् ऋषभदेव सम्राट् पदवीसे विभूषित किये

गये और राज्याभिषेक किया सब क्षत्रिय राजाओंने भगवान्‌को अपना स्वामी माना।

भगवानने भी अपने पिताके समान ही 'हा' 'मा' 'धिक्' इन शब्दोंके बोलनेको ही दंड विधान रक्खा था क्योंकि उस समय की प्रजा बडी सरल शांत और भोली थी इस कारण इतने ही दंडको बहुत कुछ समझती थी।

फिर भगवान्‌ने एक एक हजार राजाओंके ऊपर चार महा मंडलेश्वर राजाओंकी स्थापना की। इनके नाम-हरि, अकंपन, काश्यप और सोमप्रभ थे। इन चारों ही राजाओंने चार चार वंशोंकी स्थापना की। हरिने हरिवंश, अकंपनने नाथवंश, काश्यपने उग्रवंश और सोमप्रभने कुरुवंश चलाया। वे उक्त चारों ही वंशोंके नायक हुये। तथा अपने १०१ पुत्रोंको भी पृथिवी तथा अन्यान्य संपत्ति वांटी।

सबसे पहिले भगवान्‌ने इक्षुके (सांटेके) रसको संग्रह करनेका उपदेश दिया था इससे भगवान् इक्ष्वाकु कहाये और इसी कारण आपके वंशका नाम इक्ष्वाकुवंश प्रसिद्ध हुआ। और कच्छ महाकच्छ आदि नरेशोंको अधिराज पद दिया। और अपना समय सदा परोपकारमें ही लगाया और लोगोंकी इच्छानुसार दान दिया।

एक दिन भगवान्‌के सन्मुख इन्द्रने मनो विनोदकेलिये गंधर्व देव तथा नीलांजना आदि देवांगनाओंका नाच करवाया उस समय नीलांजनाकी नाचते नाचते ही आयु पूर्ण हो गई, इन्द्रने तत्काल ही उसकी जगह दूसरी अप्सरा नाचनेको खडी कर दी

सर्वसाधारणको तो इस फेर फारकी बात मालूम न हुई परंतु भगवान् अवधिज्ञानी थे, इनसे क्यों छिप सकती थी। वश वे इस प्रकार नीलाँजनाकी आयु पूरी होते देख अपने शरीरादि संसारकी अनित्यता समझ वैराग्यको प्राप्त हो गये उसी वक्त पांचवे स्वर्गसे लौकांतिक देव आये और नमस्कार पूजादि करके भगवान्की प्रशंसा की एवं उनके वैराग्यको दृढ कर चले गये इन्द्रादि देव भी पालकी लेकर आगये भगवान्ने भरतका राज्याभिषेक किया और फिर आप तपो धारण करनेको पालकीमें बैठ कर सिद्धार्थ नामक वनको (जिसको प्रयागारण्य भी कहते थे) जो अयोध्यासे न तो पास ही था न वहुत दूर था, चल दिये। वनमें जाकर पंचमुष्टि लोच करके सिद्धोंको नमस्कार कर मुनिपद धारण कर लिया। दीक्षाके वाद भी देवोंने भक्ति पूजा करके तपः कल्याणक किया। भगवानको तप धारण करते ही मनः-पर्यय ज्ञान हो गया।

भगवानके तप धारण करनेके समय साथमें अनेक राजा लोग आये थे, भगवानकी देखा देखी चार हजार राजाओंने भी नग्नमुद्रा धारण कर ली थी। भगवान्ने तो एकदम ६ महिनेका उपवास धारण कर कायोत्सर्ग ध्यान करना प्रारंभ कर दिया वे एकदम निश्चल हो कर तिष्टे परंतु राजाओंने जो दीक्षा ली थी वे क्षुधादि परीषह सहनेमें असमर्थ होकर वनके फल मूल खाने लगे, नदी नालाओंका जल पीने लगे। वन देवताओंने यह क्रिया जैनमुनिकी क्रियासे विरुद्ध देखकर उनको धमकाया तब नग्नपन छोड वृक्षोंकी छाल वगेरहके कपड़े पहर कर नाना प्रकारके

भेष उनने धारण कर लिये। उसी समय भगवानके पोते मरीचिने सांख्य शास्त्रकी रचना करके लोग अपनी ओर झुकाये उसी समय सब मिलाकर तीन सौ तिरेसठ ३६३ प्रकारके मत उन्होंने धारण किये थे।

भगवानने ६ महीनेका उपवास पूर्ण करके भोजनार्थ विहार किया, लोग मुनिके आहारकी विधि नहिं जानते थे इस कारण कोईने कुछ कोईने कुछ ला ला कर भगवानको देना चाहा परंतु भगवान् उनकी ओर देखते तक नहिं थे। इस प्रकार फिरते २ छह माहसे कुछ ऊपर हो गये तब कुरुजांगल देशके हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभके छोटे भाई श्रेयांसको भगवान्के दर्शन होते ही जातिस्मरण हो गया और पूर्व जन्ममें मुनिको आहार दिया था उस समयकी विधि याद आनेसे भगवानको त्वरित ही नवधाभक्तिपूर्वक श्रद्धान करके वैशाखसुदी ३ तृतीयाको इक्षुरसका दान किया जिससे उस राजाके घर इन्द्रादि देवोंने पंचाश्चर्य किये और उसी दिनसे अक्षय तृतीया पर्व प्रारंभ हुआ उस दिन भी इक्षुरसका ही भोजन बनाया जाता है।

एक दिन भगवान् विहार करते २ पुरिमतात नामक नगरके पासवाले शकट नामक वनमें जाकर ध्यानारूढ़ हुये थे सो फागुण वदि एकादशीके दिन चार घातिया कर्मोंका नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया और भगवान् अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान अनंत सुख और अनंतवीर्ययुक्त हो गये।

भगवान्को केवलज्ञान प्राप्त होते ही इन्द्रादि चार प्रकारके देवोंको प्राकृतिक रीतिसे खबर हो गई। वे सबके सब ज्ञान कल्याण

करनेको आये, कुबेरने भगवान् जहां पर थे वहीं पर ४८ कोशमें लंबा चौड़ा एक सभामंडप बनाया जिसको समवशरण कहते हैं। समवसरण सभामें १२ सभा थीं उनके बीचमें तीन कटनीदार वेदी पर सिंहासन पर भगवान अधर विराजमान थे। बारह सभामेंसे पहिली सभामें भगवानके ८४ गणधर थे। दूसरी में कल्पवासी देवोंकी देवांगनायें, तीसरीमें आर्यिका आदि मनुष्योंकी स्त्रियां, चौथीमें ज्योतिषी देवोंकी देवांगनायें, पांचवींमें व्यंतरणी, छट्ठीमें भवनवासिनी देवियां, सातवी सभामें भवनवासी देव, आठवींमें व्यंतर देव, नवमीमें ज्योतिष्कदेव, दशवींमें कल्पवासी देव, ग्यारहवी सभामें चक्रवर्ती, राजा, महाराजा, और सर्वसाधारण मनुष्य और बारहवी सभामें सिंह गाय बैल हिरण सर्प आदि समस्त पशु पक्षी थे। भगवानके समवसरणमें किसीको भी आनेकी मनाही नहीं थी, सब ही जीव धर्मोपदेश सुननेको आते थे। भगवानकी तीन वक्त सवेरे दुपहर सामको वाणी खिरती थी। वह अनक्षरमयी मेघगर्जनावत् दिव्यध्वनि होती थी सो समस्त प्रकारके जीव अपनी २ भाषामें समझ लेते थे जो मनुष्य नहिं समझते थे वा विशेष कोई धर्म कथा सुनना होती थी, वह गणधरोंसे प्रश्न करके सब संशय दूरकर लेते थे। भगवानके वृषभसेनादि ८४ गणधर थे।

शकट वनसे उठकर भगवानने कुरुजांगल, कौशल, पुंड्र, चेदि अंग वंग मगध अंध्र कलिंग आदि समस्त देशोंमें विहार करके अपने उपदेशसे असंख्य जीवोंको मोक्षमार्गमें लगाया। जब छोटे भाइयोंने भरतकी आज्ञा न मान भगवानसे प्रार्थना

की कि आप हमारे स्वामी हैं आपहीने हमें राज्य दिया है हम अब भरतको नमस्कार नहिं कर सकते तब भगवानने उपदेश देकर समझाया कि अभिमानकी रक्षा तो केवल मुनिव्रत धारण करनेसे ही हो सकती है सो तुम्हे भरतकी आज्ञा मानना अस्वीकार है तो मुनिदीक्षा ग्रहण कर लो तब भगवानसे ही दीक्षा लेकर सब भाई मुनि हो गये। एकमात्र बाहुबलीने दीक्षा नहि ली।

भरतने जब चौथे ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की थी तब भगवानसे पूछा कि मैंने एक ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया है सो इसका कुछ खोटा परिणाम तो नहिं होगा तब भगवानने उत्तर दिया था कि चतुर्थकालमें तो ये सब ठीक रहेंगे परंतु पंचम कालमें ये सब ब्राह्मण जैनधर्मको छोड़कर जैनधर्मके द्वेषी हो जायगे।

भगवान ऋषभदेवने एक हजार वर्ष चौदह दिन कम एक लाख पूर्वतक समवशरण सभामें उपदेश दिया था। जब आयुके १४ दिन रह गये तब उपदेश देना बंद हो गया और आपने पौषसुदी १५ को कैलास पर्वतपर जाकर शुक्ल ध्यान धर दिया। आनन्द नामके पुरुष द्वारा भगवानका कैलास पर्वतपर जाना सुन भरत चक्रवर्ती भी कैलास पर गया और १४ दिनों तक भगवानकी सेवा पूजा की, अंतमें माघ वदी १४ के दिन सूर्योदयके समय अनेक मुनियों सहित भगवान ऋषभदेव मोक्षको पधार गये और देवोंने आकर निर्वाण महोत्सव किया। भगवानके मोक्ष चले जाने पर भरतको बड़ा शोक हुवा था। परंतु वृषभसेन गणधरके समझानेसे शोक शांत हो गया।

१९. षट्द्रव्योंके विशेषगुण।

—:o:—

१। जिसमें चेतना गुण पाया जाय उसको जीवद्रव्य कहते हैं।

२। जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाये जांय उसको पुद्गल कहते हैं। पुद्गलके दो भेद हैं। एक परमाणु दूसरा स्कंध।

३। सबसे छोटे पुद्गलको परमाणु कहते हैं।

४। अनेक परमाणुओंके बंध (पिंड) को स्कंध कहते हैं।

५। अनेक चीजोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सबंध विशेष को बंध कहते हैं।

६। आहार वर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्माणवर्गणा आदि २२ प्रकारके स्कंध होते हैं।

७। औदारिक वैक्रियिक, आहारक, इन तीन शरीररूप परिणमे उसको आहारवर्गणा कहते हैं।

८। मनुष्य तिर्यंचके स्थूल शरीरको औदारिक शरीर कहते हैं।

९। जो छोटे बडे एक अनेक आदि नाना क्रियायोंको करै ऐसे देव नारकियोंके शरीरको वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

१०। छठे गुणस्थानवार्त्ती मुनिकै तत्वोंमें कोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लिये मस्तकमेंसे एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं

११। औदारिक और वैक्रियक शरीरोंको कांति देनेवाला तैजस शरीर जिस वर्गणासे बनै उसको तैजसवर्गणा कहते हैं।

१२। जो वर्गणायें शब्दरूप परिणमैं उनको भाषावर्गणा कहते हैं।

१३। जिन वर्गणाओंसे अष्ट दलाकार पुष्पकी समान द्रव्यमन बनै उनको मनोवर्गणा कहते हैं।

१४। जो कार्माण शरीररूप परिणमैं उसको कार्माणवर्गणा कहते हैं।

१५। ज्ञानावरणादि अष्टकर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं।

१६। तैजस और कार्माण शरीर समस्त संसारी जीवोंके होता है और ये दोनों शरीर दूसरी पर्याय या गतिमें साथ जाते हैं।

१७। गतिरूप परिणमें जीव और पुद्गलको जो गमनमें सहकारी हो, उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे मछलीको चलनेके लिये सहायक जल है।

१८। गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमे जीव और पुद्गलको जो स्थितिमें सहायक हो उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।

१९। जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पांचों द्रव्योंको ठहरनेके लिये जगह दे उसको आकाशद्रव्य कहते हैं।

२०। जो जीवादिक द्रव्योंके परिणमनेमें सहकारी हो उसको कालद्रव्य कहते हैं। जैसें कुम्हारके चाकके घूमनेके लिये लोहेकी कीली।

२१। कालद्रव्य दो प्रकारका है एक निश्चयकालद्रव्य दूसरा व्यवहार काल।

२२। कालद्रव्यको अर्थात् लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेशमें एक एक कालाणु स्थित है उन सबको निश्चयकाल कहते हैं।

२३। कालद्रव्यकी घड़ी दिन मास आदि पर्यायोंको व्यवहारकाल कहते हैं।

२४। गुणके विकार (पलटने)को पर्याय कहते हैं।

२५। द्रव्यमें नवीन पर्यायकी प्राप्तिको उत्पाद कहते हैं।

२६। द्रव्यकी पूर्व पर्यायके त्याग वा नष्ट होनेको व्यय कहते हैं।

२७। प्रत्यभिज्ञानको कारणभूत, द्रव्यकी किसी अवस्थाकी नित्यताको ध्रौव्य कहते हैं।

२८। जीव द्रव्यमें चेतना सम्यक्त्व, चारित्र आदि विशेष गुण हैं। पुद्गल द्रव्यमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि विशेष गुण है। धर्म द्रव्यमें गतिहेतुत्व वगेरह, अधर्म द्रव्यमें स्थितिहेतुत्व वगेरह, आकाश द्रव्यमें अवगाहनहेतुत्व वगेरह और कालद्रव्यमें परिणमनहेतुत्व वगेरह विशेष गुण हैं।

२९। आकाश एक ही सर्वव्यापी अखंड द्रव्य है।

३०। जहांतक जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल ये पांच द्रव्य हैं उसको लोकाकाश कहते हैं और लोकसे बाहरके आकाशको अलोकाकाश कहते हैं।

३१। लोककी मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशामें सब जगह सात राजू है। चौड़ाई पूर्व और पश्चिम दिशामें मूलमें (नीचे-

जड़में) सात राजू है। ऊपर क्रमसे घटकर सातराजूकी ऊंचाई पर चौड़ाई एक राजू है। फिर क्रमसे बढ़कर साढे दश राजूकी ऊंचाईपर चौड़ाई पांच राजू है। फिर क्रमसे घटकर चौदह राजू की ऊंचाईपर एक राजू चौड़ाई है और ऊर्ध्व और अधोदिशा में ऊंचाई चौदह राजू है।

३२। धर्म और अधर्म द्रव्य एक एक अखंड द्रव्य हैं और दोनों ही समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं।

३३। आकाशके जितने हिस्सेको एक पुद्गल परमाणु रोकै उतने आकाशके क्षेत्रको एक प्रदेश कहते हैं।

३४। पुद्गल द्रव्य (परमाणु) अनंतानंत हैं और वे सब लोकाकाशमें भरे हुये हैं।

३५। जीव द्रव्य भी अनंतानंत हैं और वे सब लोकाकाशमें भरे हुये हैं।

३६। एक जीव, प्रदेशोंकी अपेक्षा तो लोकाकाशके बराबर परंतु संकोच विस्तारके कारण अपने शरीरके प्रमाण है और मुक्त जीव अंतके शरीर प्रमाण है। मोक्ष जानेसे पहिले समुद्घात करनेवाला जीव ही लोकाकाशके बराबर होता है।

३७। मूल शरीरको बिना छोड़े जीवके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्घात कहते हैं।

३८। बहुप्रदेशी द्रव्यको अस्तिकाय कहते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पांच द्रव्य तो अस्तिकाय हैं। काल द्रव्य बहुप्रदेशी नहीं है इसलिये काल द्रव्य अस्तिकाय नहीं है।

३९। पुद्गल परमाणु भी एक प्रदेशी है परंतु वह मिलकर

बहुप्रदेशी हो सकता है इसकारण शक्तिकी अपेक्षा उपचारसे पुद्गल परमाणुको बहुप्रदेशी कहा गया है।

४०। भावस्वरूप गुणोंको अनुजीवी गुण कहते हैं। जैसे--सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, चेतना, स्पर्श, रस, गंध, वर्णादिक।

४१। वस्तुके अभावस्वरूप धर्मको प्रतिजीवी गुण कहते हैं, जैसे—नास्तित्व, अमूर्त्तत्व, अचेतन वगैरह।

४२। अभाव चार प्रकारका है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यंताभाव।

४३। वर्त्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें जो अभाव है उसको प्रागभाव कहते हैं।

४४। आगामी पर्यायमें वर्त्तमान पर्यायके अभावको प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

४५। पुद्गल द्रव्यकी एक वर्त्तमान पर्यायमें दूसरे पुद्गलकी वर्त्तमान पर्यायके अभावको अन्योन्याभाव कहते हैं।

४६। एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यके अभावको अत्यंताभाव कहते हैं।

——:o:——

२०. सत्संगति.

——:o:——

मत्तगयंद।

सो करुणाविन धर्म विचारत, नैन विना लखिवेको उमाहै।
सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै॥

सो हिय शून्य कवित्त करै, समता विन सो तपसों तनदाहै।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ, जो सतसंग तजै हित चाहै।

अर्थ—जो मनुष्य सतसंगतिको छोड़कर हित चाहता है सो मानो, दयाके विना धर्म चाहता है, अथवा अंधा होकर देखने को तैयार होता है, अथवा यश पानेकी इच्छासे दुर्नीति (अन्यायाचरण) करता है अथवा विना बुद्धिके आगमका अवगाहन करना चाहता है, अथवा हृदय शून्य होकर कविता करना चाहता है अथवा समताके विना तपस्या करके शरीरको जलाता है, तथा थिरताके विना ध्यान लगाता है।

घनाक्षरी।

कुमति निकंद होय महामोह मंद होय,
जगमगै सुयश विवेक जगै हियसों।
नीतिको दृढाव होय, विनैको बढ़ाव होय,
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय,
वरतै समाधि ज्यों पियूष रस पियेसों।
तोष परि पूर होय, दोष दृष्टि दूर होय
एते गुण होंहि सतसंगतके कियेसों।

कुंडलियां।

'कौंरा'[1] ते मारग गहैं, जे गुनिजन सेवंत।

१। कौंरा—कुंवरपाल नामके बनारसीदासजीके एक मित्र थे यह कुंडलियां उन्हीका बनाया हुआ मालूम होता है।

ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं भव अंत ॥
ते पावहिं भव अंत, शांतरस ते चित धारहिं।
ते अघ आपद हरहिं, धर्मकीरति विस्तारहिं ॥
होय सहज जे पुरुष, गुनी वारिजके भौंरा।
ते सुर संपति लहैं, गहैं ते मारग कौरा ॥ ३ ॥

छप्पय।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहिं।
जो प्रताप संहरहि, पवन जिम मेघ विडारहिं ॥
जो समदम दलमलहि, दुरिद जिय उपवन खंडहि ।
जो सुक्षेम क्षय करहि, वज्र जिम शिखर विहंडहि ॥
जो कुमति अग्नि ईंधन सरिस, कुनयलता दृढ़मूल जग ।
सो दुष्टसंग दुखपुष्ट करि, तजहि विचक्षणता सुमग ॥ ४ ॥

——:o:——

२१. भरत चक्रवर्त्ती.

——:o:——

महाराज भरतका जन्म चैत्र कृष्णा नवमीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें हुआ था। भरतका सर्वत्र राज्य होनेसे ही इस आर्य खंडका दूसरा नाम भारतवर्ष पड़ा है। भरतका शरीर बहुत ही सुन्दर और वह ५०० धनुष ऊंचा था. इनमें सब गुण· भगवान् ऋषभदेव ही के समान थे। छहों खंडके मनुष्य पशु और देवादिकोंमें जितना बल था उससे कई गुणा अधिक बल चक्रवर्त्ती

की भुजामें था। भरतको भगवान ऋषभ देवने स्वयं पढ़ाया था, प्रधानतया ये नीतिशास्त्रके बड़े विद्वान थे।

एक दिन भरत महाराजके धर्माधिकारी (कर्मचारी)ने आकर भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी खबर सुनाई और उसी वक्त शस्त्रशालाके अधिकारीने आयुधशालामें चक्ररत्न[1] उत्पन्न होनेकी खबर सुनाई और महारानीके सेवकने प्रथम पुत्रोत्पत्तिकी खबर दी। ये तीनों ही हर्षदायक समाचार एक साथ सुनकर महाराज भरत विचार करने लगे कि पहिले किसका उत्सव मनाना चाहिये, अंतमें धर्म कार्यको मुख्य समझकर अपने छोटे भाइयों वा राजकर्मचारियों और प्रजाके साथ भगवान ऋषभदेवके दर्शन पूजनार्थ उनकी शरणमें गये। पूजा वंदना भक्ति करके व केवली भगवानके मुखसे धर्मोपदेश श्रवण करके सुदर्शनचक्र रत्नकी पूजा की और उसे ग्रहण किया। तत्पश्चात्

१। यह चक्र रत्न १००० देवोंकी रक्षामें रहता है देवोपनीत आयुध है यह चर्म शरीरी और अपने मालिकके कुटुंबियोंको छोडकर सब पर चलता है इसके अधिकारी चक्रवर्ती वा नारायण वा प्रतिनारायण हो होते हैं, चक्रवर्ती छहखंडके राजा होते हैं और नारायण प्रतिनारायण तीन खंडके राजा होते हैं इन्हींके पुण्य प्रतापसे ही यह रत्न देवोंके द्वारा आयुधशालामें आ जाता है। परंतु नारायणके पास जब कि प्रतिनारायण इस चक्रको चलाता है तब ही नारायण की परिक्रमा देकर नारायणके हाथमें आ जाता है नारायण प्रतिनारायणको इसी चक्रसे मारकर उसीके त्रिखंडका राज्य करता है।

पुत्र जन्मका उत्सव मनाया इन तीनों ही उत्सवोंमें भरतने किमिच्छा दान दिया। सड़कों और गलियोंमें यत्र तत्र रत्नादि पदार्थ रखकर सबको बांटे।

जब आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हो गया तब भरत महाराजने दिग्विजयके लिये शरद् ऋतुमें चढ़ाई की। सबसे आगे पैदल सेना, उसके पीछे घुड़ सवार, उसके पीछे रथ और रथोंके पीछे हाथी चले।

अजोध्यासे चलकर महाराज भरतकी सेनाने गंगा नदीके किनारे पार सबसे पहिले डेरा किया सेनाके लिये तंबू लगाये गये घोड़ोंके लिये भी कपडे ही की घुड़शालायें बनाई गई। वहां से फिर गंगाके किनारे २ ही चलकर समुद्रपर्यंत समस्त देशोंके राजाओंको आज्ञाकारी बनाया। लड़ाई तो बहुत ही कम करनी पडती थी क्योंकि भरतके पुण्यके प्रतापसे और असंख्य सेना सहित भारी चढ़ाई देखकर प्रायः सबही राजा लोग भेट ले ले कर चक्रवर्त्तीके पास आते और उनकी आज्ञा शिरोधारण कर अनुयायी बनते जाते थे। जो राजा अधिक कर लेता वा प्रजाको पीड़ाकारी होता उसे कैद करके दूसरा राजा स्थापन कर देता था। तत्पश्चात् समुद्रके निवासी मगधदेवको आज्ञाकारी बनाकर रत्नोंके हार व दो कुंडल भेटमें लेकर आगेको चले। उसीप्रकार दक्षिण समुद्र तक और तत्पश्चात् पश्चिम समुद्र तक पश्चिम म्लेच्छ खंडको जीतकर सिंधुनदीके किनारे किनारे चलते हुये विजयार्द्ध पर्वतके निकट पहुंचे और विजयार्द्ध पर्वतके स्वामी व्यंतरदेवको भेट लेकर आज्ञाकारी बना लिया तब भरतकी आधी

विजय हो गई क्योंकि विजयार्द्धके इस तरफ पूर्वम्लेच्छ खंड पश्चिम म्लेच्छ खंड और बीचका आर्य खंड ये तीन खंड आज्ञाकारी हो गये इसी कारण इस पर्वतका नाम विजयार्द्ध पर्वत पड़ा है। अब इस विजयार्द्ध पर्वतमें सिंधु नदी जहांसे निकलती है वहां गुफा है उस गुफासे विजयार्द्धके उत्तर तरफके तीन म्लेच्छ खंडोंको जीतनेके लिये तैयारी की।

प्रथम तो चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमेंसे दंडरत्न लेकर सेनापतिने गुफाके द्वारको 'चक्रवर्त्तीकी जय' इस शब्दको बोलते हुये खोला। गुफामेंसे इतनी गर्मी निकली कि वह छह महीनेमें शांत हुई। इस गुफाका नाम तमिस्रा है। इसकी ऊंचाई आठ योजन और चौड़ाई बारह योजन की है इसके किवाड वज्रमई हैं इसको चक्रवर्त्तीके सेनापति सिवाय और कोई खोल ही नहि सकता। इस गुफाकी गर्मी निकले बाद चक्रवर्त्ती जानेको तैयार हुवा परंतु अंधकार होनेसे कांकिणी और चूड़ामणि इन दोनों रत्नोंसे दोनों तरफकी दीवालोंपर चंद्र सूर्य के प्रतिबिंब बनाये सो दिनमें सूर्यकी रोशनी और रात्रिमें चांदकी चांदनी सी हो गई। इस गुफामें सिंधु नदीके दोनों किनारों पर आधी २ सेना चलती रही। रास्तेमें दोनों दीवारोंसे दो नदियें आकर सिंधुमें मिली हुई मिलीं। एकका नाम निमग्नजला और दूसरीका नाम उन्मग्नजला था। भरतने इन्ही नदियों पर डेरा डालकर सिलावट रत्नको इनपर पुल बनानेका हुकम दिया। पुल बनजाने पर सब सेना पार हुई और गुफासे निकलकर पश्चिम म्लेच्छ खंडको तत्पश्चात् बीचके म्लेच्छ खंडको जीतकर पूर्वम्लेच्छखंड

जीता। समस्त राजाओंको आज्ञाकारी बनाकर फिर वृषभाचल-पर्वतके पास पहुंचे। जितने चक्रवर्त्ती होते हैं अपनी दिग्विजय पूरी होनेपर इस पर्वतपर अपना नाम पता अंकित कर जाते हैं सो भरत चक्रवर्त्ती भी अपना नाम अंकित करने लगा तो उस पर्वतपर पूर्व कालमें हुये चक्रवर्त्तियोंके नामोंसे कोई जगह खाली नहिं मिली तब एक चक्रवर्त्तीका लिखा नाम मेटकर अपना नाम अंकित करना पड़ा। तत्पश्चात् विजयार्द्धकी तलहटी में आये तो विजयार्द्धकी दोनों श्रेणियोंके स्वामी नमि विनमि इनके आधीन हुये और अपनी सुभद्रा बहनका भरतके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् गंगा नदी वाली पूर्वगुफाका दरवाजा खोलकर अपने देश आर्य खंडमें आये और समस्त दिग्विजय पूर्ण हो गई। परंतु चक्ररत्न (आयुध)ने आयुधशालामें प्रवेश नहिं किया जिससे निश्चय हुआ कि अभी तक विजय पूर्ण नहिं हुई, कोई न कोई राजा भरतकी आज्ञा मानना स्वीकार नहिं करता है। ऐसा निश्चय होने पर मंत्रियोंने विचार किया तो मालूम हुवा कि भरतके अन्य छोटे भाईयोंने तो भगवानकी आज्ञासे मुनिदीक्षा लेली थी परंतु भरतकी अपर माताके पुत्र बाहुबली जिनका शरीर ५५० धनुष ऊंचा है वे अपनेको स्वतंत्र राजा मानते हैं और भरताज्ञा शिरोधारण करनेकी कुछ परवाह नहिं रखते। भरतने बाहुबलिको समझाया परंतु बाहुबलि नहिं माने। अंतमें दोनों तरफकी सेना युद्धके लिये तयार हुई।

जब दोनों तरफसे युद्धका निश्चय हो गया और युद्ध प्रारंभ होनेका समय बिलकुल पास आ गया तो दोनो भाइयोंकि

मंत्रियोंने विचार किया कि—भरत और बाहुवली दोनों ही चर्मशरीर हैं दोनों ही मोक्षमें जानेवाले हैं अतएव इन दोनोंकी तो कुछ हानि नहिं होगी किंतु सेना व्यर्थ ही कटैगी। इसलिये मंत्रियोंने निश्चय किया कि-सेनाका युद्ध नहिं कराकर इन दोनों भाईयोंका ही युद्ध कराया जाय। दोनों राजावोंने यह बात स्वीकार करली तब मंत्रियोंने तीन युद्ध ठहराये। १ दृष्टियुद्ध, २ जलयुद्ध, और ३ मल्लयुद्ध। इन तीनों युद्धोंमें ही बाहुवलीने चक्रवर्तीको हरादिया। चक्रवर्तीने क्रोधित होकर बाहुवलीपर चक्र चलाया परंतु चक्र कुलघात नहिं करता सो बाहुवलीके पास जाकर वापिस चला आया जिससे भरत बड़ा लज्जित हुआ उसको लज्जित देखकर बाहुवली संसारसे विरक्त हो गये और भरत को कहा कि मैं इस पृथिवीका राज्य नहिं चाहता इसे तुम ही रक्खो मैं तप करूंगा।

बाहुवलीके दीक्षा ले लेने पर भरतने राजधानीमें प्रवेश किया और समस्त राजा महाराजाओं द्वारा भरतका राज्याभिषेक हुआ। इस समय भरतने बड़ाभारी दान किया।

भरत चक्रवर्तीकी सम्पत्ति इस प्रकार थी—नौ निधि-काल १ महाकाल २ नैसर्प ३ पांडुक ४ पद्म ५ माणव ६ पिंगल ७ शंख ८ सर्वरत्न ९। चौदह रत्न—चक्र, छत्र, दंड, खड्ग, मणि, चर्म, कांकणी, ये सात तौ निर्जीव और सेनापति, गृहपति, गज, अश्व, स्थपति, पट्टराणी, पुरोहित, ये सात सजीव रत्न थे। इनके सिवाय चौरासी लाख हाथी चौरासी लाख रथ अठारह करोड़ घोड़े चौरासी करोड़ पैदल सेना तीन करोड़ गउयें एक लाख करोड़ हल इत्यादि थे।

भरतकी आज्ञामें बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा और बत्तीस हजार ही देश थे तथा १८ हजार म्लेच्छखंडके राजा थे। छ्यानवे हजार रानियां थी जिनमें बत्तीस हजार भूमिगोचरी राजाओंकी ३२ हजार विद्याधरोंकी और बत्तीस हजार म्लेच्छ-राजाओंकी कन्यायें थी। इनमें प्रधान पटरानीका नाम सुभद्रा (स्त्रीरत्न) था। इस रानीमें इतना बल था कि यह चुटकियोंसे रत्नोंका चूर्ण कर देती थी।

भरतने अपनी लक्ष्मीका दान करनेके लिये ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की थी अपनी अयोध्याकी प्रजामेंसे जो व्रती, कोमल-चित्त धर्मरूप दयायुक्त गृहस्थ थे उन सबको परीक्षा द्वारा छांट-उनको ब्राह्मणके समस्त कर्म बताकर ब्राह्मण नाम रख दिया और उनको सबके आदर सत्कारका अधिकारी ठहराया।

भरतने कैलास पर्वत पर ७२ जिन मंदिर बनवाये थे। भरतचक्रवर्ती छहखंड राज्य और अटूट सुखसंपत्तिके अधिकारी और विषय भोगोंकी अति सामग्री होनेपर भी वे कामपुरुषार्थ साधनमें लवलीन न होकर धर्मपुरुषार्थमें लवलीन रहते और आत्मस्वरूपसे विमुख कभी नहिं होते थे इसीलिये लोग इन्हें (भरतजीको) घरहीमें वैरागी कहते थे।

इसप्रकार तीन पुरुषार्थोंका साधन करते हुये अपना जीवन बड़े सुखसे विता दिया। एक दिन दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि अपने बालोंमें एक सफेद बाल दिखाई दिया उसे देख अपना बुढ़ापा आया जान अपने पुत्र अर्ककीर्तिको राज्य देकर दीक्षा धारण की। वैराग्य तो गृहस्थावस्थामें ही चढ़ा चढ़ा था

इसलिये दीक्षा लेते ही थोड़े दिन बाद केवलज्ञान प्राप्त हो गया और हजारों वर्ष तक सर्वज्ञावस्थामें संसारको उपदेश देकर मोक्ष पधारे।

---

२२. जीवके गुण (१)

१। सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, जीवत्व, वैभाविक, कर्तृत्व, भोक्तृत्व वगेरह जीवके अनुजीवी गुण अनंत ।

२। अव्याबाध, अवगाह, अगुरुलघु, सूक्ष्म, नास्तित्व आदि अनेक जीवके प्रतिजीवी गुण हैं।

३। जिसमें पदार्थोंका प्रतिभास (जानना) हो उसे चेतना कहते हैं।

४। चेतना दो प्रकारकी है एक दर्शनचेतना, दूसरी ज्ञानचेतना।

५।जिसमें महासत्ताका (सामान्यका) प्रतिभास (निराकार झलक) हो उसे दर्शनचेतना कहते हैं।

६। समस्त पदार्थोंके अस्तित्व गुणके ग्रहण करनेवाली सत्ताको महासत्ता कहते हैं।

७। अंवातर सत्ताविशिष्ट विशेष पदार्थको विषय करनेवाली चेतनाको ज्ञानचेतना कहते हैं।

८। किसी विवक्षित पदार्थकी सत्ताको अवांतर सत्ता कहते हैं।

९। दर्शन चेतना चार प्रकारकी है, चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन, और केवल दर्शन।

१०। ज्ञानचेतनाके पांच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, और केवलज्ञान।

११। इंद्रिय और मनकी सहायतासे जो ज्ञान हो, उसे मतिज्ञान कहते हैं।

१२। मतिज्ञान दो प्रकारका है एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और परोक्ष। परोक्षमतिज्ञानके चार भेद हैं। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान।

१३। मतिज्ञान दूसरी तरहसे ४ प्रकारका है. अवग्रह, ईहा अवाय और धारणा.

१४। इंद्रिय और पदार्थके योग्य स्थानमें (मोजूद जगहमें) रहनेपर सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके पश्चात् अवांतरसत्ता सहित वस्तुके विशेष ज्ञानको अवग्रह कहते हैं. जैसे—यह मनुष्य है।

१५। अवग्रहसे जाने हुये पदार्थके विशेषमें उत्पन्न हुये संशयको दूर करते हुये अभिलाष स्वरूप ज्ञानको ईहा कहते हैं जैसे—ये ठाकुरदासजी हैं। यह ज्ञान इतना कमजोर है कि किसी पदार्थकी ईहा होकर छूट जाय तो उसके विषयमें कालांतरमें संशय और विस्मरण हो जाता है।

१६। ईहासे जाने हुये पदार्थमें यह वह ही है अन्य नहीं है ऐसे मजबूत ज्ञानको अवाय कहते हैं। जैसे ये ठाकुरदासजी ही हैं और

नहीं है। अवायसे जाने हुये पदार्थमें संशय तो नहिं होता किंतु विस्मरण हो जाता है।

१७। जिस ज्ञानसे जाने हुये पदार्थमें कालांतरमें संशय तथा विस्मरण नहिं होय उसे धारणा कहते हैं।

१८। मतिज्ञानके विषयभूत पदार्थ व्यक्त और अव्यक्त दो प्रकारके होते हैं।

१९। व्यक्त पदार्थके अवग्रहादि चारों होते हैं परंतु अव्यक्त पदार्थका सिर्फ अवग्रह ही होता है।

२०। व्यक्त पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह और अव्यक्त पदार्थके अवग्रहको व्यंजनावग्रह कहते हैं। किंतु व्यंजनावग्रह चक्षु और मनसे नहिं होता है।

२१। व्यक्त अव्यक्त पदार्थोंके वारह वारह भेद होते हैं। जैसे—बहु, एक, बहुविध, एकविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव

——:o:——

२३. धर्मोपदेश।

——:o:——

मत्तगयंद।

चेतन जी तुम चेतत क्यों नहिं, आवघटै जिमि अंजुलपानी।
सोचत सोचत जात सबै दिन, सोवत सोवत रैन विहानी॥
"हारि जुवारि चले कर झार", यहै कहनावत होत अज्ञानी।
छांड़ि सबै विषया सुख स्वाद, गहो जिनधर्म सदा सुखदानी॥१॥

पुन्य उदै गज बाजि महारथ, पाइक दौरत है अगवानी।
कोमल अंग स्वरूप मनोहर, सुंदर नारि तहां रतिमानी॥
दुर्गति जात चलै नहिं संग, चलै पुनि संग जु पापनिदानी।
यों मनमांहि विचारि सुजान, गहो जिनधर्म सदा सुखखानी॥२॥
मानुष भौ लहिकै तुम जो न, कह्यो कछु तौ परलोक करोगे।
जो करनी भवकी हरनी, सुखकी धरनी इस माहि वरोगे॥
सोचत हो अब वृद्धि लहैं, तब सोचत सोचत काठ जरोगे।
फेर न दाव चली यह आव, गहो निजभाव सु आप तरोगे॥३॥
आव घटै छिन ही छिन चेतन, लागि रह्यो विषया रस ही को
फेरि नहीं नर आव तुमै, जिम छाड़त अंध बटेर गहीको॥
आगि लगै निकसै सोई लाभ, यही लखिकै गहु धर्म सहीको
आव चली यह जात सुजान, गई सु गई अब राख रहीको॥४॥

कुंडलियां।

यह संसार असार है, कदली वृक्ष समान।
यामें सारपनो लखै, सो मूरख परधान॥
सो मूरख परधान मान, कुसुमनि[1] नभ देखै।
सलिल मथै घृत चहै, शृंग सुन्दर खर[2] पेखै॥
अवनिमाहि हिमैं[3] लखै, सर्पमुखमांहि सुधा चह।
जान जान मनमांहि, नांहि संसार सार यह॥५॥

कवित्त ३१ मात्रा।

तातमात सुत नारि सहोदर, इन्है आदि सबही परिवार।
इनमें वास सराय सरीखो, नदी नाव संजोग विचार॥

---

१ आकाशके फूलोंको। २ गधेके सुन्दर सींग। ३ वरफ।

यह कुटुंब स्वारथके साथी, स्वारथ विना करत हैं खार।
तातैं ममता छाड़ि सुजान, गहो जिनधर्म सदा सुखकार॥६॥
चेतन जो तुम जोरत हो धन, सो धन चलै चलै नहि लार।
जाको आप जानि पोषत हो, सो तन जरिकै ह्वै है छार॥
विषय भोगकैं सुख मानत हो, ताको फल है दुःख अपार।
यह संसार वृक्षसेमरको, मान कह्यो मैं कहूं पुकार॥ ७॥

सवैया इकतीसा।

सीस नाहि नम्यो जैन कान न सुन्यो सुबैन,
देखे नाहि साधु नैन, ताको नेह भान रे।
वाल्यो नाहिं भगवान करतैं न दयो दान,
उरमें न दया आन, यों ही परवान रे॥
पापकरि पेट भरि, पीठ दीन तीय पर,
पांव नांहि तीर्थ करि सहीसेती जान रे।
स्याल कहै वार वार अरे सुनि श्वान यार,
इसको तू डारि डारि देह निंद्य खान रे॥ ८॥
देखो चिदानंद राम ज्ञान दृष्टि खोल करि,
तात मात भ्रात सुत स्वारथ पसारा है।
तू तो इन आपा मानि ममता मगन भयो,
वह्यो भ्रममांहि जिनधरम विसारा है॥
यह तो कुटुंब सब दुःख ही को कारन है,

१ सेमरके वृक्षमें फल तौ सुन्दर होते हैं परंतु फलोंमें निःसार रूई होती है।

तजि मुनिराज निज कारज विचारा है ।
तातैं गहो धर्मसार, स्वर्ग मोक्ष सुखकार,
सोई लहै भवपार जिन धर्म धारा है ॥ ९ ॥

सोचत हो रैन दिन किहि विधि आवै धन,
सो तौ धन धर्म विन किनहू न पायो है ।
यह तौ प्रसिद्ध वात जानत जिहान सब,
धर्मसेती धन होय पापसों विलायो है ॥
धर्मके कियेतैं सब दुःखको विनास होत,
सुखको निवास परंपरा मोख गायो है ।
तातैं मन वच काय धर्मसों लगन लाय,
यह तो उपाय वीतराग जी वनायो है ॥ १० ॥

भम्यो तू अनंती वार सम्यक न लह्यो सार,
तातैं देव धर्म गुरु तीनों ठहराय रे ।
लागि रह्यो धन धाम इनसों है कहा काम,
जपै क्यों न जिननाम अंतलों सहाय रे ।
क्रोध है कठिन रोग छिमा औषधी मनोग,
ताको भयो है संयोग संगत उपाय रे.
पूरव कमायो सो तौ इहां आय खायो अब,
करि मनलाय जो पै आगैं जाय खाय रे ॥ ११ ॥

वाग चलनेको त्यार ढीलो तीरथ मझार,
झूठ कहनकों हुस्यार सांचे ना सुहाय रे ।
देखत तमासा रोज दर्शनको नांहि खोज,

विकथा सुनन चोज, शास्त्रको रिसाय रे।
खान पानकों खुस्याल व्रत सुनै विकराल,
श्रावककी कुलचाल भूल्यो बहु भाय रे।
पूरव कमायो सो तौ इहां आय खायो अब,
करि मनलाय जो पै आगे जाय खाय रे। १२॥

——:०:——

३४. श्रीअजितादितीर्थंकरोंका संक्षिप्त परिचय।

——:०:——

२। अजितनाथ तीर्थंकर।

छप्पय।

अजित अजित रिपु अजित हेमतन गज लच्छन भन।
पिताराय जित शत्रु, अत्र खरगासन आसन॥
लाख बहत्तर पुव्व आव पुर जनम अजोध्या।
धनुष चारसे साठि गाढ वच बहुप्रतिबोध्या॥
तजि विजय थान परधान पद, बसे विजै सैना उदर।
शिर नाय नमौ जुग जोरिकरि भो जिनंद भवतापहर॥२॥

१ श्री अजितनाथ। २ पिता-जितशत्रु। ३ माता-विजतसेना ४ आयु-बहत्तरलाखपूर्व। ५ शरीरका वर्ण-सुवर्णका। ६ कायकी उंचाई-चारसे साठ धनुष। ७ जन्म नगरी-अजोध्या। ८ लक्षण हस्ती। ९ पूर्व जन्मका स्थान विजय विमान। १० खड्गासनसे मुक्तिगमन।

३ । संभवनाथ तीर्थंकर ।

संभव संभव हरन, पुरी सावत्ती जानौ ।
मात सुसैना रूप, भूप दिढ राज प्रवानौ ॥
स्वर्गासन सुख स्वादि, आदिग्रीवकतैं आये ।
चिन्ह तुरंग उतंग रंग कंचन मय गाये ॥
थिति साठि लाख पूरव भुगति, धनुष चारि सै लाख चर ।
शिर नाय नमौ जुग जोरिकरि, भो जिनंद भवताप हर ॥ ३ ॥

अर्थ-१ श्री संभवनाथ २ पिता-दिढरथराय ३ माता-सुसैना देवी ४ लच्छन-घोड़ा ५ आयु-साठ लाख पूर्व ६ शरीरकी ऊंचाई चारसै धनुष ७ जन्म स्थान-श्रावस्ती नगरी ८ पूर्व जन्म का स्थान-प्रथम ग्रैवेयक ९ शरीरका वर्ण कंचनमय १० खड्गासनसे मुक्ति गमन ॥ ३ ॥

४ । अभिनन्दन तीर्थंकर ।

अभिनंदन अभिनंद, कंद सुख भूप स्वयंवर ।
माता सिद्धारथा कथा सुवरन तन मनहर ॥
तीनशतक पंचास धनुष तन नगरि विनीता ।
पुव्व लाख पंचास तास कपि लांछन मीता ॥
स्वर्गासन विजय विमानतैं, करम नास परकासकर ।
शिर नाय नमौ जुग जोरि करि, भो जिनंद भवतापहर ॥४॥

नाम-अभिनंदन तीर्थंकर । पिता-स्वयंवर । माता-सिद्धारथा । शरीरका वर्ण सुवर्ण । कायकी ऊंचाई ३५० धनुष । जन्म नगरी-विनीता । आयु-पंचास लाख पूर्व । लच्छन-बंदरका । पूर्व जन्म स्थान-विजय विमान । खड्गासनसे मुक्ति गमन ॥४॥

५ । सुमतिनाथ तीर्थंकर ।

सुमति सुमति दातार, सार बस वैजयंत मन ।
भूप मेघरथतात, मात मंगला कनक तन ॥
पुव्व लाख चालीस, ईस तन धनुष तीन सै ।
चकवाक लखि चिन्ह खर्ग आसन सुख विलसै ॥
छह मास अगाऊ गरभतैं, भयो विनीता सुर नगर ।
शिर नाय नमौ जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर ॥ ५ ॥

नाम-सुमतिनाथ तीर्थंकर। जन्म स्थान-विनीता पिता-मेघरथ। माता-मंगलादेवी। पूर्वजन्मस्थान—वैजयंत विमान। शरीर वर्ण—कनक। आयु चालीस लाख पूर्व। कायकी ऊंचाई-तीन सौ धनुष। लक्षण-चकवाक। खर्गासनसे मुक्ति गमन ॥५॥

६ । पद्मप्रभ तीर्थंकर ।

पद्म पद्म भरि भमर, पद्म लांछन सुखदाई ।
धरन भूप गुन कूप, स्वरूप सुसीमा माई ॥
अंतिम ग्रीवक वास, दुसै पंचास चाप तन ।
खर्गासन वहुसकत, रक्त तन हरख करन मन ॥
थिति तीस लाख पूरव पुरी, कौसंबी सबजन सुवर ।
शिर नाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर ॥६॥

नाम-पद्मप्रभतीर्थंकर। जन्म स्थान-कौसांबी। पिता-धरनि। माता-सुसीमादेवी। पद्चिन्ह—कमल। पूर्व जन्म स्थान—अंतिम ग्रैवेयक। शरीरकी ऊंचाई-दो सै पंचास धनुष। आयु—तीस लाख पूर्व। शरीरका वर्ण—लाल। खड्गासनसे मुक्ति गमन ॥ ६ ॥

७ । सुपार्श्वनाथ ।

देत सुपास सुपास, पंचग्रीवकतैं आये ।
सुपरतिष्ठ भूपाल, पृथी सैना मन भाये ॥
नगर बनारसि धाम, स्वाम खर्गासन राजै ।
चिन्ह सांथिया वीस, लाख पूरव थिति छाजै ॥
तन हरितवरन दो सै धनुप, सुर ढारैं चौंसठ चमर ।
शिर नाय नमौं जुग जोरिकरि, भोजिनंद भवताप हर ॥ ७ ॥

नाम-सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर । जन्म स्थान-बनारस । पिता—सुप्रतिष्ठित । माता-पृथ्वी सेना । आयु-वीस लाख पूर्व । शरीरं की ऊंचाई-दो सौ धनुप । चरणचिन्ह-सांथिया । पूर्व जन्म स्थान-पांचवां ग्रैवेयक । शरीरका वर्ण हरा । खड्गासनसे मुक्ति गमन ॥ ७ ॥

८ । चंद्रप्रभतीर्थंकर ।

चंदप्रभू प्रभचंद, चंदपुर चंद चिन्हगन ।
महा सेन विख्यात, मात लक्ष्मना स्वेत तन ॥
वैजयंततैं आय काय, खर्गासन धारी ।
आव पुव्व दश लाख, भये सबको सुखकारी ॥
डेढ़ सै धनुप तन भविक जन, हंसपाय तुम मानसर ।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर ॥

नाम-चंद्रप्रभ तीर्थंकर । पिता-महासेन । माता-लक्ष्मना । चरनचिन्ह-चंद्रमा । जन्म नगरी-चंद्रपुरी । शरीरका रंग-सफेद । पूर्व जन्म स्थान-वैजयंत विमान । आयु-दश लाख पूर्व । शरीर की ऊंचाई-डेढ सौ धनुप । खर्गासनसे-मुक्ति गमन ॥ ८ ॥

२५. जीवके गुण । (२)

——:o:——

२२। मतिज्ञानसे जाने हुये पदार्थसे संबंध लिये हुये किसी दूसरे पदार्थके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे—घट शब्दके सुननेके अनंतर कंबुग्रीवादि रूप घटका ज्ञान।

२३। ज्ञानसे पहिले दर्शन होता है, विना दर्शनके अल्पज्ञजनों के ज्ञान नहिं होता परंतु सर्वज्ञ देवके ज्ञान और दर्शन साथ २ होते हैं।

२४। नेत्रजन्य मतिज्ञानसे पहिले सामान्य प्रतिभास या अवलोकनको चक्षुर्दर्शन कहते हैं।

२५। चक्षु (नेत्र)के सिवाय अन्य इंद्रियों और मनके सम्बंधी मतिज्ञानके पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकनको अचक्षु दर्शन कहते हैं।

२६। अवधिज्ञानसे पहिले होनेवाले सामान्य अवलोकनको अवधि दर्शन कहते हैं।

२७। केवल ज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य अवलोकनको केवल दर्शन कहते हैं।

२८। वाह्य और अभ्यंतर क्रियाके निरोधसे प्रादुर्भूत आतमा की शुद्धि विशेषको चारित्र कहते हैं।

२९। हिंसा करना, चोरी करना, झूठ वोलना, मैथुन करना और परिग्रह संचय करना वाह्य क्रिया कहलाती है।

३०। योग और कषायको आभ्यंतर क्रिया कहते हैं।

३१। मन वचन कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके चंचल होनेको योग कहते हैं।

३२। क्रोध मान माया लोभ रूप आत्माके विभाव (मोहकर्म जनित) परिणामोंको कषाय कहते हैं।

३३। चारित्र चार प्रकारका है—स्वरूपाचरण चारित्र, देशचारित्र, सकल चारित्र, और यथाख्यात चारित्र।

३४। शुद्धात्मानुभवनके अविनाभावी चारित्र विशेषको स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

३५। श्रावकके व्रतोंको देशचारित्र कहते हैं।

३६। मुनियोंके चारित्रको (पांच पापोंके सर्वथा त्यागको) सकल चारित्र कहते हैं।

३७। कषायोंके सर्वथा अभावसे प्रादुर्भूत आत्माकी शुद्धिविशेषका यथाख्यात चारित्र कहते हैं।

३८। आल्हाद स्वरूप आत्माके परिणाम विशेषको सुख कहते हैं।

३९। आत्माकी शक्तिको (बलको) वीर्य कहते हैं।

४०। जिस शक्तिके निमित्तसे आत्माके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र प्रगट होनेकी योग्यता हो उसे भव्यत्व गुण कहते हैं।

४१। जिस शक्तिके निमित्तसे आत्माके सम्यग्दर्शनादिके प्रगट होनेकी योग्यता न हो उसे अभव्यत्व गुण कहते हैं।

४२। जिस शक्तिके निमित्तसे आत्मा प्राण धारण करै उसे जीवत्व गुण कहते हैं।

४३। जिनके संयोगसे यह जीव जीवन अवस्थाको प्राप्त हो और वियोगसे मरण अवस्थाको प्राप्त हो उनको प्राण कहते हैं।

४४। प्राण दो प्रकारका है, द्रव्य प्राण और भाव प्राण। द्रव्य प्राण दश प्रकारके हैं जैसे—मन, वचन, काय, स्पर्श इंद्रिय, रसना इंद्रिय, घ्राण इंद्रिय, चक्षुरिंद्रिय, श्रोत्र इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, आयु।

४५। आत्माकी जिस शक्तिके निमित्तसे इंद्रियादिक अपने कार्यमें प्रवर्तें उसे भावप्राण कहते हैं।

४६। एकेंद्रियके कुल चार प्राण—स्पर्शेंद्रिय, कायबल, स्वासोच्छ्वास और आयु होते हैं। द्वींद्रियके स्पर्शनेंद्रिय, कायबल श्वासोच्छ्वास आयु रसनेंद्रिय और वचन ये ६ प्राण होते हैं. त्रींद्रिय जीवके पूर्वोक्त छह और घ्राणेंद्रिय मिलकर सात प्राण होते हैं, चतुरिंद्रिय जीवोंके पूर्वोक्त सात और चक्षु मिलाकर आठ प्राण होते हैं। पंचेंद्रिय असैनी जीवोंके पूर्वोक्त आठ और एक श्रोत्रेंद्रिय मिलाकर नौ प्राण होते हैं और सैनी पंचेंद्रियके मन सहित दश प्राण होते हैं।

४७। भावेंद्रिय पांच और मनोबल, वचनबल, कायबल मिलकर भावप्राण आठ प्रकारका है।

४८। वैभाविक गुण उस शक्तिको कहते हैं जिसके निमित्तसे दूसरे द्रव्यके संबंध होनेपर आत्मामें विभाव परिणति हो।

४९। साता और असातारूप आकुलताके अभावको अव्याबाध प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

५०। परतंत्रताके अभावको अवगाह प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

५१। उच्चता और नीचताके अभावको अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

५२। इंद्रियोंके विषयरूप स्थूलताके अभावको सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी कहते हैं।

---:o:---

२६. व्यवसायचतुष्कसमस्यापूर्ति।

---:o:---

सवैया इकतीसा।

केई सुर¹ गावत है केई तौ बजावत है,
केई तौ बनावत है, भांड़े² मिट्टी सानके।
केई खाक पटके है, केई खाक झटके है,
केई खाक लपटै है, केई स्वांग आनिके॥
केई हाट बैठत है, अंबुधि³में पैठत हैं,
केई कान ऐंठत है, आप चूक जानिके।
एकसेर नाज काज आपनों शरीर त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्मकाज हानिके॥ ११॥
शिष्यको पढ़ावत है देहको बढ़ावत है,
हेमको⁴ गलावत हैं, नाना छल ठानिके।
कौड़ी कौड़ी मांगत हैं, कायर ह्वै भागत हैं,

---

१ राग। २ वर्तन। ३ समुद्रमें। ४ सोनेको गलाता है।

प्रात उठ जागत हैं स्वारथ पिछानिके ।
कागदको लेखत हैं केई नख पेखत हैं,
केई कृ‍षि[1] देखत हैं, अपनी प्रवानिके ।
एक सेर नाज काज अपनो स्वरूप त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्म काज हानिके ॥ २ ॥
केई नट कला खेलै केई पटकला वेलै,
केई घट कला झेलै आप वैद्य मानिके ।
केई नाचि नाचि आवें केई चित्रको बनावें,
केई देश देश धावें दीनता बखानिकै ।
मूरखको पास चहैं नीचनकी सेवा वहैं,
चौरनके संग रहैं लोक लाज मानिके ।
एक सेर नाज काज आपनो स्वरूप त्याज,
डोलत है लाज काज धर्म काज हानिकै ॥ ३ ॥
केई सीसको कटावें केई सीस बोझ लावें,
केई भूप द्वार जावें चाकरी निदानिकै[2] ।
केई हरी तोरत हैं पाहनको फोरत हैं,
केई अंग जोरत हैं हुनर विनानके[3] ।
केई जीव घात करै केई छंदकों उचरैं,
नाना विध पेट भरै, इन्हे आदि गनिके ।
एक सेर नाज काज आपनो स्वरूप त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्म काज हानिकै ॥ ४ ॥

---

१ खेतीकी । २ चाकरी आशा करके । ३ विज्ञान ।

२७. श्रीपुष्पदंतादि तीर्थंकरोंका संक्षिप्त परिचय।

९ पुष्पदंत.

छप्पय।

सुबुधि सुबुधि करतार, सार प्रानतके थानी।
महा भूप सुग्रीव जीव, जयवामा रानी॥
उज्जल वरन शरीर, धीर खर्गासन जानौं।
काकंदी पुरसाख, लाख दो पूरव मानौं॥
तन धनुष एक सौ भौरहित सहित चिन्ह जल चरम कर।
सिरनाय नमौं जुग जोरि कर, भो जिनंद भवताप हर॥ ९॥

नाम—सुविधिनाथ वा पुष्पदंत। पिता—सुग्रीव। माता—जयवामा। पदचिन्ह—मगरकच्छ। जन्मस्थान—काकंदीपुर। पूर्वजन्मस्थान-प्रानत स्वर्ग। शरीरका रंग—उज्जल (सफेद)। शरीरकी ऊंचाई-एकसौ धनुष। आयु-दोलाख पूर्व। खर्गासनसे मुक्तिगमन॥

१० श्रीशीतलनाथ.

सीतल सीतल वचन भद्रपुर आरन स्वरवर।
दिढरथ तात विख्यात, सुनंदा माता अवतर॥
निवै धनुषको देह, धीर कंचनमय गायो।
आव पुव्व इकलाख, खरग आसन सुख पायो॥
श्रीवृच्छचिन्ह केवल प्रगट, भिन्न भिन्न भाख्यो सुपर।
सिरनाय नमौं जुग जोरकर, भो जिनंद भवताप हर॥ १०॥

नाम—श्रीशीतलनाथ. पिता-दृढ़रथ, माता-सुनंदा, जन्म-स्थान-भद्दलपुरि । चरनचिन्ह-श्रीवृक्ष । पूर्वजन्मस्थान-आरन-स्वर्ग । आयु—एकलाखपूर्व । शरीरकी ऊंचाई—नव्वेधनुष । शरीरका रंग-कंचनमय । खड्गासनसे मुक्तिगमन ॥ १० ॥

११ । श्रेयांसनाथ तीर्थंकर ।

भज श्रेयांस श्रेयांस, स्वर्ग सोलमके वासी ।
विष्णुराज महराज, मात नंदा परकासी ॥
असी चाप तन माप, आप गेंडेको लञ्छन ।
खड्गासन भगवान, सिंहपुरि कनक वरन तन ॥
चौरासी लाख बरस भुगत, दुखदावानलमेघ झर ।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर. भोजिनंद भवताप हर ॥ ११ ॥

नाम-श्रेयांसनाथ, पिता विष्णुराज महाराज । माता-नंदादेवी, जन्मस्थान-सिंहपुरी (सारनाथ) । चरनचिन्ह—गेंडा । शरीरका-रंग—कनकमय, शरीरकी ऊंचाई अस्सी धनुष, आयु-चौरासी-लाख वरस पूर्व । जन्मस्थान—सोलहवां स्वर्ग, खड्गासनसे मुक्तिगमन ॥ ११ ॥

१२ । वासुपूज्य तीर्थंकर ।

वासु पूज्य वसु पूज्य, भूप वसु विधिसौं पूजौं ।
दशम लोकतैं आय. रक्त शुभकाय न दूजो ॥
सत्तर चाप शरीर, धीर चंपापुर आये ।
लंछन महिप मनोग, जोग पद्मासन गाये ॥

---

१ भद्दलपुरि यह नगर भेलसा नामसे ग्वालियर रियासतमें प्रसिद्ध है ।

थिति लाख बहत्तरि बरसकी, जयावती माता सुमर।
सिरनाय नमों जुग जोरिकरि, भो जिनंद भवताप हर ॥ १२ ॥

नाम—श्रीवासुपूज्य। पिता—वसुराजा। माता—जयावती, जन्मस्थान—चंपापुर। पदचिन्ह-महिष। शरीरका रंग—लाल। पूर्वजन्मस्थान—दशवां स्वर्ग शरीरकी ऊंचाई—सत्तर धनुष, आयु बहत्तरलाख वर्ष, पद्मासनसे मुक्ति गमन ॥ १२ ॥

१३। श्रीविमलनाथ तीर्थंकर।

विमलविमल अवलोक, लोक द्वादश वस स्वामी।
कंपिल्लापुर आय, काय कंचन जगनामी ॥
कृतवर्मा भूपाल, माल जयश्यामा माता।
सूकर चिन्ह निसान, साठधनु तन अविसाता ॥
थिति साठि लाख बरसन सुखी, खरगासन सवर्तें जु वर।
सिरनाय नमों जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर ॥ १४ ॥

नाम—विमलनाथ। पिता—कृतवर्मा। माता—जयश्यामा। नगरी-कंपिलापुर। चरनचिन्ह—सूअर। आयु—आठलाख बरस। कायकी ऊंचाई—साठधनुष। पूर्व जन्मस्थान-बारहवां स्वर्ग। शरीरका रंग-कंचनमय। खड्गासनसे मुक्तिगमन ॥ १३ ॥

१४। श्रीअनंतनाथ तीर्थंकर।

सुगुन अनंत अनंत, अंतसुर सोल जिनेश्वर।
सिंहसेन नृपराय, माय जयश्यामाके घर ॥
कनक बरन परकास, तास पंचास चाप तन।
आव लाख है तीस, ईस को सेही लच्छन ॥

खरगासन कौसलपुर जनम, कुशल तहां आठों पहर।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर॥ १४॥

नाम—श्रीअनंतनाथ। पिता—सिंहसेन। माता—जयश्यामा। जन्मनगरी—कौशलपुर। लच्छन—सेही। शरीरका रंग—कनकसा। शरीरकी ऊंचाई पचास धनुष। आयु—तीस लाख वरस। पूर्व जन्मस्थान—सोलहवां स्वर्ग। मुक्ति—खड्गासनसे॥ १४॥

१५। श्रीधर्मनाथ तीर्थंकर।

धर्म धर्म परकास, वास सरवारथ सिध भुव।
भान राज जसख्यात, मात सुप्रभा देवि हुव॥
खरगासन निहपाप, चाप चालीस पंचतन।
आव लाख दशवरस, सरस कंचनमय है तन॥
लखि वज्र चिन्ह शुभ रतनपुर, पार न पावै सुर निकर।
सिर नाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर॥ १५॥

नाम—श्रीधर्मनाथ। पिता भानुराज। माता—सुप्रभा देवी। जन्म नगरी—रतनपुर। पूर्व जन्मस्थान—सर्वार्थसिद्धि। लच्छन-बज्रका। शरीरका रंग—सुवर्णमय। शरीरकी ऊंचाई—पैतालीस धनुष। आयु—दश लाख वरस। मुक्ति—खड्गासनसे॥ १५।

१६। शांतिनाथ तीर्थंकर।

शांति जगत सब शांति भोगि सरवारथ सिधि रिधि।
काम देव तन कनक, रतन चौदहौं नवों निधि॥
विश्वसेननृप तात, मात ऐरा मृग लच्छन।
हथनापुरमें आय, पाय चालीस धनुष तन॥

थितिलाख वरस आसन पदम, नाम रटे अघ जाय हर।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर ॥ १६ ॥

नाम-श्री शांतिनाथ । आगमन-सर्वार्थसिद्धिसे। जन्म नगर-हस्तिनापुर। पिता-विश्वसेन राजा। माता-ऐरा देवी। लच्छन—हिरनका। वरन—सोनेका सा। शरीरकी ऊंचाई-चालीस धनुष। आयु-एक लाखवरस। पद्मासनसे मुक्ति गमन। ये भगवान् चौदह रत्न नवनिधिके स्वामी पाचवें चक्र वर्त्ती और कामदेव भी थे ॥ १६ ॥

——:०:——

२८. कर्मसिद्धांत (१)

——:०:——

१। संसारी और मुक्तके भेदसे जीव दो प्रकारके हैं।

२। कर्मसहित जीवको संसारी और कर्मरहितको मुक्त जीव कहते हैं।

३। जीवके रागद्वेषादिक परिणामोंके निमित्तसे कार्माणवर्गणा रूप जो पुद्गल स्कंध जीवके साथ बंधको प्राप्त होते हैं उनको कर्म कहते हैं।

४। बंध चार प्रकारका है। प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितबंध और अनुभाग बंध।

५। प्रकृति बंध और प्रदेशबंध तो योगोंसे होते हैं। स्थितिबंध और अनुभाग बंध कषायोंसे होते हैं।

६। मोहादिजनक तथा ज्ञान दर्शनादि घातक स्वभाववाले

कार्माण पुद्गलस्कंधका आत्मासे संबंध होनेको प्रकृतिबंध कहते हैं।

७। प्रकृति बंध आठ हैं,-ज्ञानावरण १, दर्शनावरण २, वेदनीय ३, मोहनीय ४, आयु ५, नाम ६, गोत्र ७, और अंतराय ८।

८। जो कर्म आत्माके ज्ञान गुणको घाते, उसको ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। ज्ञानावरण कर्म पांच प्रकारका है—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, और केवलज्ञानावरण।

९। जो आत्माके दर्शन गुणको घाते, उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं। दर्शनावरण कर्म नौ प्रकारका है। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला, और स्त्यानगृद्धि।

१०। जिसकर्मके फलसे जीवकै आकुलता हो, अर्थात् जो अव्याबाध गुणको घाते, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। वेदनीय कर्म साता वेदनीय असाता वेदनीयके भेदसे दो प्रकार है।

११। जो आत्माके सम्यक्त्व और चारित्रगुणको घाते उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। मोहनीय कर्म दो प्रकारका है, एक दर्शन मोहनीय, दूसरा चारित्र मोहनीय।

१२। जो आत्माके सम्यक्त्वगुणको घाते, उसे दर्शनमोहनीयकर्म कहते हैं।

१३। दर्शनमोहनीयकर्म तीन प्रकारका है। मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति।

१४। जिस कर्मके उदयसे जीवके अतत्त्वश्रद्धान हो, उसे मिथ्यात्व कहते हैं।

१५। जिसकर्मके उदयसे मिले हुये परिणाम हों, अर्थात् जिनको न तो सम्यक्त्वरूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्वरूप उसको सम्यक्मिथ्यात्व कहते हैं।

१६। जिस कर्मके उदयसे सम्यक्त्व गुणका मूलघात तो न हो चलमलादिक दोष उपजै, उसको सम्यक्प्रकृति कहते हैं।

१७। जो आत्माके चारित्र गुणको घातै उसको चारित्र मोहनीय कहते हैं।

१८। चारित्र मोहनीयके मूल दो भेद हैं, एक कषाय और दूसरा नोकषाय।

१९। कषाय सोलह प्रकारका है। अनंतानुवंधी क्रोध, अनंतानुवंधी मान, अनंतानुवंधी माया, अनंतानुवंधी लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण मान, अप्रत्याख्यानावरण माया, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण लोभ, संज्वलन क्रोध, संज्वलनमान, संज्वलन माया, और संज्वलन लोभ।

२०। नोकषाय नव प्रकारका है, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

२१। जो आत्माके स्वरूपाचरण चारित्रको घातैं उनको अनंतानुवंधी क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

२२। जो आत्माके देश चारित्रको घातैं उनको अप्रत्याख्याना

वरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

२३। जो आत्माके सकल चारित्रको घातैं उनको प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

२४। जो आत्माके यथाख्यात चारित्रकों घातैं उनको संज्वलन क्रोध मान माया लोभ और नोकषाय कहते हैं।

२५। जो कर्म आत्माको नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवके शरीरमें रोक रक्खै उसको आयुकर्म कहते हैं अर्थात् आयुकर्म आत्माके अवगाह गुणको घातता है।

२६। आयुकर्म चार प्रकारका है। नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायुः और देवायुः।

२९ गृहदुःखचतुष्क।

———:०:———

सवैया ३१सा।

रुजगार बनै नाहिं धन तौ न घरमाहि,
खानेकी फिकर बहु नारि चाहै गहना।
देनेवाले फिर जाहिं मिलै तौ उधार नाहिं,
साझी मिले चौर, धन आवै नाहि लहना॥
कोऊ पूत ज्वारी भयो घरमांहि सुत थयो,
एक पूत मर गयो ताको दुख सहना।
पुत्री वर जोग भई, ब्याही सुता जम लई,
एते दुःख सुख जाने तिसै कहा कहना॥ १॥

देह माहिं रोग आयो चाहिजे जिया भरायो,
फटगये अंबर[1] चरयाँ[2]-दासी हैं नहीं ।
नारीमन जार भायो तासों चित्त अतिलायो,
यह तौ निवल वह देत दुख अतिही ॥
गृहमाहि चौर परैं आगी लगै सब जरै,
राजा लेहि लूट बांधै मारै सीस पनही ।
इष्टको वियोग औ अनिष्टको संजोग होइ,
एते दुःख सुख मानै सो तौ मूढ़मति ही ॥ २ ॥
जेठ मास धूप परै प्यास लगै देह जरै,
कहीं सुनी सादी गमी तहां जायो चहिये ।
वर्षामें सुचात भोन लकरी निवरि गई,
ताकों चल्यो लैन पांव डिग्यो दुख लहिये ॥
शीतके समयमांहि, अंबर नवीन नाहिं,
भूख लगै प्रात, मिलै नाहिं कष्ट सहिये ।
जे जे दुःख गृह माहि, कहांलों, बखाने जांहिं,
तिन्हैं सुख जानै सो तो महा मूढ़ कहिये ॥ ३
तिनैं[3]को पुरानो घर कौडिं[4]सौ न धान जामें,
मूसे बिल्ली सांप बीछू न्योले जु रहत हैं ।
भाजन तौ मृत्तिकाके फूटे खाली धान नाहिं,
टूटी जो खैरैं[5] खाटमल्लि[6]का लहत हैं ॥

---

१ कपडे । २ जूतियां । ३ घासको । ४ कोडीभर । ५ विना बिछोनेके चुभनेवाली । ६ जिसमें खटमल है ।

कुटिल कुरूप नारी कानी काली कलिहारी,
कर्कश वचन बोलैं औगुन महत हैं।
हा हा मोहकर्मकी विडंवना कही न जाइ,
ऐसो गृह पाय मूढ़ त्याग्यो ना चहत है॥ ८॥

——:०:——

३०. श्रीकुंथनाथ तीर्थंकरादिका संक्षिप्त परिचय।

१७। श्रीकुंथुनाथ।

छप्पय।

कुंथु कुंथु रखवार, सार सरवारथ सिधिवस।
हस्तिनागपुर आय, काय चामीकर हर सस॥
सूर सैन नृप जैन, ऐन श्रीकांता शुभ मन।
आयु पँचानवे हजार वरस, पैंतीस धनुष तन॥
खरगासन लच्छन छाग शुभ, तारे जिन वैरागधर।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भव तापहर॥ १७॥

नाम—श्रीकुंथुनाथ। पूर्वस्थान—सर्वार्थसिद्धि। जन्मस्थान—हस्तिनापुर। पिता—सूरसैन राजा। माता—श्रीकांता। लच्छन बकरा। शरीरका वरन—ताये सोनेकासा। शरीरकी ऊंचाई—३५ धनुष। आयु—पंचानवें हजार वरस। मुक्तिगमन—खड्गासनसे। ये तीर्थंकर भी छट्ठे—चक्रवर्ती थे॥ १७॥

१८। श्रीअरनाथ तीर्थंकर।

अर अरि करि—हर सिंह, जयंतविमान जानि जन।

भूप सुदरसन सार, मित्रसैना माता भन ॥
हस्तिनागपुर आय, चापतन तीस विराजै।
थिति चौरासी सहस वरस, कंचन छवि छाजै ॥
खरगासन लंछन मीन शुभ, बैन जलदसर भविक भर।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर ॥ १८ ॥

नाम—अरनाथ। पिता—सुदरसनराय। माता—मित्रसैना। आये—जयंतविमानसे। जन्मनगर—हस्तिनापुर। लच्छन—मीन। शरीरका रंग—कंचनमय। शरीरकी ऊंचाई—तीस धनुष। आयु चौरासी हजार वरस। मुक्ति—खड्गासनसे। ये भी चक्रवर्ती थे ॥ १८ ॥

१९। श्रीमल्लिनाथ तीर्थंकर।

मल्लिकरमरिपुमल्ल, थान अपराजित जानो।
मिथिलापुर अवतार, सार घट चिन्ह पिछानो ॥
कुंभराजमहराज, खरग आसन सरदहिये।
धनुप पचीस शरीर, सहस पचपन थिति लहिये।
देवी प्रजावती कनकतन, अमल अचल अविकल अजर।
शिरनाय नमौ जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर ॥१९॥

नाम—श्रीमल्लिनाथ, पिता—कुंभराज महाराज, माता-प्रजावतीदेवी। आये—अपराजित विमानसे। जन्मस्थान मिथिलापुर, लच्छन घटका। शरीरका रंग सुनहरी। शरीरकी ऊंचाई—पचीस धनुष। आयु पचपन हजार वर्षकी। मुक्तिगमन-खड्गासनसे॥१९॥

२०। श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकर।

मुनि सुव्रत व्रतवर्ग, स्वर्ग प्रानतके थानी।

भूप सुमित्र पवित्र, मित्र शुभ सोमा रानी ॥
राजगृहीमैं आय काय कज्जल छवि छाजै ।
बरस सहसथिति तीस बीस तन चाप बिराजै ॥
लच्छन कछुआ आसन खरग, दीनदयाल दया नजर ।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर ॥ २० ॥

नाम—श्रीमुनिसुव्रत। पिता सुमित्र महाराज । माता—सोमादेवी । पूर्वस्थान—प्रानतस्वर्ग । जन्मनगर—राजगृही। लच्छन—कछुआ । शरीरका रंग—कज्जल श्याम । आयु-तीस हजार बरसकी । शरीरकी ऊंचाई— बीस धनुष । मुक्ति—खड्गासनसे । २० ॥

२१ । श्रीनमिनाथ तीर्थंकर ।

नमि नमि सुरनरराज, राज सरवारथसिधकर ।
विजयराज महराज, विप्पुलारानी उर धर ॥
आव बरस दशसहस. पुरी मिथिला सुखदाई ।
पंद्रह धनुष शरीर, खरगआसन लौलाई ॥
तन कनक वरन लच्छन कमल, ज्ञानभान भ्रमतिमर हर ।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर ॥ २१ ॥

नाम—श्रीनमिनाथ । पिता—विजयराज । माता—विपुलारानी । लच्छन—लाल कमल । शरीरका रंग-सोनेकासा । पूर्वस्थान—सर्वार्थसिद्धि । जन्मस्थान—मिथिलापुरी । शरीरकी ऊंचाई—पंद्रह धनुष । आयु— दशहजार बरस । मुक्ति—खड्गासनसे ॥२१॥

२२। श्री नेमिनाथ तीर्थंकर।

नेमि धरमरथनेमि, अयंतविमान वास किय।
समुदविजै महाराज, सिवादेवी जानो जिय॥
नगर द्वारिकानाम, श्यामतन जनमन हारी।
आव बरस इक सहस, चापदश रजमति छारी॥
खरगासन आसन मोखको, संखचिन्ह हरिवंशनर।
सिरनाय नमौं कर जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर॥२२॥

नाम—श्रीनेमिनाथ। पिता—समुद्रविजय। माता—सिवादेवी। नगरी द्वारिका। शरीरका रंग—श्याम। पूर्वस्थान—अयंतविमान। लच्छन—शंख। आयु—एक हजार वर्ष। शरीरकी ऊंचाई—दशधनुष। खड्गासनसे मुक्तिगमन। २२॥

२३। श्रीपार्श्वनाथतीर्थंकर।

पास पास भवनास, बास आनत करि आये।
अश्वसैन अवदात, मात वामा मन भाये॥
नगर बनारसि थान, जानि फनि लच्छन स्वामी।
आव एकसौ बरस, खरगआसन शिवगामी॥
तन हरित बरन नवकर धरन, वज्र प्रगट संवरशिखर।
सिरनाय नमौ जुग जोरिकर, भो जिनंद भवतापहर। २३॥

नाम—श्रीपार्श्वनाथ। पिता—अश्वसेन। माता—वामादेवी लच्छन—सर्प। जन्मनगरी—बनारस। पूर्वस्थान—आनतस्वर्ग। शरीरका रंग हरिताभ। शरीरकी ऊंचाई ९ हाथ। आयु सौ वर्ष। मुक्तिगमन—खड्गासनसे॥ २३॥

२४ । श्रीवर्द्धमान भगवान ।

वर्द्धमान जस वर्द्धमान अच्युत विमान गति ।
नगर कुंडपुर थार, सार सिद्धारथ भूपति ॥
रानी—प्रियकारिणी, वनी कंचन छविकाया ।
आव वहत्तर वरस, जोग खरगासन ध्याया ॥
तनसात हाथ मृगनायपति तुमतैं अवलौं धरम जर ।
सिरनाय नमौं जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर ॥ २४ ॥

नाम—श्रीवर्द्धमान वा महावीर । पिता—सिद्धारथराजा । माता—प्रियकारिणी अपरनाम त्रिशलादेवी । लच्छन—सिंहका । जन्मस्थान—कुंडलपुर । पूर्वजन्मस्थान—अच्युत स्वर्ग । शरीरका रंग—कंचनमय । आयु—बहत्तरवरस । शरीरकी ऊंचाई सात हाथ । खड्गासनसे मुक्तिगमन ॥ २४ ॥

२५ । समुच्चयतीर्थंकर नाम स्मरण ।

रिषभ अजित संभव अभिनंद सुमति पदमसम ।
जिन सुपास प्रभुचंद, सुविधि सीतल श्रेयांस नम ॥
वासुपूज्यजी विमल, अनंत धरम पंदरमा ।
शांति कुंथु, अर मल्लि सु मुनिसोव्रित वीसमा ॥
नमि नेमि पास वीरेसपद, अष्टसिद्धि नवरिद्धि धर ।
सिरनाव नमौं जुग जोरिकरि भो जिनंद भवतापहर ॥ २५ ॥

पांच बालब्रह्मचारी तीर्थंकर ।

वासुपूज्य सुरपूज्य, मल्लि विधिमल्ल जयंकर ।
नेमि देह यमनेम, पास भी पास छयंकर ॥

महावीर महावीर, धीर परपीर निवारन।
बड़े पुरुष संसार, सार संपति सुखकारन॥
ए पंच कुमर पदई सुमर, कठिन शील बालक उमर।
सिरनाय नमों जुग जोरिकर, भो जिनंद भवताप हर॥ २६॥

—:o:—

३१. कर्मसिद्धांत। (२)

(नाम कर्म)

२७। जो कर्म जीवको गति आदिक नानारूप परिणमावै अथवा शरीरादिक बनावैं उसको नामकर्म कहते हैं। नामकर्म आत्माके सूक्ष्मत्वगुणको घातता है।

२८। नामकर्म तिरानवे प्रकारका है चारगति (नरक, तिर्यक् मनुष्य देव) पांच जाति (एकेंद्रिय, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय) पांच शरीर (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण,) तीन आंगोपांग (औदारिक वैक्रियिक आहारक) एक निर्माण कर्म पांच बंधनकर्म (औदारिकबन्धन, वैक्रियिकबंधन. आहारक बंधन, तैजसबंधन, कार्माणबंधन) पांच संघात (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण) छह संस्थान (समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामसंस्थान, हुंडकस्थान) छह संहनन (वज्रवृषभनाराच संहनन वज्रनाराच संहनन नाराचसंहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलकसंहनन, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन) पांचवर्ण-

कर्म (कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत) दो गन्धकर्म (सुगंध, दुर्गंध) पांच रसकर्म-(खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला, चर्परा) आठ स्पर्श (कठोर, कोमल, हलका, भारी, ठंडा, गरम, चिकना रूखा) चार आनुपूर्व्य (नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव) एक अगुरु लघुकर्म, एक उपघात कर्म, एक परघात कर्म, एक उद्योत कर्म, दो विहायोगति (एक मनोज्ञ दूसरा अमनोज्ञ) एक उच्छ्वास, एक त्रसकर्म, एक स्थावर, एक बादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्तकर्म, एक अपर्याप्तकर्म, एक प्रत्येक नामकर्म, एक साधारण नाम कर्म, एक स्थिरनामकर्म, एक अस्थिरनाम कर्म, एक शुभनामकर्म, एक अशुभनाम कर्म, एक सुभगनाम कर्म, एक दुर्भगनाम कर्म, एक सुस्वरनाम कर्म, एक दुःस्वरनाम कर्म, एक आदेयनाम कर्म, एक अनादेयनामकर्म, एक यशस्कीर्तिनाम कर्म, एक अयशःकीर्तिकर्म, एक तीर्थंकरनामकर्म।

२९। जिस कर्मके उदयसे जीव नारकी, तिर्यंच मनुष्य और देवके गतिमेंसे किसी एक गतिको छोड़कर दूसरी गतिमें जाय उसको गति नाम कर्म कहते हैं।

३०। अव्यभिचारी सदृशतासे जो पदार्थोंको एक तरहका बतलावे उसे जाति कहते हैं।

३१। जिस कर्मके उदयसे एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, कहा जाय उसको जातिनामकर्म कहते हैं।

३२। जिस कर्मके उदयसे आत्माके औदारिक आदि शरीर बनै उसको शरीरनाम कर्म कहते हैं।

३३। जिस कर्मके उदयसे अंग उपांगोंकी ठीक २ रचना हो उसको निर्माण कर्म कहते हैं।

३४। जिस कर्मके उदयसे औदारिकादिक शरीरोंके परमाणु परस्पर संबंधको प्राप्त हों उसको बंधननाम कर्म कहते हैं।

३५। जिस कर्मके उदयसे औदारिकादि शरीरोंके परमाणु छिद्ररहित एकताको प्राप्त हों उसे संघात नाम कर्म कहते हैं।

३६। जिस कर्मके उदयसे शरीरकी आकृति (शकल) बने उसे संस्थाननाम कर्म कहते हैं।

३७। जिस कर्मके उदयसे शरीरकी शकल ऊपर नीचे बीच॰ में समभागसे बने, उसे समचतुरस्रसंस्थान कहते हैं।

३८। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर बड़के वृक्षकी तरह नाभिसे नीचेके अंग छोटे और ऊपरसे बड़े हों उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं।

३९। जिस कर्मके उदयसे नाभिसे ऊपरके अंग छोटे और नीचेके बड़े हों उसे स्वातिसंस्थान कहते हैं।

४०। जिस कर्मके उदयसे कुबड़ा शरीर हो उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं।

४१। जिस कर्मके उदयसे बौना (छोटा) शरीर हो उसे वामनसंस्थान कहते हैं।

४२। जिस कर्मके उदयसे शरीरके आंगोपांग किसी खास शकलके न हों उसे हुंडक संस्थान कहते हैं।

४३। जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंका बंधन विशेष हो उसे संहनननाम कर्म कहते हैं।

४४। जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़, वज्रके वेठन, और वज्रकी ही कीलियां हो उसे वज्रर्षभनाराचसंहनन कहते हैं।

४५। जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़ और वज्रकी कीली हों परंतु वेठन वज्रके न हों उसे वज्रनाराच संहनन कहते हैं।

४६। जिस कर्मके उदयसे वेठन और कीली सहित हाड़ हों उसे नाराचसंहनन कहते हैं।

४७। जिस कर्मके उदयसे हाड़ोंकी संधि अर्द्धकीलित हो उसे अर्द्धनाराचसंहनन कहते हैं।

४८। जिस कर्मके उदयसे हाड ही परस्पर कीलित हों उसे कीलकसंहनन कहते हैं।

४९। जिस कर्मके उदयसे जुदे हाड नसोंसे बंधे हों, परस्पर कीले हुये न हों उसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन कहते हैं।

५०। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें रंग हो उसे वर्णनाम कर्म कहते हैं।

५१। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें गंध हो, उसे गन्धनाम कर्म कहते हैं।

५२। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें रस हो उसे रसनाम कर्म कहते हैं।

५३। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें स्पर्श हो उसे स्पर्शनाम कर्म कहते हैं।

५४। जिस कर्मके उदयसे आत्माके प्रदेश मरणके पीछे और जन्मसे पहिले रास्तेमें अर्थात् विग्रहगतिमें मरणसे पहिलेके शरीरके आकार रहैं, उसे आनुपूर्वी कर्म कहते हैं।

५५। जिस कर्मके उदयसे शरीर लोहेके गोलेके समान भारी और आकको रूईके समान हलका न हो उसे अगुरुलघु नाम कहते हैं।

५६। जिस कर्मके उदयसे अपने ही घात करनेवाले अंग हों उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं।

५७। जिस कर्मके उदयसे दूसरेका घात करनेवाले अंग उपांग हों, उसे परघात नाम कर्म कहते हैं।

५८। जिस कर्मके उदयसे आतापरूप शरीर हो उसे आताप कर्म कहते हैं। जैसें सूर्यका प्रतिविंव।

५६। जिस कर्मके उदयसे उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं।

६०। जिस कर्मके उदयसे आकाशमें गमन हो उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। इसके शुभविहायोगति और अशुभविहायोगति दो भेद हैं।

६१। जिस कर्मके उदयसे श्वसोच्छ्वास हों उसे उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं।

६२। जिस कर्मके उदयसे द्वींद्रिय आदि जीवोंमें जन्म हो उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

६३। जिस कर्मके उदयसे पृथिवी अप तेज वायु और वनस्पतिमें जन्म हो उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

६४। जिस कर्मके उदयसे अपने २ योग्य पर्याप्ति पूर्ण हों उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

६५। आहार वर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणाके परमाणु ओंको शरीर इंद्रियादिरूप परिणमावनेकी शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते हैं।

६६। पर्याप्ति छह प्रकारकी है—आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति, मनःपर्याप्ति,

६७। आहारवर्गणाके परमाणुओंको खल और रसभागरूप परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको आहार पर्याप्ति कहते हैं।

६८। जिन परमाणुओंको खलरूप परिणमाया था उनके हाड वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रसरूप परिणमाया था उनको रुधिर आदि द्रव्यरूप परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको शरीरकी पर्याप्ति कहते हैं।

६९। आहारवर्गणाके परमाणुओंको इन्द्रियके आकारपरिणमावनेको तथा इन्द्रियद्वारा विषय ग्रहण करनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको इंद्रियपर्याप्ति कहते हैं।

७०। आहारवर्गणाके परमाणुओंको श्वासोच्छ्वासरूप परिणमावनेको कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

७१। भाषावर्गणाके परमाणुओंको वचनरूप परिणमावनेके लिये कारणभूत जीवकी शक्तिकी पूर्णताको भाषापर्याप्ति कहते हैं।

७२। मनोवर्गणाके परमाणुओंको हृदयस्थानमें आठ पांखुरी

के कमलाकार मनरूप परिणमावनेके तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करनेके लिये कारणभूत जीवकी पूर्णताको मनःपर्याप्ति कहते हैं।

७३। एकेंद्रिय जीवके भाषा और मनके विना चार पर्याप्ति होती हैं। द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय और असैनी पंचेंद्रियके मनके विना पांच पर्याप्ति होती हैं और सैनी पचेंद्रियके छहों पर्याप्ति होती हैं। इन सब पर्याप्तियोंके पूर्ण होनेका काल अंतर्मुहूर्त्त है और एक एक पर्याप्तिका काल भी अन्तर्मुहूर्त्त है और सबका मिलकर भी अंतर्मुहूर्त काल है। परंतु पहिलेसे दूसरेका दूसरेसे तीसरेका इसी प्रकार छठे तकका काल क्रमसे बड़ा बड़ा अंतर्मुहूर्त्त है। अपने २ योग्य पर्याप्तियोंका प्रारंभ तो एकदम होता है किंतु पूर्णता क्रमसे होती है। जबतक किसी जीवकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो परंतु नियमसे पूर्ण होनेवाली हो तबतक उस जीवको निवृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं और जिसकी शरीरपर्याप्ति पूर्ण हो गई हो उसे पर्याप्तक कहते हैं। जिसकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो तथा श्वासके अठारहवें भागमें ही मरण होनेवाला हो, उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं।

७४। जिस कर्मके उदयसे लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो उसको अपर्याप्तिक नाम कर्म कहते हैं।

७५। जिस कर्मके उदयसे एक शरीरका एक ही स्वामी हो उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं।

७६। जिस कर्मके उदयसे एक शरीरके अनेक जीव स्वामी

(मालिक) हों, उसे साधारण नामकर्म कहते हैं ।

७७ । जिस कर्मके उदयसे शरीरके धातु उपधातु अपने २ ठिकाने रहैं उसको स्थिर नामकर्म कहते हैं और जिस कर्मसे शरीरके धातु उपधातु अपने अपने ठिकाने न रहैं उसको अस्थिर नामकर्म कहते हैं ।

७८ । जिस कर्मके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर हों उसको शुभनाम कर्म कहते हैं ।

७९ । जिसके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर न हों उसको अशुभ नामकर्म कहते हैं ।

८० । जिस कर्मके उदयसे दूसरे जीव अपनेसे प्रीति करैं उसको सुभग नाम कर्म कहते हैं

८१ । जिस कर्मके उदयसे दूसरे जीव अपनेसे दुश्मनी या वैर करैं उसको दुर्भग नामकर्म कहते हैं ।

८२ । जिस कर्मके उदयसे अच्छा स्वर हो उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं ।

८३ । जिसके उदयसे स्वर अच्छा न हो उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं ।

८४ । जिस कर्मके उदयसे कांति सहित शरीर पैदा हो उसको आदेय नामकर्म कहते हैं ।

८५ । जिसके उदयसे कांति सहित शरीर न हो उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं ।

८६ । जिस कर्मके उदयसे संसारमें जीवकी प्रशंसा हो उस

को यशः कीर्ति नामकर्म कहते हैं।

८७। जिस कर्मके उदयसे जीवकी प्रशंसा न हो उसे अयशः-कीर्ति नामकर्म कहते हैं।

८८। तीर्थंकर भगवानके पदके कारणभूत कर्मको तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं।

३२. सगर चक्रवर्ती और भगीरथ महाराज।

भगवान अजितनाथके समयमें इक्ष्वाकुवंशमें दूसरे चक्रवर्ती महाराज सगर हुये। इनके पिताका नाम समुद्र विजय, माताका नाम सुवाला था। इनकी आयु सत्तर लाख पूर्वकी और शरीर साढ़े चार सौ धनुष ऊंचा था, ये अठारह लाख पूर्वतक महामंडलेश्वर राजा थे। इसके बाद इनकी आयुधशालामें चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई तब छहों खंडोंको विजय करके चक्रवर्ती हो गये।

प्रथम भरत चक्रीके समान इनके यहां भी चौदह रत्न नवनिधि ९६ हजार स्त्रियं वगेरह समस्त संपदायें एकसी थीं, इनके साठ हजार पुत्र थे।

एक दिन श्रीचतुर्मुख नामक केवलज्ञानधारीके ज्ञान कल्याणके उत्सवमें स्वर्गोंके देव आये और सगर भी गया था तो उन देवोंमें सगरचक्रवर्तीका एक मित्र मणिकेतु नामका देव था, उसने सगर महाराजसे प्रार्थना की कि—जब तुम स्वर्गमें थे तब तुमने हमने प्रतिज्ञा की थी कि—दोनोंमेंसे जो कोई प्रथम मनुष्य भवमें

जावै उसको स्वर्गस्थ देव संवोधन करके तप ग्रहण करावे सो अब संसारके भोग बहुत भोग चुके, स्वर्गोंकेसे भोग तो इस मनुष्य भवमें है ही नहीं, इसकारण इन भोगोंसे विरक्त होकर तप ग्रहण कीजिये। परन्तु सगरने यह स्वीकार नहिं किया। देवने अनेक यत्न किये परन्तु सब निष्फल हुये दूसरी बार मणिकेतु देव चारण मुनिका रूप धरकर सगरके यहां आया और बहुत कुछ समझाया परंतु पुत्रादिकोंके मोहमें मग्न हुये सगरचक्रवर्त्तीने गृहस्थावस्था नहिं छोड़ी।

सगरके साठ हजार पुत्रोंने एक दिन अपने पितासे कहा कि हम सब जवान हो गये, हमारे लिये किसी भी असाध्य कार्यकी आज्ञा दें तो हम वह साध लावें। चक्रवर्त्तीने कहा कि—पृथिवी तो हमने जीत ली है अब कोई कार्य नहीं है, इसलिये तुम लोग खाओ पीओ और संसारके सुख भोगो। उसवक्त तो सब कुंअर चले गये परंतु कुछ दिनों बाद फिर वही प्रार्थना की कि—हमें कुछ काम बताइये, तब चक्रवर्त्तीने कहा कि कैलास पर्वतपर भरत महाराजने ७२ जिनमंदिर बनवाये हैं आगे निकृष्ट काल आता है सो उनकी रक्षाके लिये तुम लोग ऐसा करो कि- कैलास पर्वतके चारों तरफ खाई खोदकर उसमें गंगाकी नहर लाकर भरदो। तब समस्त पुत्र आज्ञा शिरोधारण कर कैलासपर गये और दंडरत्नकी सहायतासे कैलासके चारों तरफ खाई खोदकर गंगाके प्रवाहसे भर दिया।

इसी समय उपर्युक्त सगरके मित्र मणिकेतु देवने अपने

मित्रको समझाकर संसारसे उदासीन होनेका अच्छा मोका देख कर सर्पका रूप धारण करके अपनी फुंकारसे सगरके समस्त पुत्रोंको वेहोश कर दिया। फिर एक लड़केकी लास कंधेपर लेकर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके सगरके पास गया और कहने लगा कि महाराज! आप सबके रक्षक हैं. यमराजने मेरे जवान पुत्रको अकालमें ही मार दिया सो आप इसकी रक्षा करें इसपर सगर चक्रवर्तीने कहा कि-संसारमें यमकी दाढ़से जीव को निकालनेवाला कोई नहीं है इसलिये हे वृद्ध! तुम इस लासका मोह छोड़कर तप धारण करो, नहीं तो आज कलमें तुमको भी यमकी दाढ़में जाना पड़े तो आश्चर्य नहीं। तब ब्राह्मणने कहा कि-आपका कहना यथार्थ है परंतु मैंने रास्तेमें अभी २ सुना है कि-कैलासकी खाई खोदते २ आपके सब पुत्र मर गये, आप क्यों नहीं तप धारण करते? इसको सुनते ही चक्रवर्ती वेहोश हो गया और शीतोपचारसे जब चेत आ गया तो एक राजदूतने आकर सब पुत्रोंके मरनेकी खबर सुनाई जिससे चक्रवर्तीको संसारकी अनित्यतासे बड़ा भारी वैराग्य हो गया और उसीवक्त विदर्भा रानीके पुत्र भगीरथको राज्य देकर आपने तप धारण कर लिया।

तत्पश्चात् मणिकेतु देवने उन साठ हजार पुत्रोंको सचेतकर के कहा कि—तुमारे पिताने तुम सबका मरण समाचार सुनकर भगीरथको राज्य देकर तप धारण कर लिया है। यह बात सुनते ही उन सबको वैराग्य हो गया और जो मार्ग हमारे पिताने

लिया वही हम भी लेंगे सो वे दीक्षा ले गये और भगीरथ महाराजने अणुव्रत लिये। चक्रवर्ती और उनके पुत्र सबको यथासमय केवलज्ञान प्राप्त हुआ और सब मोक्षमें गये।

भगीरथ महाराजने जब पिताके मोक्ष जानेका समाचार सुना तो शिवगुप्त मुनिके पास कैलासपर गंगाके किनारे मुनिदीक्षा धारण कर ली। देवोंने आकर उसी गंगाके जलसे भगीरथका अभिषेक किया। भगीरथके चरणोंसे गंगाके जलका संयोग होनेके कारण गंगा नदी पवित्र हो गई और भागीरथीके नामसे प्रसिद्ध हुई और उसी दिनसे लोग इसे तीर्थ मानने लगे। भगीरथ महाराजको भी केवलज्ञान हुआ और कैलास पर्वतसे मोक्ष को पधार गये।

——:०:——

३३. छहढाला प्रथमढाल।

सोरठा।

तीनभवनमें सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥ १ ॥

मैं (दौलतराम) तीनलोकमें सार कल्याण करनेवाली मोक्षस्वरूप वीतराग विज्ञानताको (निर्दोषज्ञानरूपी विद्याको) मन वचन कायको सम्हालकर नमस्कार करता हूं॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा।

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत। सुख चाहैं दुखतैं भयवंत॥

तातैं दुखहारी सुखकारि। कहैं सीख गुरु करुणा धारि॥
ताहि सुनहु भविमन थिर आन। जो चाहै अपना कल्यान॥

तीन लोकमें जो अनंत जीव हैं. वे सबही सुख चाहते हैं दुखसे भयभीत रहते हैं। इसकारण दयाकरके श्रीगुरु दुखको हरनेवाली सुखको करनेवाली शिक्षाको (आगें) कहते हैं। उसे मनको स्थिर करके सुनो।

मोहमहामद पियो अनादि। भूल आपको भरमत वादि॥
तास भ्रमनकी है बहु कथा। पै कछु कहूं कही मुनि जथा॥

यह जीव अनादि कालसे अज्ञानरूपी मदिराको पीकर असली स्वरूपको भूलकर व्यर्थही संसारमें भ्रमण करता है। इस भ्रमण करनेकी बहुत बड़ी कहानी है उसको जैसी–पूर्वाचार्योंने कही है, मैं भी कुछ कहता हूं।

काल अनन्त निगोद मझार। बीत्यो एकेंद्रिय तन धार॥
एकश्वासमें[1] अठदश बार। जन्म्यो मरचो भरचो दुखभार॥
निकसि भूमि जल पावक भयो। पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥
दुर्लभ लहिये चिंतामणी। त्यों परजाय लही त्रसतणी॥
लट पिपील अलि आदि शरीर। धर धर मरचो सही बहु पीर॥

प्रथम तो इस जीवने अनादिकालसे एकेंद्रियका शरीर धारण करकें अनंतकाल निगोदमें ही विताया सो वहां एक श्वासमें

१। एक मुहूर्त्त दो घडी अर्थात् ४८ मिनिटका होता है। इस एक मुहूर्त्तमें ३७७३ श्वासोच्छ्‌वास होते हैं ऐसे एक श्वासमें।

अठारहवार जन्म मरन करके बहुत ही दुख भोगा। निगोदसे निकलकर फिर पृथिवीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, और प्रत्येक वनस्पतिकायमें एकेंद्रिय स्थावर जीव होकर नाना प्रकारके दुख बहुत काल तक भोगे। तत्पश्चात्-जिसप्रकार चिंतामणिरत्न बड़ी कठिनतासे मिलता है उसीप्रकार त्रसपर्याय बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुई। उस त्रसपर्यायमें लट, चिवटी, भ्रमर वगेरहके शरीर धारण करके मरा और अनेकप्रकारके दुःख सहे॥ ६॥

कवहूं पचेंद्रिय पशु भयो। मनविन निपट अज्ञानी थयो॥
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर। निवल पशू हति खाये भूर॥
कवहू आप भयो वलहीन। सवलनिकरि खायो अति दीन॥
छेदन भेदन भूख पियास। भारवहन हिम आतप त्रास॥
वध वंधन आदिक दुख घने। कोटि जीभतैं जात न भने॥
अतिसंक्लेशभावतैं मरयो। घोर शुभ्रसागरमें परयो॥

दैव योगसे कभी पंचेंद्रिय पशु हुवा तौ मन विना निपट अज्ञानी हुवा, मनसहित सैनी पंचेंद्रिय हुवा तौ सिंह व्याघ्र आदि क्रूरहिंसक जीव हुआ सो अनेक निर्वल पशुवोंको मारकर पेट भरा। कभी स्वयं वलहीन दीन पशु हुवा तौ सकल पशुवों द्वारा खाया गया इसके सिवाय छेदन, भेदन, भूख मरना, वोझा ढोना, सीत सहना, गर्मीका सहना, मारना बांधना वगेरह अनेकप्रकारके ऐसे दुख सहे जो करोड़ जीभोंसे भी वर्णन करनेमें नहि आवै। तत्पश्चात् संक्लेश भावोंसे मरकर घोर नरकरूपी समुद्रमें जाकर पड़ा॥ ६॥

तहां भूमि परसत दुख इस्यो। बीछू सहस डसैं तन तिसौ॥
तहां राध शोणित वाहिनी। कृमिकुलकलित देहदाहिनी॥

उस नरकमें पृथिवी ऐसी है कि उसके छूनेसे ऐसा दुख होता है जैसा कि हजार विच्छूके काटनेसे होता है। उस नरकमें राध (पीव) और लोहूकी नदी अनेक प्रकारके कीड़ोंसे भरी हुई देहको जलानेवाली बहती है॥ १०॥ तथा—

सेमरतरु जुतदल असि पत्र। असि ज्यों देह विदारै तत्र॥
मेरुसमान लोह गलि जाय। ऐसी शीत उष्णता थाय॥

उस नरकमें तलवारकी धारके समान तीखे पत्तेवाले सेमरके वृक्ष हैं उनके नीचे जाते ही वे पत्ते गिरकर तरवारकी माफिक शरीरको काट देते हैं वहां शीत और गर्मी भी ऐसी है कि जिसमें सुमेरुकी वरावर लोहेका पिंड डाला जाय तौ तत्काल गल जाय॥ ११॥

तिल तिल करहिं देहके खंड। असुर भिडावैं दुष्ट प्रचंड॥
सिंधु नीरतैं प्यास न जाय। तो पण एक न बूंद लहाय॥

ऐसे नरकमें नारकी जीव एक दूसरेकी देहके तिल तिल भर टुकड़े कर देते हैं। तथा दुष्ट असुर कुमार देव भी उनके पूर्व जन्मके वैर याद कराकर लड़ाते हैं। नरकमें प्यास इतनी है कि समुद्रका जल पीने पर भी नहिं मिटै परंतु कभी एक बूंद पानी भी नहिं मिलता॥ १२॥

तीन लोकको नाज जु खाय। मिटै न भूख कणा न लहाय॥
ये दुख बहु सागरलों सहै। कर्मयोगतैं नरतन लहै॥

उस नरक में भूख पसी है कि तीन लोकका समस्त नाज खाले तो भी न मिटै परंतु वहां पर एक कण भी खानेको नहिं मिलता इस प्रकारके दुःख यह जीव सागरों तक सहता है। तत्पश्चात् किसी शुभ कर्मके निमित्तसे मनुष्य शरीर प्राप्त करता है॥ १३॥

जननी उदर वस्यो नवमास। अंग सकुचतैं पाई त्रास॥
निकसत जे दुख पाये घोर। तिनको कहत न आवै ओर॥
बालपनेमें ज्ञान न लह्यो। तरुणसमय तरुणीरत रह्यो॥
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो। कैसैं रूप लखै आपनो॥ १५॥

मनुष्य जन्ममें यह माताके पेटमें नवमास रहा सो वहां शरीर सुकडा हुआ रहनेसे बहुत दुख पाया। तत्पश्चात् पेटसे निकलते हुये जो भयानक दुःख भोगे उनको तौ जीभसे कहनेमें अंत ही नहिं आता। बालकपनमें तो हिताहितका ज्ञान ही नहिं होता और जवानीमें स्त्रीमें मग्न रहा, तीसरी अवस्था बूढ़ापन है सो वह अधमरे मनुष्यकी समान वेकाम होती है। ऐसी अवस्थामें यह जीव अपने स्वरूपको किस प्रकार पहचानै? ॥ १५॥

कभी अकाम निर्जरा करै। भवनत्रिकमें सुरतन धरै॥
विषय चाह दावानल दह्यो। मरत विलाप करत दुख सह्यो॥
जो विमानवासी हू थाय। सम्यग्दर्शन विन दुख पाय॥
तहतैं चय थावर तन धरै। यों परिवर्त्तन पूरे करै॥ १७॥

कभी यह जीव अकाम[1] निर्जरा करता है तो भवनवासी

---

1 समतासे कर्मोंका फल भोगनेसे जो कर्म झड जाना, वह अकाम निर्जरा है।

व्यंतर या ज्योतिषी देवोंका शरीर धारण करता है परंतु वहां भी हर समय विषयोंकी चाहरूपी अग्निमें जलता रहा और मरा तब अनेक प्रकारके विलाप करकें दुख पाया। जो कभी स्वर्गका भी देव हुआ तौ सम्यग्दर्शन विना सदा दुख ही पाता है। ऐसी दशामें स्वर्गसे मरकर फिर एकेंद्रियका शरीर धारण करता है और इसी प्रकार यह जीव संसारमें (चारों गतियोंमें) भ्रमण करता फिरता है॥ १७॥

——:o:——

३४. दसरथ राम लक्ष्मण सीता।

भगवान् ऋषभदेवसे इक्ष्वाकुवंश चला था जिसका दूसरा नाम सूर्यवंश भी है। इस वंशमें भगवान् ऋषभदेवके पश्चात् बड़े २ राजा महाराजा चक्रवर्ती अनेक महापुरुष (पुरुषरत्न) हो गये इसी वंशमें अजुध्या नगरीमें एक सर्वरथ उनके हिरदरथ, हिरदरथके सिंहदमन, सिंहदमनके हिरण्यकश्यप, हिरण्यकश्यपके पुंजस्थल और पुंजस्थलके रघु वडा पराक्रमी पुत्र हुवा। रघुके अरण्य नामका पुत्र हुवा। अरण्यकी पृथिवीमती रानीके दो पुत्र हुये। एक अनंतरथ, एक दशरथ।

महिष्मती नगरीका राजा सहस्त्ररश्मि अरण्यका परम मित्र था। जब लंकाधिपति रावणने युद्धमें सहस्त्ररश्मिको जीत लिया और सहस्त्ररश्मि संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होकर दीक्षा लेने लगे तौ अपने मित्र अरण्यको पूर्वमें की हुई प्रतिज्ञाके अनु-

सार अपने दीक्षित होनेके समाचार भेजे। यह समाचार सुन महाराज अरण्य भी अपने लघुपुत्र दशरथको राज्य देकर बड़े पुत्र अनंतरथ सहित मुनिदीक्षा धारण करके महान तपके द्वारा समस्त कर्मोंको नष्ट कर निर्वाणको प्राप्त होगये।

इधर राजा दशरथ अयोध्यामें रह कोशल देशका राज्य करने लगे और नवयौवनको प्राप्त होकर पृथिवीमें प्रसिद्ध हो गये। महाराज दशरथने दरभस्थल नगरका राजा कौशल, रानी अमृतप्रभाकी पुत्री कौशल्या जिसका दूसरा नाम अपराजिता था, व्याही। तत्पश्चात् एक कमलसंकुल नामक बड़े नगरके राजा सुबंधु, रानी—मित्राकी पुत्री सुमित्राको व्याहा। तीसरे—किसी अन्य नगरके महाराजतिलक नामक राजा, रानी सुलभाकी पुत्री—सुप्रभा व्याही। राजा दशरथने राज्यका परम उदय पाकर सम्यग्दर्शनको रत्न समान जान दृढ़तासे धारण किया और राज्यको तृण समान मानने लगा। क्योंकि राज्यको नहिं त्यागै तो नरक गति हो और त्याग दे तो स्वर्ग वा मोक्ष प्राप्ति हो। पूर्वकालमें जो अनेक चैत्यालय मंदिर चक्रवर्ती भरत महाराजने बनवाये थे उन सबका जीर्णोद्धार राजा दशरथने कराया जिससे नवीनसे दीखने लगे। तथा तीर्थंकरोंके कल्याणक स्थानोंकी रत्नोंसे पूजा करता हुवा।

एक दिन महाराज दशरथ प्रतापसहित अपनी सभामें विराजता था सो नारदजी (ब्रह्मचारी) आकाशमार्गसे उतरते हुवे आये उन्होने महाराज दशरथको अपने सुमेरुपर्वत विदेहक्षेत्र

आदि समस्त जगहके दर्शन यात्रा व उत्सव देखनेका वृत्तांत कहकर एकांतमें ले जाकर कहा कि—"मैं दर्शनके लिये पर्यटन करता २ लंकामें रावणकी सभामें गया था वहां एक ज्योतषीसे रावणने पूछा कि—मेरी मृत्यु किस कारणसे होगी तब ज्योतिषीने कहा कि—राजा दशरथके पुत्र और राजा जनककी पुत्रीके कारणसे होगी सो रावण बड़ा घबड़ाया। विभीषणने कहा—आपको घबड़ानेकी जरूरत नहीं, मैं इन दोनोंके पुत्र पुत्रीके पैदा होनेसे पहिले ही उनका सिर काट लाऊंगा। फिर मेरेसे पूछा कि महाराज! आप सर्वत्र विहार करते हैं सो इन दोनों राजावोंका हाल जानते होंगे। तब मैंने कहा कि—मैं बहुत दिनोंसे इनके यहां गया नहीं सो वहां जाकर दोनोंकी खबर कहूंगा ऐसा कह कर मैं दौड़कर तुमारे पास आया हूं सो महाराज! आप कुछ दिनतक भेष बदलकर देशांतरमें चले जांय तो ठीक है। विभीषण आपके मारनेको अवश्य आवैगा, मुझे शीघ्रही राजा जनक कोभी यह खबर देनी है।" ऐसा कहकर नारदजी आकाशमार्गसे तुरंत ही मिथिलापुरी पहुंचे और महाराज जनकको भी सावधान कर दिया। सो दोनोही राजावोंके मंत्रिओंने राजावोंको तो भेष बदलकर देशाटन करनेको भेज दिया और दोनों ही महाराजावोंका एक एक नकली पुतला बनाकर सतखने महलमें रख दिया और महाराज बीमार हैं सो महलोंमें ही रहते हैं, यह प्रसिद्ध करदिया और यहांतक गुप्त प्रबंध किया कि दोनों मंत्री और राजाओंके सिवा पांचवा मनुष्य कोई भी इस भेदको नहिं जानता था।

तत्पश्चात् प्रतिज्ञानुसार विभीषणने कई सुभट भेजे परंतु उनकी खबर न मिलनेसे स्वयं विभीषणने ही अजुध्या और मिथलापुरी जाकर दोनों जगह महलोंमें अपने खास मनुष्यको भेजकर दोनोंका माथा कटवाकर रावणको दिखाया। तब रावण निश्चिंत हुआ, परंतु विभीषणने यह कार्य करके बड़ा पश्चाताप किया कि मैंने बड़ा अन्याय किया जो दो राजाओंकि व्यर्थ ही प्राण लिये उसके प्रायश्चित्तार्थ जिनमंदिरमें जाकर बड़ा पूजन महोत्सव करके पुण्योपार्जन किया और इस महा पापकी आलोचना करके फिर ऐसा कार्य कदापि नहीं करूंगा ऐसी प्रतिज्ञाकी।

महाराज दशरथ और महाराज जनक दोनों मिलकर अकेले देशाटन करने लगे। सो एक दिन उत्तर दिशामें कौतुकमंगल नामक नगरके समीप आये। यहांपर राजा शुभमति राज करता था, उसकी रानी पृथुश्रीसे केकई नामकी महागुणवती सुंदर पुत्री समस्त प्रकारकी विद्या और कलाओंमें चतुर थी। उसके योग्य वर न मिलनेसे राजाने स्वयंवरमंडप रचा था सो देश देशके सैकड़ों राजकुंवर अपने विभवसहित आये थे. ये दोनों राजा भी अपने दीन भेषसे इस स्वयंवरको देखनेके लिये खड़े थे। सो मनुष्योंके समस्त लक्षणोंकी ज्ञाता केकईने समस्त राजा वा राजकुंवरोंको उलंघन कर एक किनारे खड़े हुये दशरथ राजाको हृदय कमल और नेत्रदृष्टिरूपी मालासे वरण कर लोकदिखाऊ रत्नमालासे वरण किया। जिसको देखकर न्यायी राजा तो प्रसन्न हुये कि वहुत ही योग्य वरको प्राप्त हुई और अनेक राजाओंने उदास हो अपना २ रास्ता लिया परन्तु अनेक राजा

वा राजकुमार बोले कि-इतने बड़े २ राजा महाराजाओंको छोड़-
कर एक अज्ञातकुलशील विदेशीको वरमाला पहनाई सो कन्या
मूर्ख है इस दीनको मारकर कन्या छीन लो। तब कन्याके पिता
महाराज शुभमतिने राजा दशरथसे कहा कि-हे भव्य! मैं इन
दुष्टोंको निवारण करता हूं तुम कन्याको रथमें बिठाकर अन्यत्र
जाओ। तब दशरथ महाराजने हंसकर कहा कि-आप निश्चिंत
रहिये मैं अभी आपके देखते २ इन सब गीदड़ोंको भगाये देता हूं
ऐसा कहकर रथपर चढ़ गये और केकई सर्व कलामें चतुर रथ
हांकने लगी सो समस्त प्रधान २ राजाओंको युद्ध करके भगा
दिया। केकईके रथ हांकनेकी चतुराईसे ही अकेले दशरथने
समस्त राजाओंको जीतकर विजयलक्ष्मी प्राप्त की तत्पश्चात्
कौतुकमंगल नगरमें केकईका पाणिग्रहण करके गाजे बाजे और
मंगलाचार सहित अजोध्या आये और राजा जनक मिथलापुरी
गये और फिरसे जन्मोत्सव व राज्याभिषेक हुआ। महाराज दश-
रथने समस्त रानियोंके सामने केकईसे कहा कि-तेरी रथ हांकने
की चतुराईसे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ सो तू मन चाहा वर मांग,
तब केकईने विनयपूर्वक प्रार्थना की कि मेरा वर अपने पास जमा
रक्खें, जब मुझे जरूरत होगी तब मांग लूंगी। तब राजाने कहा
कि-ठीक है। तेरा वर जमा है जब जरूरत हो तब मांग लेना।

इसप्रकार महाराज दशरथ चारो रानियों सहित नाना प्रकार
के विषय भोग करते हुये सुखसे राज्य करने लगे। तत्पश्चात्
क्रमसे कौशल्याके उदरसे रामचन्द्र सुमित्राके लक्ष्मण और
केकईके भरत तथा सुप्रभाके शत्रुघ्न इसप्रकार चार पुत्ररत्न

उत्पन्न हुये। चारों ही के जन्म समय नाना प्रकारके उत्सव हुये दरिद्रोंको किमिच्छा दान दिया और जिनमंदिरोंमें मंडलविधान आदि परम उत्सव किये। जब चारो भाई बड़े हो गये तब समस्त प्रकारकी विद्यायें पढ़ाई गईं विशेषकर धनुर्विद्याके जान- कार विद्वानसे धनुर्विद्या सिखाई, जिससे चारो ही भाई समस्त विद्याओंके पारगामी हो गये।

चंपापुरके राजा चक्रध्वज रानी मनस्विनीके चित्रोत्सवा नामकी सुंदर कन्या थी सो कुमारी चटशालामें पढ़ती थी। उसी राजाका पुरोहितका पुत्र पिंगल भी उसी पाठशालामें पढ़ता था सो इन दोनोंके परस्पर प्रीति हो गई। पिंगलने चित्रोत्सवाको कहा कि—महाराज मेरे साथ तेरा विवाह हरगिज न करेंगे इस कारण चलो, कहीं भग चलें। तब वह पिंगल राजपुत्रीको लेकर जहां अन्य राजाओंकी गम्य नहीं ऐसे विदर्भ नगरमें आकर नगर के बाहर कुटी बनाकर रहने लगा और दोनों जने तृण काष्ट बेच कर बड़े कष्टसे गुजारा करने लगे। उस नगरके राजा प्रकाश- सिंहका पुत्र कुंडलमंडित एक दिन चित्रोत्सवाको देख कर मोहित हो गया सो अपनी दुती भेजकर चित्रोत्सवाको अपने महलमें बुला लिया सो नाना भोग भोगने लगा। इधर पिंगल स्त्रीके हरण से पागलसा हो गया परंतु भ्रमता २ एक दिन आर्यगुप्तमुनिके दर्शन हो गये, उपदेश पाकर दिगम्बर मुनि हो गया सो मरकर भवनवासी देव हुआ और चित्रोत्सवा और कुंडलमंडित श्रावक के व्रत धारकणर मरे सो दोनों ही राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भ आये। भवनवासी देवने अवधिज्ञानसे विचारकर देखा

तौ मालूम हुवा कि-चित्रोत्सवा और कुंडल मंडित मेरा शत्रु विदेहाके गर्भमें है। इसको मेरी स्त्रीके हरणका दंड अवश्य देना चाहिये सो विदेहाके पैदा होते ही वह देव पुत्रको उठाकर ले गया परंतु पीछे पापसे भयभीत हो उसके कानोंमें कुंडल पहनाकर पर्णलब्धि नामक विद्याके द्वारा आकाशसे पृथिवीपर छोड़ दिया सो विजयार्द्धके दक्षिणश्रेणीके रथनूपुरके राजा चंद्रगति नामक विद्याधरने आकाशसे पड़ा देख उसको उठा लिया और इसे प्रभावशाली बालक समझ अपनी पुष्पावती रानीकी जांघोंमें रखकर तेरे पुत्र हुवा कहकर जगाया और यह किसी बड़े कुलका पुत्र है कहकर समझा बुझाकर रानीको पालनेके लिये राजी किया और पुत्रजन्मोत्सव करके विद्याधरने उसका नाम भामण्डल रक्खा।

इधर पुत्र हरा जान राजा जनक और विदेहाने बड़ा दुःख किया, सर्वत्र खोज कराई पता नहिं लगा। परंतु कन्याकी सुंदरता देख संतोष किया। और इसका नाम सीता रक्खा। कुछ दिनों बाद वैताढ्य पर्वतके दक्षिण कैलास पर्वतके उत्तर भागमें अनेक अंतर देश हैं उनमें एक अर्द्धवर्वर देशमें असंयमी जीवोंकी ही वसती है। वह देश महा मूढ़ म्लेच्छोंसे भरा है। उस देशमें मयूरमाला नगरीका म्लेच्छ आतरंगल नामका राजा अनेक म्लेच्छोंकी सैना लेकर आया। देशोंको लूटता हुआ जनक राजाके देशोंको भी लूटनेकेलिये आया। महाराजा जनकने म्लेच्छोंको प्रवल समझकर महराज दशरथके पास दूत भेजकर राम लक्ष्मणको बुलाया सो इन दोनों भाइयोंने आकर समस्त म्लेच्छोंको

जीतकर भगा दिया और राजा जनकको निर्भय कर दिया। इसी उपकारसे प्रसन्न होकर जनकने श्रीरामचंद्रको सीता व्याह देने का विचार पक्का करके दशरथ वा रामको प्रार्थना की और इन्होंने भी यह संबंध स्वीकार कर लिया। नारदजी, रामचंद्रजी को सीता देनेकी है, सुनकर सीताको देखनेके लिये जनकके यहां आये। इनको परम शील व्रतके धारी होनेसे सब राजाओंके यहां रणवासमें जानेकी छुट्टी थी सो ये जनकके रणवासमें गये उस समय सीता दर्पणमें मुख देख रही थी सो नारदजीकी जटा वा दाढ़ीकी छाया दर्पणमें पड़नेसे भय चकित हो मातासे पुकारने लगी-हाय माता! कौन आ गया। सो डरके मारे भीतर महलमें चली गई। नारदजी भी जाने लगे तो पहरेदार खोजेने रोक दिया और दूसरे पहरेदार-'कौन है? कौन है? पकड़ लो' इत्यादि कह कर नारदजीको पकडने लगे परंतु नारदजीके पास आकाशगामिनी ऋद्धि थी सो वे तुरंत ही आकाश मार्गसे चल दिये। सीताको एक दृष्टि देख आये थे, सो अपना अपमान समझ उसपर बड़ा कोप किया और किसी न किसी प्रकार इसे कष्टमें डालना चाहिये ऐसा विचारकर सीताका चित्रपट लिखकर रथनूपुर गया सो भामंडल बागमें बैठा था उसके सामने वह चित्रपट डाल दिया। देखते ही वह मोहित हो गया और इसके व्याहे बिना कुमारका जीना मुसकिल है यह जानकर चंद्रगति विद्याधरने मंत्रीसे मंत्र करके जनकको लानेकेलिये एक विद्याधरको भेजा। वह विद्याधर अपनी विद्यासे मायामयी घोड़ा बनाकर जनकको घोड़ेपर बिठाकर उड़ा लाया और रथनूपुरके वनमें एक जिनमं-

दिरके पास छोड़ दिया । जनक महाराज प्रसन्न होकर जिनमंदिर में गये, दर्शन किया चंद्रगतिने भी खबर पाकर तुरंत ही जिन-मंदिरमें आयकर भावसहित पूजन स्तुति की । फिर जनकसे मिलकर प्रसन्न होकर बोला कि तुम अपनी पुत्री सीता हमारे पुत्र भामंडलको व्याह दो । जनकने कहा कि—उसको तो मैंने दशरथके पुत्र रामचंद्रको देना स्वीकार कर लिया है क्योंकि उन्होंने म्लेच्छ-राजाको हराकर मेरे राज्यकी रक्षा की । चंद्रगतिने बहुत सम-झाया पर जनकने एक न मानी रामचंद्र लक्ष्मणके पराक्रमकी प्रशंसा ही करता रहा । तब चंद्रगतिके मंत्रियोंने कहा कि—हमारे यहां वज्रावर्त्त और सागरावर्त्त दो धनुष हैं सो रामचंद्र लक्ष्मण इन्हें चढ़ा सकें तब तो सीता रामचंद्रको व्याह देना अगर नहिं चढ़ा सकें तो हम बलात्कार सीताको लाकर भामंडलको व्याह देंगे । जनकने यह बात स्वीकार कर ली तब अनेक विद्याधर सुभट दोनों धनुषोंको लेकर मिथिलापुरी आये और नगरके बाहर एक आयुधशाला बनाकर वहां दोनों धनुष रख दिये ।

महाराज जनकने श्रीरामचंद्र लक्ष्मण आदि समस्त देशोंके राजा और राजकुमारोंको निमंत्रण देकर बुलाया और स्वयंवर मंडप रचा । जब सब देशोंके राजा आ गये तब सीताको वरमाला देकर कहा गया कि हे पुत्री ! जो वीर इन दो धनुषोंको चढा सके उसीके गलेमें वरमाला डालना । सो उन धनुषोंकी अनेक देव रक्षा करते थे और उनमेंसे अग्निकी ज्वाला निकलती थी । तब और सब राजा तो उन्हें देखते ही हताश हो गये परंतु रामचन्द्रजी

इन धनुषोंके पास आये। इनके पुण्यके प्रतापसे अग्नि शीतल हो गई और वज्रावर्त्त धनुषको चढ़ाया जिसके शब्दसे समस्त राजा प्रजा भयकंपित हो गये। तत्पश्चात् लक्ष्मणने दूसरा सागरावर्त्त धनुष चढ़ाया तब विद्याधर वगैरह सब ही उदास हो गये और सीताने रामके गलेमें वरमाला पहनादी और उन्हीके साथ विवाह हो गया। दोनों भाई दोनों धनुष और जानकीको लेकर अयोध्या गये।

इधर धनुषके साथ जो विद्याधर आये थे सो उनने रथुनूपुर जाकर चंद्रगतिसे सब समाचार कहे। उस परसे भामंडल कुपित होकर सीताको छीनकर लानेके लिये विमानोंमें बैठकर चल दिया परंतु जब अपने पूर्वजन्मके स्थान विदर्भनगर पर आया तौ उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया और यह जानकी तौ मेरी सगी वहन है यह जानकर वड़ा खिन्न हुआ और अपनेको बड़ापापी समझ धिक्कारने लगा फिर शांतचित्त हो अपने घर आया। माता पिताने उसे मलिनमुख देख प्यारसे पूछा कि क्या बात है? तब उसने कहा कि मैंने बड़ा पाप किया सीता तो मेरी सगी बहन है। मैं और वह दोनो विदेहाके गर्भसे एक साथ पैदा हुये। मुझे शत्रु देव ले गया सो उसने पटक दिया तब आप ले आये पालन किया तत्पश्चात् अजोध्या जाकर बहन सीतासे मिला। वह भ्राता को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई फिर रामचंद्र आदि सबसे मिलकर परम आनंदके साथ मिथिलापुरी जाकर माता पिताके दर्शन कर उनको प्रसंन्न किया, नगरमें बडाभारी उत्सव हुवा। जनकने बड़ेभारी दान पूजनादि किये।

एक दिन राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनि महाराजसे अपने पूर्वभव पूछे सो सुनकर वैराग्यको प्राप्त हुवा। मंत्रियोंको बुला कर कहा कि मैं अब जिनदीक्षा ग्रहण करूंगा सो मंत्री आदि सवही यह बात सुनकर उदासीन हो गये। भरतने सुनकर बडा आनन्द माना और पिताके साथ मैं भी मुनिदीक्षा धारण करूंगा ऐसा प्रगट किया। चारों रानियां भी वड़ी उदासीन हुईं विशेष कर केकईने विचारा कि पति और पुत्र दोनों ही दीक्षा लेनेको उद्यमी हो गये अब मेरा जीना कैसे होगा फिर अपने वरकी याद आई तब महाराजके पास जाकर विनयपूर्वक बोली—कि महाराज! आपने समस्त स्त्रियोंके सम्मुख वर देनेको कहा था। वह मेरा जमा है सो आज मुझे देवो। तब दशरथने कहा कि— जो तुमारी इच्छा हो सो मांग लो। तब रानी केकई आंसु डारती हुई कहने लगी कि–हमने क्या अपराध किया है जो हम लोगों पर कठोरचित्त होकर हम लोगोंको छोड़ना चाहते हो। हम तौ आपके आधीन हैं। यह जिनदीक्षा वड़ी दुर्द्धर है उसे धारण करनेको कैसे यह मति हो गई, ये इन्द्रसमान भोग इनमें मग्न रहते थे सो यह आपका कोमल शरीर किस प्रकार विषम मुनिव्रत पाल सकेगा इत्यादि बहुत कुछ कहा। तब महाराजने कहा कि— समर्थको कुछ भी विषम नहीं है। मैं अवश्य ही मुनिव्रत धरूंगा तेरे जो अभिलाषा हो सो मांग ले। तब रानी चिंतावान हो नीचे मुंहकरके कहती हुई कि–हे नाथ! मेरे पुत्र भरतको राज्य दीजिये।

तब दशरथने कहा—इसमें क्या संदेह है ? तूने वरकी धरोहर हमारे पास रक्खी थी सो लें ले, मुझे स्वीकार है। मैं ऋणरहित हो गया।

तत्पश्चात् रामचंद्र लक्ष्मणको बुलाकर कहा कि—यह केकई अनेक कलाकी पारगामी है। मुझे घोर युद्धमें इसने रथ चलाकर जिताया या बचाया था सो मैंने प्रसन्न होकर इसे वर दिया था। वह वर मेरे पास धरोहर रक्खा था सो आज यह कहती है कि-मेरे पुत्रको राज दीजिये। सो इसके पुत्रको राज न दूं तो इसका पुत्र संसारका त्याग करता है यह पुत्रके शोकसे प्राण तज देगी और मेरे वचन चूकनेकी अपकीर्ति जगतमें विस्तरैगी। और यह कार्य नीतिसे विरुद्ध दीखता है कि—बड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राजदेना। और भरतको समस्त पृथिवीका राज्य दे दिया जाय तो फिर तुम लक्ष्मण सहित कहां रहोगे तुम दोनों भाई परम क्षत्रिय तेजके धरनहारे हो! सो वत्स! मैं अब क्या करू? दोनों ही कठिन कार्य हैं। मैं अत्यंत दुःखरूप चिंताके सागर में हूं। तब श्रीरामचंद्र पिताके चरणकमलोंमें दृष्टि रखते हुये विनयके साथ बोले कि—पिताजी! आप अपने वचनका पालन करैं हमारी चिंता छोड़ दें। जो आपके वचन चूकनेकी अप-कीर्ति हो और हमारे इंद्रकी संपदा आवै तो किस काम की? जो सुपुत्र हैं वे ऐसा ही कार्य करते हैं, जिससे माता पिताको रंचमात्र भी खेद न हो। पुत्रका यही पुत्रपना है, नीतिके पंडित-जन यही कहते हैं कि—जो पिताको पवित्र करै वा कष्टसे रक्षा

करे वही पुत्र है। पवित्र करना यही है कि—पिताको धर्मके सम्मुख करै।

इस प्रकार दशरथ और राम लक्ष्मणके वार्तालाप होता था कि-इसी बीचमें भरत महलसें उतरा और "मैं तो मुनिव्रत धारण करके कर्मोंको काटूंगा" ऐसा कहकर चलनेको उद्यत हुआ तब सब लोगोंने "हैं! हैं!! यह क्या करते हैं" ऐसा शब्द किया। तब पिताने विह्वलचित्त होकर बनमें जाते हुये भरतको रोका और गोदमें लेकर हृदयसे लगाकर प्यारसे मुखचुम्बन करके कहा—' हे वत्स! कुछ दिन राज्य करो, यह नवीन वयस है वृद्धावस्थामें तप धारण करना। तब भरतने कही-पिताजी! यह मृत्यु है सो बालक वृद्ध तरुणको नहीं देखती, न मालूम कब आ जाय आप वृथा ही मुझे मोहमें क्यों फँसाते हैं? तब पिताने कहा—हे पुत्र! गृहस्थाश्रममें भी धर्मसंग्रह हो सकता है। कायर पुरुष ही धर्मसे रहित होते हैं। तब भरतने कहा कि—"हे नाथ! इंद्रियों के वशीभूत काम क्रोधादिसे गृहस्थोंको मुक्ति कहां"। तब महा राजने कहा कि-" हे भरत! मुनियोंको भी तद्भव मुक्ति नहीं होती इस कारण तुम कुछ दिन गृहस्थ धर्म ही धारण करके रहो। तब भरतने कहा कि—हे देव आपने कहा सो सत्य है परंतु गृहस्थों को तौ नियमसे मुक्ति नहिं होती. मुनियोंमें किसीको होती है किसीको नहीं। गृहस्थपदसे परंपरा मुक्ति होती, है साक्षात् नहि होती। इस कारण हीनशक्तिवालोंके लिये ही गृहस्थाचार हैं। मुझे इसकी रुचि नहीं है, मैं तौ महाव्रत धारण करनेका ही

अभिलाषी हूं। गरुड़ क्या पतंगोंकी रीति आचरण करै इत्यादि बहुत कुछ युक्त प्रार्थना की जिससे दशरथ महाराज बहुत प्रसन्न होकर भरतसे बोले-हे पुत्र! तू धन्य है. भव्योंमें प्रधान है, जिनशासनका रहस्य जानकर प्रतिबुद्ध हुआ है सो जो तू कहता है सब सत्य है। परंतु हे धीर! तूने अबतक मेरी आज्ञा भंग नहिं की। तू विनयवान पुरुषोंमें प्रधान है, मेरी बात ध्यानसे सुन। तेरी माताने युद्धमें मेरा सारथीपना करके मुझे जिताया। मैंने प्रसन्न होकर मुहमांगा वर देना चाहा उसने वह वर उस वक्त न लेकर मेरे पास जमा रक्खा था सो आज उसने यह वर मांगा है कि-मेरे पुत्रको राज दो, सो मैंने स्वीकार कर लिया है इस कारण हे गुणनिधि! इंद्रके राज्य समान इस राज्यको निष्कंटक चलाकर मेरी प्रतिज्ञा भंगकी अपकीर्ति जगतमें न हो, सो कर। जो यह बात न मानैगा तो यह तेरी माता शोकसे तप्तायमान होकर मर जायगी। पुत्र उसेही कहते हैं जो माता पिताको शोक समुद्रमें न डारकर सुखी करै। इस प्रकार समझानेपर श्रीरामचंद्रने भी कहा—भाई! पिताजी कहते हैं सो अवश्य स्वीकार करना योग्य है। तेरी उमर इस समय तप करने योग्य नहीं है कुछ दिन राज्य कर। जिससे पिताकी कीर्ति आज्ञापालनेसे चंद्रमाके समान निर्मल हो। तेरे सरीखे गुणवान पुत्रके होते हुये माता शोकसे तप्तायमान होकर मरण करै सो योग्य नहीं। और मैं समस्त राज ऋद्धि छोड़कर देशांतरमें किसी पर्वत या वनमें ऐसी जगह पर रहूंगा, जो कोई नहीं जानैगा। तू निश्चिंत हो

राज्य कर। इस प्रकार श्रीराम, समझाकर पिता और केकई माताको विनयसहित नमस्कार करके लक्ष्मणसहित वहांसे चल दिये, पिताको मूर्च्छा आ गई। राम तर्कस बांध धनुष हाथमें लेकर माताको नमस्कार करके कहने लगा कि—हे माता! अब मैं अन्य देशको जाता हूं। तू चिंता नहीं करना! तब माताको भी मूर्च्छा आ गई। थोड़ी देर बाद सचेत होकर अश्रुपात करने लगी हाय पुत्र! तुम मुझे शोक समुद्रमें डालकर कहां जाते हो? माताके पुत्र ही आलंबन हैं। विलाप करती माताको धीरज बंधा कर रामने कहा कि-हे माता! तू विषाद मतकर। मैं दक्षिण दिशामें कहीं पर भी स्थान बनाकर तुझे अवश्य ले जाऊंगा। हमारे पिता ने केकई माताको वर दिया था सो उसके अनुसार भरतको राज्य दिया, अब मैं यहां नहीं रहूंगा। तब माताने पुत्रको उदर से लगा लिया और रोकर कहा कि—मैं तेरे साथ ही चलूंगी तेरे देखे विना मैं प्राण रखनेको समर्थ नहीं। जो कुलवंती स्त्री हैं वे पिता पति या पुत्रके ही आधीन रहती हैं। सो पिता तो काल-ग्रस्त हुआ। पति जिनदीक्षा ले रहे हैं। अब तेरा ही आलंबन है सो तू छोड़कर चला, मेरी अब क्या गति होगी? तब रामचन्द्र बोले-माता! मार्गमें कंकर पत्थर कांटे वहुत होते हैं, तुम पैदल कैसे चल सकती हो इसलिये मैं कोई सुखका स्थान निश्चय करके फिर रथमें विठाकर लेजाऊंगा। मुझे तेरे चरणोंकी शपथ है मैं तुझे अवश्य ले जाऊंगा। इसप्रकार कहकर माताको शांतिप्रदान कर फिर पिताके पास गये, उन्हे नमस्कार करके केकई, सुमित्रा

सुप्रभादि समस्त माताओंको नमस्कार करके निराकुलचित्त हो भाई बंधु मित्र अनेक राजा उमराव परिवारके समस्त लोगोंसे मिल भेंटकर सबको दिलासा देकर छातीसे लगाय सबके आंसू पोंछे। सबने रहनेको बहुत कहा परंतु नहीं मानी। सामंत हाथी घोड़े रथ सबकी तरफ कृपा दृष्टिसे देखा बड़े २ सावंत हाथी घोड़े भेंटमें लाये परंतु हम तो पैदल ही जावेंगे ऐसा कहकर फेर दिये।

सीताजी अपने पतिको विदेशगमन करते देख वह भी सासु ससुरको प्रणाम करके पतिके साथ चली और लक्ष्मण, रामको विदेशगमनमें उद्यमी देख क्रोधके साथ विचारता हुआ कि—पिताने स्त्रीके कहनेसे यह क्या अन्याय किया? जो रामको छोड अन्यको राज्य दिया। यह बड़ा ही अनुचित है। मैं ऐसा समर्थ हूं कि अभी समस्त दुराचारियोंका पराभव करके श्रीरामके चरणोंमें राजलक्ष्मीको प्राप्त करूं परंतु यह बात उचित नहीं, क्रोध बड़ा दुखदायक है। पिताजी दीक्षा लेनेको तत्पर हैं ऐसे समयमें कुपित होना योग्य नहीं। मुझे ऐसे विचारसे मतलब ही क्या? योग्य अयोग्य पिताजी वा बड़े भाई जानैं इस प्रकार विचार कर कोप छोड़ धनुष बाण हाथमें लेकर पिता मातादि समस्त गुरुजनोंको नमस्कार करके रामके साथ चल दिया। दोनों भाई जानकीसहित राजमंदिरसे निकले। माता पिता भरत शत्रुघन आदि समस्त जन अश्रुपात करते संग चले। दोनों भाइयोंने सबको समझाकर धीरज बंधा-

कर बड़ी मुसकिलसे फिराया। प्रथम दिन रात्रि हो जानेसे चैत्यालयके ही समीप रहे। रात्रिमें कौशल्या आदि मातायें फिर आईं, समझा बुझाकर उन्हें फिराया। पिछली रात्रिमें दोनों भाई व सीताजी उठ कर भगवानके दर्शन करके चल दिये तौभी कई स्नेही सुभट इनके साथ चल दिये। इन्होंने बहुत समझाया तौभी लौटे नहीं। अंतमें असराल नामकी एक बड़ी भारी नदी आई तब रामचंद्र लक्ष्मण और जानकीने नदीमें प्रवेश किया सो इनके पुण्यके प्रतापसे नदीका जल कमर तक हो गया। परंतु साथमें आये हुये लोग विलाप कर कहने लगे-हमें भी पार उतारो। परंतु रामने समझा कर कहा कि—आगे भयानक जंगल है। अब तुम वापिस चले जावो, हमारा तुम्हारा यहीं तक साथ था तब लाचार हो वापिस चले गये। इन तीनोंने नदीको पार कर भयानक वनमें निर्भय हो प्रवेश किया। रामके वन चले जानेके पश्चात् दशरथ, भरतका राज्याभिषेक कर सर्वभूतहित स्वामीके निकट बहत्तर राजावोंके साथ मुनिदीक्षा ग्रहण करके एकांतविहारी जिनकल्पी मुनि हुये और नाना प्रकारके तप करके कर्मोंको काटने लगे।

इधर कौशिल्या सुमित्रा पतिके दीक्षित होने व पुत्रोंके विदेश गमनसे बड़ी दुखित हुई। अहोरात्र अश्रुपात करि रुदन करती रहीं। इन्हे देख भरत राजविभूतिको विष समान मानता और केकईके हृदयमें भी सपत्नियोंके दुःखसे बड़ा दुःख होने लगा। सो भरतसे कहा—हे पुत्र! तूने राज्य पाया, बड़े २ राजा

सेवा करते हैं। परंतु राम लक्ष्मणके विना यह राज्य शोमता नहीं। वे दोनों भाई बडे विनयवान थे और सीता हमेशह फूल-शय्यापर सोनेवाली पत्थर कंटकमय मार्गमें विना सवारी कैसे चलेगी सो शीघ्रगामी घोडेपर चढ़कर शीघ्रही जा और उन्हें लौटा ला। मैं भी तेरे संग चलूंगी उन सहित चिरकाल राज कर। यह बात सुन प्रसन्न हो एक हजार घुड़सवार सेनासहित चल पड़े। जो सामंत अमराल नदी पार न कर सकनेके कारण रामके पाससे लौट आये थे उनको साथ लेकर चला। रास्तेमें जो मनुष्य मिला उसीसे पूछता गया कि राम लक्ष्मणको कहां देखा है? लोग कहते-नजदीक ही हैं। सो पूछते २ वनमें एक तालावके पास सीतासहित दोनों भाईयोंको बैठे देख घोडेसे उतर कर पैदल चलकर रामके पांवोंमें पड़कर मूर्छित हो गया। रामने सचेत किया तब हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हुआ कि—हे नाथ! राज्य देकर मेरी क्या विडंवना की? तुम न्याय मार्गके जानकार बडे प्रवीण, मुझे इस राज्यसे क्या मतलब और आपके विना मेरे जीनेका कुछ प्रयोजन नहीं। हे प्रभो! उठो आप नगर चलकर राज्य करो, मैं तुमारे पर छत्र लेकर खड़ा रहूंगा शत्रुघ्न आपके ऊपर चमर ढोरैगा। लक्ष्मण भइया मंत्रित्व करैगा। मेरी माता पश्चात्तापरूप अग्निसे जल रही है। आपकी और लक्ष्मणकी माता बडा शोक करके अहोरात्र रुदन करती रहती हैं। इस प्रकार भरत कह रहा था कि माता केकई भी आ पहुंची और राम लक्ष्मणको उरसे लगा कर रुदन करने लगी।

रामचंद्रने धीर बंधाया तब केकई कहने लगी कि—हे पुत्र! उठो, अजोध्या चलो, सुखसे राज्य करो। तुम्हारे विना मेरे सब नगर वन समान है। तुम बुद्धिमान हो, भरतको समझा दो, हम स्त्रियें नष्टबुद्धि हैं, मेरा अपराध क्षमा करो। तब रामचंद्रने कहा कि—हे माता! तुम तौ सब बातोंमें प्रवीण हो। क्षत्रियोंका यही प्रण है कि-जो वचन कहैं सो न चुकै। जो विचार किया उसके विरुद्ध न करें। हमारे पिताने जो वचन कहा सो हमको तुमको सबको शिरोधार्य करना चाहिये। इसमें भरतकी कोई अपकीर्त्ति नहीं है। भरतसे कहा-भाई चिंता मत कर। माता पिताकी तथा मेरी आज्ञा पालन करनेमें कोई भी दोष नहिं दे सकता। इस-प्रकार समझा कर समस्त सामंत और मंत्रियोंके सन्मुख फिर-से भरतका राज्याभिषेक करके हृदयसे लगा बहुत दिलासा दे-कर सबको विदा किया। अजोध्या पहुंच भरत रामकी आज्ञा-नुसार पिताके समान प्रजाका पालन करने लगा। और भट्टा-रक नामके मुनिमहाराजके पास ऐसी प्रतिज्ञा भी कर ली कि—अब रामके दर्शन होते ही दीक्षा ग्रहण करूंगा।

राम लक्ष्मण सीता उस वनसे चलकर सामको एक ताप-सियोंके आश्रममें पहुंचे। ये तापसी स्त्री पुत्र कन्या सहित वनमें ही रहकर अनेक प्रकारका कायक्लेश करते थे सो इन लोगोंको पुरुषोत्तम जान फल जल शय्यादिसे बहुत ही अतिथि सत्कार किया और वहीं पर रहनेका आग्रह किया परंतु ये वहांसे चल दिये। अनेक तापसियोंकी स्त्रियें और कन्या, पुष्पादि ग्रहण करने

के वहाने साथ २ आई और कहने लगीं कि तुम हमारे आश्रममें ही रहो। यहांसे आगे सिंह व्याघ्रोंसे भरा हुआ भयानक वन है सो वहां जाना ठीक नहीं इत्यादि बहुत कुछ कहा परंतु ये सबको समझा करे चले गये।

चलते २ जगह जगह विश्राम करते करते एकदिन मालव देशमें चित्रकूटकी तलेटीमें आ निकले. वह जंगल बहुत ही रमणीक था बहुत दूर तक निकल जाने पर भी कोई वस्ती व मनुष्य नहिं मिला तब एक वटवृक्षके नीचे बैठ गये और लक्ष्मणसे कहा कि—इस वृक्षपर चढ़कर देखो कि कहीं आसपासमें गांव नगर भी है या नहीं? तब लक्ष्मणने चढ़कर देखा और कहा कि हे नाथ! निकट ही एक नगर तौ अवश्य ही दीखता है परंतु उजाड़सा दीखता है। एक दरिद्र मनुष्य इधर आ रहा है। उस दरिद्रको बुलाकर पूछा तौ मालूम हुआ कि—राजा सिंहोदरका सावंत वज्रकरण इस दशांग नगरका राजा बड़ा धर्मात्मा है। देवशास्त्र गुरुके सिवाय किसीको नमस्कार नहिं करता सो अंगूठीमें जिनप्रतिमाको रखकर सिंहोदरको नमस्कार करता था, सो यह छल कपट मालूम होजानेसे कुपित होकर सिंहोदर इसके नगरको घेर कर पड़ा है। वज्रकिरणको तंग कर रहा है। वह छिपकर शहरमें बंदोवस्तीसे वैठा है इस लिये यह नगर उजाड़सा दीखता है। तत्पश्चात् रामकी आज्ञासे लक्ष्मण नगरमें गया नगरके दरवाजेपर वज्रकरणसे भेट हो गई। लक्ष्मणको प्रभावशाली समझकर अतिथिसत्कार किया भोजनके लिये प्रार्थना

की तब लक्ष्मणने कहा कि-मेरे बड़े भ्राता और भोजाई नगरके बाहर ठहरे हुये हैं। उनके विना मै भोजन नहिं कर सकता, तब वज्रकरणने नाना प्रकारके भोजन व्यंजन अपने मनुष्योंके हाथ भेजे। इन तीनोंने आनंदके साथ भोजन किया। फिर रामचंद्र बोले कि—यह वज्रकरण बड़ा धर्मात्मा सज्जन है सो इसकी सहायता करना चाहिये सो तुम सिंहोदरके पास जाकर इन दोनोंमें मित्रता करा दो।

तब लक्ष्मण सिंहोदरके पास जाकर कहता हुआ कि—मैं भरतराजाका दुत हूं। भरत राजाकी आज्ञा है कि—तुम वज्रकरणसे मित्रता कर लो। सिंहोदरने कहा कि—मेरा आज्ञाकारी सामंत है। मैं चाहे जो करूं। हम दोनोंके वीचमें भरतके पड़नेकी क्या जरूरत है? लक्ष्मणने वहुत कुछ समझाया पर सिंहोदर की समझमें नहिं आया। सामंतसुभटोंको पकड़नेके लिये आज्ञा की तो लक्ष्मणने सवको भगा दिया, शेपमें सिंहोदर युद्ध करनेको आया तो उसे पकड़कर वांध लिया। सिंहोदरकी सेना भाग गई, सिंहोदरकी रानी पतिके छोडनेकी प्रार्थना करने लगी. लक्ष्मण सबको रामचंद्रके पास ले गया। सिंहोदरने प्रार्थना की कि—हे देव! आपकी जो आज्ञा हो वही मुझे शिरोधार्य है, मुझे छोड़ दीजिये। तब रामचंद्रजीने वज्रकरणको वुलाया। वज्रकरणने भी छोडनेकी प्रार्थना की तब सिंहोदरको छोड दिया। वज्रकरणसे संधि करा कर सिंहोदरसे आधाराज दिलवाया।

वज्रकरणने अपनी आठ कन्याओंका और सिंहोदर आदि

ने ३०० कन्याओंका लक्ष्मणके साथ विवाह करनेकी प्रार्थना की। तब इन्होंने कहा कि अभी हम विवाह नहि कर सकते। कहीं स्वतंत्र स्थान वनाकर रहैंगे तब हम विवाह करेंगे। ये जहां जाते सब वहीं रहनेकी कहते सो इन्होंने भी यहीं रहनेका बहुत कहा परंतु ये दशांगपुरसे रात्रिमें विना किसीको कहे चल दिये वहांसे चलकर नलकूवर नगरके पास वनमें आकर ठहरे।

नलकूवर नगरमें वाल्यखिल्यकी पुत्री कल्याणमाला पुरुषवेश में राज्य करती थी सो लक्ष्मण जब एक सरोवर पर पानी लेने-को गये तौ उसी वनमें कल्याणमाला भी वस्त्रावास (तंबू) तान कर हवा खाने को आई थी सो उस सरोवरी पर लक्ष्मणको देखकर मोहित हो गई। उसने अपने आदमी भेजकर लक्ष्मण-को बुलाया और वहीं पर रहनेको कहा। लक्ष्मणने कहा—मेरे भाई भोजाई वनमें हैं। तब उनको भी लक्ष्मणसहित जाकर बुलाया और खूब आदर सत्कार किया। भोजनके पश्चात् कल्याण मालाने पुरुष भेष छोडकर स्त्री वेश धारण कर सबको प्रणाम किया। पुरुष भेषका कारण पूछने पर कल्याणमालाने कहा कि यह राज्य सिंहोदरके आधीन है। उससे मेरे पिताके साथ यह संधि हो गई थी कि-अब तेरे पुत्र होगा तौ उसे राज्य मिलेगा अन्यथा पिताके बाद राज्य सिंहोदर ले लेगा। सो जब मेरा जन्म हुआ तो मेरे पिताने पुत्र होनेकी प्रसिद्धि की, इस कारण मैं पुरुषवेशमें रहती हूं। मेरे पिताको म्लेच्छ लोग पकड कर ले गये हैं इस समय राज्यकार्य मैं ही चला रही हूं। पिताके वियोग

से माता बहुत ही दुःखी हैं यदि आप सहायता करैं तो बड़ी कृपा होगी यह कहते कहते कल्याणमाला दुःखके आवेशमें मूर्छित हो गई। सीताने गोदीमें लेकर शीतोपचार किया मूर्छा दूर होने पर राम लक्ष्मणने धैर्य बंधाया और कहा कि तेरे पिता शीघ्र ही छूटकर आ जांयगे तीन दिन वहां रहे फिर अचानक ही गुप्तरीति से चल दिये। वहांसे चलकर मेकला नामक नदीको पार करके विंध्याटवीमें पहुंचे वहां म्लेच्छोंसे (भीलोंसे) युद्ध करके बाल्यखिल्यको छुड़ाया। रौद्रभूत म्लेच्छराजाको बाल्यखिल्यका मंत्री बनाकर उसे समीचीनमार्गमें लगाया। रौद्रभूतके मंत्री होनेसे भीलों पर भी बाल्यखिल्यकी आज्ञा चलने लगी जिसे देख सिंहोदर भी बाल्यखिल्यसे डरकर रहने लगा।

तत्पश्चात् वहांसे चलकर जिस देशमें तापी नदी बहती थी उस देशमें पहुंचे। एक ब्राह्मणके घर सीताको पानी पिलाया। वहांसे चलकर वनमें आये तो वहांके यक्षने एक नगर बनाकर इन्हे रक्खा, बड़ी सेवाकी फिर वहांसे चले जानेपर विजयपुर नगरके पास बालोद्यानमें ठहरे। वहांके राजा पृथिवीधरकी पुत्री बनमाला पहिले हीसे लक्ष्मणपर आसक्त थी सो पिता द्वारा दूसरे के साथ सगाई करनेपर वह इसी वनमें फांसीसे लटककर मरने लगी तब लक्ष्मणने बचाई और अपना परिचय दिया। सब नगर में गये, बड़ा आदर सत्कार हुआ। वहांपर सुना कि—नंद्यावर्त्तके राजा अतिवीर्य और भरतमें खटपट हो जानेसे अतिवीर्य और भरतमें युद्ध होनेवाला है। अतिवीर्य बड़ा बलाढ्य राजा

है इसकारण रामचंद्र, भरतको निश्चिंत करनेके लिये युद्ध न करके युक्तिसे वशमें करनेका विचारकर नृत्यकारिणीका वेश बनाकर गये और अतिवीर्यको बांधकर ले आये। सीताने उसको छोड़ देनेको कहा तौ छोड़ दिया परंतु संसारसे उदास हो अपने पुत्र विजयरथको राज्य देकर उसने जिनदीक्षा धारण करली। विजयरथने अपनी परम सुन्दरी रत्नमालाका लक्ष्मणके साथ और भरतके साथ अपनी दूसरी बहन विजय सुन्दरीका विवाह करके भरतकी आज्ञा मानना स्वीकार किया। भरतको मालूम न होने पाया कि राम लक्ष्मणने ही नृत्यकारिणी बनकर यह हमारा उपकार किया। तत्पश्चात् लक्ष्मणने वनमालाको समझा दिया और यहांसे तीनों जने विना कहे ही चल दिये।

चलते २ खेमांजलि नगरके पास आकर ठहरे। भोजन बनाकर लक्ष्मण शहरमें गया वहांके राजा शत्रुदमनकी पांच शक्तियोंको झेलकर उसकी पुत्री जिनपद्माके साथ विवाह किया। वहांसे आदर सत्कार पाकर चले सो वंशस्थल नगरके पास वंशधर पर्वतपर आकर ठहरे। इस पर्वतके ऊपर दो मुनियोंपर दैत्य रात्रिमें उपसर्ग करता था सो उपसर्ग दूर कर दिया तौ दोनोंको केवल ज्ञान हो गया। इस पर्वतपर रामचन्द्रने अनेक जिनमंदिर बनवाये थे। फिर वहांसे चलकर दंडक वनमें करनखा नदीपर पहुंचे वहांपर मिट्टी और बांसके बर्तन बनाकर फूलोंका भोजन बनाया। मुनियोंके आहारका समय होनेसे मुनिआगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। भाग्य योगसे अवधिज्ञानी मुनि-

सुगुप्ति नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनि मासोपवासके पारने की इच्छासे आकाशमें आ रहे थे सो इन्होंने नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहा और आहार दान किया। उसी समय पासके वृक्षपर बैठे हुये गृध्र पक्षीको जातिस्मरण हो गया सो वह मुनियोंके चरणोंमें आ पड़ा। उस पक्षीका वर्ण भी सुवर्ण और वैडूर्य मणि-कासा हो गया। मुनियोंने आहार ग्रहण करनेके बाद उस पक्षीको उपदेश देकर श्रावकके व्रत ग्रहण कराये और राम लक्ष्मणके साथ रहनेकी आज्ञा दी। रामने इसका नाम जटायु रक्खा। यहां पर रामने एक रथ बनाया और तीनों इसीपर यात्रा करने लगे।

वहांसे चलकर क्रौंचरवा नदी पार करके दंडक गिरीकेपास जाकर ठहरे। इन दिनों मुख्य आहार फलादिकका ही था। यहां पर एक नगर बसानेका विचार था परंतु वर्षाऋतुके बाद बनाने की इच्छासे वहींपर रहने लगे।

एक दिन लक्ष्मण वनमें टहलते समय एक तरफसे सुगंध आ रही थी उस तरफ गया तो बांसके बीड़ेपर सूर्यहास्यखड्ग दिखाई दिया। लक्ष्मणने उसको ग्रहण कर लिया और उसकी धारकी परीक्षार्थ बांसके बीड़ेपर चलाया तो बांसका बीड़ा कट गया उसी बीड़ेमें खरदूषणका पुत्र (रावणका भाणजा) शंबूक उसी सूर्यहास्य खड्गकी प्राप्तिके लिये तपस्या कर रहा था, सो उस बीड़ेके साथ उसका माथा भी कट गया। शंबूककी माता चंद्रनखा प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिये आया करती थी, सो पुत्रका शिर कटा देख बड़ी शोकित हुई और उसके मारने

वालेको वहीं खोजने लगी तो राम लक्ष्मण दोनों भाईयोंको देखा तब पुत्र शोकको भूलकर उनपर आसक्त हो गई और अपनेको कुमारी कन्या बताकर पाणिग्रहणकी इच्छा प्रगट की परंतु ये दोनों भाई इसकी बातोंमें नहीं आये। लाचार खरदूषण के पास जाकर कहा कि—राम लक्ष्मणने पुत्रको मारकर सूर्यहास खड्ग ले लिया है और मुझे बेइज्जत करनेकी ठानी थी, सो मैं बचकर चली आई हूं। यह सुनकर खरदूषणने युद्धकी तैयारी की और अपने शाले रावणको सहायतार्थ आनेकी प्रार्थना की।

इस खरदूषणके युद्धमें राम जाने लगे यह देख लक्ष्मणने कहा-आप यहीं बैठिये, सीताकी रक्षा कीजिये, मैं ही उसे जीतकर आता हूं, यदि जरूरत पड़ैगी तौ मैं सिंहनादकर संकेत करूंगा सो आप आ जाना। उधर रावण खरदूषणकी सहायताके लिये पुष्पक विमानमें बैठकर आ रहा था सो रास्तेमें सीताको देखकर मुग्ध हो गया, लड़ाईमें जाना भूलकर सीताको प्राप्त करनेकी फिकर पड़ गई। उसने अपनी अवलोकिनी विद्यासे जान लिया कि—लक्ष्मण सिंहनाद करैगा तौ राम उसकी सहायतार्थ चल देंगे। सो यह संकेत जानकर रावणने ही दूर जाकर नकली सिंहनाद में राम राम शब्द किया। राम भाईपर आपत्ति जानकर सीताको पुष्पवाटिकामें छिपाकर जटायुको रक्षाका भार देकर चल दिया। रावण, मोका पाकर सीताको विमानमें रख चला गया। जटायु ने रावणके साथ युद्ध किया परंतु थप्पड़को खाकर अधमरा हो गिर पड़ा उधर रामको लक्ष्मणने देखकर कहा—कि आप क्यों

आये ? रामचन्द्रने कहा—मैं तेरा सिंहनाद सुनकर आया हूं। लक्ष्मणने कहा—मैंने सिंहनाद नहिं किया किसीने धोका दिया होगा। आप शीघ्र ही वापिस जाइये। मैं शत्रुको जीतकर आता हूं। राम तुरत ही लौटकर स्थानपर आये तो सीताको न देखकर विह्वल हो ढूंढने लगे। जब सीता न मिली तो और भी अधीर हो पागलसे हो गये! वृक्ष नदी आदिसे सीताका पता पूछने लगे। इतनेमें लक्ष्मण भी खरदूषणको मारकर पाताललंकाका राज्य अपनी तरफसे विराधितको देकर रामके पास आया। क्योंकि विराधितने युद्धमें सहायता दी थी। लक्ष्मणने रामको जमीनपर लेटा देख सीताको न देखकर पूछा—सीता कहां है ? तब राम बैठकर लक्ष्मनको घावरहित देख कुछ हर्ष को प्राप्त हुआ। लक्ष्मणको छातीसे लगाकर बोले-भाई! मैं नहिं जानता कि—जानकी कहां गई। कोई हरकर ले गया अथवा सिंह व्याघ्र खा गया बहुत खोजा कहीं नहीं पाई। तब क्रोध रूप होकर लक्ष्मण बोला—हे देव! चिंता करनेसे कुछ लाभ नहीं। यह निश्चय करना चाहिये कि—कोई न कोई दैत्य ले गया है, वहां अवश्य होगी। मैं जाकर लाऊंगा। संदेह नहिं करें. इसप्रकार प्रियवचन कहकर धैर्य बंधाया और निर्मल जलसे मुख धुलाया। तत्पश्चात् विशेष शब्द सुनकर रामने कहा—ये शब्द काहेका है ? लक्ष्मणने कहा—कि हे नाथ! चंद्रोदर विद्याधरके पुत्र विराधितने मुझे युद्धमें बड़ी सहायता दी थी सो आपके निकट आया है उसकी सेनाके शब्द हैं। इतनेमें विराधितने आकर मंत्रीसहित रामको प्रणाम किया और प्रार्थना की कि—आप मेरे स्वामी हैं। हम

आपके सेवक हैं जो कार्य हो उसकी आज्ञा दें। तब लक्ष्मणने कहा कि-हे मित्र! किसी दुराचारीने इन मेरे प्रभुकी स्त्री हरली है उसके विना शोकके मारे ये प्राण छोड़ देंगे तो मैं भी अग्निमें प्रवेश करूंगा इनके प्राणोंके आधार ही मेरे प्राण हैं। यह तू निश्चय जान। इसलिये जो उचित समझे सो कर। तब विराधितने सुनते ही अपने मंत्री आदिको आज्ञा दी कि—प्रभुकी स्त्री जहां हो, खोजकर पता लावो परंतु सबके सब चारों तरफ दूर २ तक देख आये, कहीं भी पता नहीं लगा। तब रामचंद्र बड़े दुःखित हुये। विराधितने कहा—नाथ! आप इतनी चिंता करके अधीर न हों, आप पाताल लंकामें चलिये वहां बैठकर विशेष प्रबंध किया जायगा और शीघ्र ही जनकसुताको लाकर आपके सम्मुख हाजिर करूंगा यहां वनमें विशेष भय है, कारण खरदूषणके मरनेकी खबर सुनकर रावण, सुग्रीव हनुमान आदि मिलकर आवेंगे। पाताल लंका शत्रुसे अगम्य है, वहां गये बिना कोई उपाय होना असम्भव है। तब सबने रथमें बैठकर पाताल लंकामें प्रवेश किया। परंतु खरदूषण चंद्रनखाका दूसरा पुत्र सुन्दर नगरके बाहर इनसे लड़नेको आया सो उसे हराकर जाना पड़ा। सुन्दर और चंद्रनखा दोनों परिवार सहित लंकाको चले गये। पाताल लंकामें रामचंद्रजीने समस्त चैत्यालयों व मंदिरोंमें बड़े विनय भक्तिसे पूजा स्तुति करके चित्तको कुछ शांत किया।

इधर रावण-सीताको विमानमें बिठाये लिये जाता था। सीता हाय राम! हाय लक्ष्मण! कहकर रोती जाती थी सो रोने की आवाज भामंडलके सेवक अर्कजटीके पुत्र रत्नजटीने सुनी

तो रावणके विमानके पास आया। सीताको विलाप करती बैठी देखकर क्रोधसे रावणको कहा—हे पापिष्ठ दुष्ट विद्याधर! ऐसा अपराध करके कहां जायगा? यह भामंडलकी बहिन श्रीरामदेव की रानी है। मैं भामंडलका सेवक हूं। हे दुर्बुद्धि! जीना चाहता है तो इसे छोड़ दे। तब रावणने रत्नजटीसे युद्ध करना उचित न समझ उसकी विद्यायें छीनकर जमीनपर पटक दिया और सीताको ले जाकर अपने देवरमण नामक उपवनमें (बाग में) रक्खकर अपने महलमें गया। रास्तेमें सीताको बहुत कुछ समझाया परंतु सीताने मुहतोड़ जवाब दिया। सीता जबतक रामचंद्रके सुख समाचार नहीं मिले तबतक अन्नजलका त्याग कर मौनसे बैठी। इधर रावण महलमें गया। चंद्रनखा पति पुत्रके शोकमें क्रंदन कर रही थी। उसे सुन मंदोदरीके पास गया तो उसने अतिशय उदासीन देख उपदेश देकर कहा कि—खरदूषणके मरनेका वीर पुरुषको इतना शोक करना उचित नहीं। रावणने कहा—मुझे उसका शोक नहीं है। मेरे प्राणनाशकी शंका हो गई है। मैं एक अद्वितीय सुंदर सीता नामकी स्त्रीको लाया हूं यदि वह न इच्छैगी तो मैं अवश्य मर जाऊंगा। मंदोदरीने कहा—बलात्कार क्यों नहिं करते? तब रावणने कहा कि—जो स्त्री मुझे न चाहेगी उसे मैंने बलात्कार न करनेकी मुनिके पास प्रतिज्ञा की थी सो मेरा जीना चाहती हो तो उसे जाकर प्रसन्न करो। तब मंदोदरी आदि अठारह हजार रानियोंने देवरमण वनमें जाकर बहुत कुछ समझाया। सीताने एक न सुनी। फिर रावण घबराकर आया, उसी समय खरदूषणके शोकशमनार्थ विभीषण

मंत्री आदि आये। सीताका रुदन सुन विभीषणने कहा-यह कौन रोती है? बड़ी दुखिया है। सीताने पूछनेपर उसे अपना परिचय दिया। विभीषणने रावणको इस अन्यायसे दूर रहनेकी बहुत कुछ प्रार्थना की तथा मारीच मंत्रीने भी कहा परंतु रावणने एक न सुनी। पृथिवीमें जो २ उत्तम पदार्थ हैं वे मेरे हैं और मेरे ही उपभोग्य हैं तुम लोग परस्त्री क्यों कहते हो इत्यादि कहकर चल दिया

तत्पश्चात् सीताको देवरमण वनसे लेजाकर फुलगिरी पर्वत पर प्रमद नामका अति मनोहर उद्यान (बाग) था उसमें अशोकमालिनी वापिकाके निकट अशोक वृक्षके नीचे बिठा दिया। सैकड़ों विद्याधर स्त्रियां नाना प्रकारकी भोगोपभोग सामग्री लिये हाजिर थीं परंतु सीताने कुछ न छुआ।

इधर विभीषणने मंत्रियोंसे सम्मति करके लंकाको नाना प्रकारके मायामयी यंत्रोंसे सुरक्षित करके सर्वत्र पहरा बिठा दिया जिससे परराष्ट्रका कोई मनुष्य लंकामें प्रवेश न कर सकै।

इधर रावणकी पक्षके वानरवंशियोंके अधिपति किष्किंधा के बलाढ्य राजा सुग्रीवकी स्त्री सुतारापर साहसगति नामा विद्याधर पहिले हीसे आसक्त था सो वांछितरूपदायिनी विद्या को साधकर ठीक सुग्रीवका रूप बनाकर सुताराके महलमें पहुंच गया। असल सुग्रीवके आनेपर वह कहे-मैं सुग्रीव हूं, वह कहे मैं सुग्रीव हूं। इसप्रकार झगड़ा लगनेसे दुःखी होकर तथा पाताल लंकाके बड़े योद्धा खरदूषणको मारनेवाले रामचन्द्र लक्ष्मणकी शरणमें जाकर अपना दुःख निवेदन किया कि-हे नाथ! मैं बड़ा

दुःखी हूं, मेरा राज्य स्त्री सब ही दूसरा लिये लेता है, मुझे राज्य स्त्री दिला दें तो मैं आपकी सीताका सात दिनमें पता लगा दूंगा और रावणका पक्ष छोड़ आपका सेवक हो जाऊंगा। मेरे साथी समस्त वानरवंशी रावणका पक्ष छोड़ आपके आज्ञाकारी हो जायेंगे। तब रामने साहसगतिसे युद्ध प्रारंभ किया परंतु रामचंद्रको पुण्याधिकारी समझ साहसगतिकी विद्या भाग गई और साहसगतिका असली रूप प्रगट हो गया। रामचन्द्रने इसको तुरत ही यमालय पहुंचा दिया उसकी सेना सब तितर बितर हो गई। अब क्या था—सुग्रीव राज्य स्त्री पाकर सुखी हो गया और नल नील आदि अनेक वानरवंशी रामकी पक्षमें हो गये। फिर रत्नजटीके द्वारा सीताका पता भी लग गया कि—उसे रावण हरकर ले गया है। तब सीताके भाई भामंडलको भी यह खबर देकर बुलाया और सब जने मिलकर किषकिंधामें सलाह करने लगे कि अब क्या करना चाहिये?

अनेक विद्याधरोंने लक्ष्मणको समझाया कि—रावण बड़ा भारी बलवान है, उसके साथ युद्ध करना ठीक नहीं। सो आप यहीं रहिये हम आपकी सेवा करेंगे। सीताकी आशा छोड़ दें। हम विद्याधरोंकी सैकड़ों कन्यायें व्याह देंगे। तब रामने कहा कि और स्त्रियें यदि इन्द्राणीकी समान हों तौ भी हमारे किस कामकी? हमारे सीता सिवाय दूसरी स्त्रियोंकी वांछा नहीं है। जो हम पर तुम लोगोंकी प्रीति है तो सीताको हमें शीघ्र ही दिखाओ। जांबूनद आदि विद्याधरोंने कहा कि—रावणने एकवार अनंतवीर्य मुनिसे अपने मृत्युका कारण पूछा था सो मुनिमहाराजने

कहा था कि जो मनुष्य कोटिशिलाको उठावैगा उसीके द्वारा तेरी मृत्यु होगी। तव लक्ष्मणने कहा कि—चलो वह कोटिशिला कहां है, सो बताओ। तब सबजने विमानमें बैठकर कोटिशिलाके पास गये। सबने नमस्कार किया, चंदनसे पूजा करके तीन प्रदक्षिणा दीं। तत्पश्चात् लक्ष्मणने कमर बांधकर उस शिलापरसे मुक्ति प्राप्त भये अनंत सिद्धोंका स्मरण स्तुति करके घुटनों तक उस शिलाको उठाया। आकाशसे देवोंने जय जय शब्द किये और पुष्प वरसाये। तव सबको निश्चय हो गया कि—रावणकी मृत्यु इन्हीके हाथसे होगी यही आठवें नारायण हैं। वहांसे चलकर सम्मेद शिखर और कैलासकी यात्रा करके सामको किष्किंधा पुरमें सब आ पहुंचे।

तत्पश्चात् सुग्रीवादिने फिर भी सलाहकी कि-रावण एक बड़ा बलवान राजा है उससे सबका युद्ध करना ठीक नहीं। इसकारण एक चतुर दूत विभीषणके पास भेजा जावे विभीषण धर्मात्मा चतुर है सो रावणको समझाकर सीताको वापिस भिजवा देगा तव महोदधि नामा विद्याधरने कहा कि—यह सलाह तौ ठीक है। परंतु रावणके मंत्रियोंने लंकाके चारोओर मायामयी यंत्र रच दिया है, सो आकाश मार्गसे वा स्थल मार्गसे कोई भी मनुष्य नहिं जा सक्ता। हां! पवनंजयके पुत्र हनुमान याचना करके भेजे जावैं तौ वह सव यंत्रोंको तोड़ ताड़कर भी जा सकते हैं तथा रावणके परम मित्र हैं सो सीधे भी जाकर रावणको समझा सकते हैं। तब श्रीशैल (हनुमान) के पास दूत भेजा। सुग्रीव का दुःख राम लक्ष्मणके द्वारा नष्ट हो जाने, पाताल लंकाके

अधिपतिको मारने व विराधितको पाताल लंका देने आदिके सब समाचार कहे तो हनुमान अपने श्वसुर सुग्रीवकी आज्ञानुसार सेनासहित तत्काल किष्किंधाको चल दिये और सलाह कर लंकाकी तरफ भी रवाना हो गये।

हनुमान् लंकामें सुखसे प्रवेश करके प्रथम ही विभीषणके पास गया और रावणकी अनीति कहकर उससे विरक्त करनेके लिये कहा तो विभीषणने कहा कि—भाई ! मैंने बहुत बार रावणको समझाया परंतु वह मानता नहीं और जिस दिनसे मैंने उसको इस अन्यायसे विरक्त होनेको प्रार्थना की है तबसे मुझसे वार्तालाप ही नहि करता। तुमारे कहनेसे फिर भी एकबार जोर देकर समझाऊंगा परंतु मुझे भरोसा नहीं कि वह अपना हठ छोडैगा। आज सीताको अन्न जल छुये ११ दिन हो गये तौभी उसे दया नहिं आती। यह सुनते ही श्रीशैल तत्काल ही प्रमद उद्यानमें पहुंचा। उसकी शोभा देखता २ सीताके पास पहुंचा। देखा तो अश्रुपातसे नेत्र भरे हैं जमीनको कुचरती हुई अत्यंत कृश शरीर सीता चिंतारूपी समुद्रमें डूब रही है तो भी सुंदरतामें इसकी समान कोई भी नहीं है। इसे शीघ्र ही श्रीरामसे मिलाऊं तो मेरा जन्म सफल है। फिर धीरे धीरे आगे जाकर सीताके सन्मुख रामचंद्रकी दी हुई मुद्रिका डाली। मुद्रिकाको देखते ही रोमांच हो आया। कुछ मुख हर्षित हो गया। सीताको कुछ प्रसन्न हुई देख पास बैठी हुई दूतीने तुरंत ही सीता की प्रसन्नताका समाचार पहुंचाया, उसे बहुतसा इनाम दिया और मंदोदरीको समस्त रानियों सहित सीताको समझानेके

लिये भेजा। मंदोदरीने प्रसन्न देख समझाया तौ सीताने कहा कि मैंने आज अपने पतिकी खबर पाई है इसलिये प्रसन्नता है। यह अंगूठी कौन लाया है सो प्रगट हो, जब यह कहा तो हनुमानने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। सीताको रामचंद्रजीके सब समाचार कहे। तब विशेष प्रसन्न हुई। मंदोदरीने कहा—बड़े आश्चर्यकी बात है तुम तौ रावणके भाणजी जवांई (खरदूषणके जवाई) और रावणके परम भक्त आज्ञाकारी सेवक हो। तुम विद्याधर होकर भूमिगोचरीकी तरफदारी करके दूत बनकर आये हो,क्या तुम्हें अपने स्वामीका कुछ भी खयाल नहिं हुआ?

हनुमानने जवाब दिया कि—आश्चर्य तौ इस बातका है कि तू राजा मयकी पुत्री तीन खंडके अधिपति रावणकी पटरानी पतिव्रता होकर भी रामकी पतिव्रता स्त्रीको बहकाकर अपने पतिको नरकमें और अपनेको दुखमें डालनेके लिये दूतीपना करनेको आई है। तुझे शर्म नहिं आती?

हनुमानके वचन सुन मंदोदरी क्रोधसे लाल नेत्र करके बोली कि—अरे हनुमान! तेरा वचनालाप व्यर्थ है निर्लज्ज सुग्रीवादिक अपने स्वामी रावणको छोड़कर भूमिगोचरियोंके सेवक बने हैं सो अब सबकी मौत आ गई है। सीतासे यह सहा नहीं गया। उसने रामचंद्रकी शक्तिकी प्रशंसाकी। रावणकी निंदा की और कहा कि मेरा पति और लक्ष्मण आवैगा तौ तू शीघ्र ही विधवा हो जायगी। यह सुन कर वे सब सीताको मारनेके लिये उद्यत हुई हनुमानने बीचमें पड़कर सबको भगा दिया। जिससे मानहीन और उदास होकर रावणके पास गई। हनुमानने

सीताजी को आहारके लिये कहा। भोजन करनेके वाद कहा कि माता तुम मेरे कंधे पर बैठ जावो तौ मैं अभी रामचंद्रजीके पास पहुंचा दूं। परंतु सीताने कहा कि—विना स्वामीकी आज्ञा के मैं नहिं जा सकती। सो अब तुम स्वामीके पास जाकर सब समाचार कहो। सीताने रामको विश्वास करनेकेलिये चार पांच एकांतविहारकी वातें कहकर शिरका चूड़ामणिरत्न दिया।

इधर मंदोदरीने हनुमानके सब समाचार रावणसे कहे तौ रावणने हनुमानको पकड कर लानेके लिये अनेक सुभट भेजे, परंतु हनुमानने सबको मार भगाया। तब मेघनाद इंद्रजीत आदि सबको भेजा सो हनुमानने लंकासे बाहर खूब युद्ध करके शत्रु-सेनाका ध्वंस किया परंतु शेषमें इन्द्रजीत नागपाशसे बांधकर रावणके पास ले गया। रावणने वहुत कुछ बुरे वचन कहे। हनु-मानने भी खूब अच्छा जवाब दिया तत्पश्चात् लोहसंकलसे बांधकर शहरमें फिरानेको भेजा परंतु हनुमान सकल तोडकर आकाशमार्गसे चल दिये। जानेसे पहले रावणके सुंदर महल अच्छे २ अन्योंके मकान, बाग, कोठा, दरवाजे वगैरह अपने पावोंसे चूर्णकरके लंकाकी सब शोभा नष्ट भ्रष्ट कर दी और तत्काल ही विमानसे रामचन्द्रके पास आकर सीताके कुशल समाचार कहे। लंकाके समाचारोंको सुनकर रामचंद्र लक्ष्मण क्रुद्ध हो युद्ध करनेको तैयार हो गये।

इधर विभीषणने फिर रावणको समझाया तौ रावण विभी-षणको मारनेके लिये उठा सो विभीषण रावणसे नाराज होकर तीस अक्षौहणी सेना लेकर रामकी पक्षमें आया। इधर सीताके

भाई भामंडलको दूत भेजकर बुलाया सो वह एक हजार अक्षौहणी सेना लेकर आया। रामचंद्र लक्ष्मणकी कुल सेना दो हजार अक्षौहणी हो गई और रावणकी कुल सेना चार हजार अक्षौहणी थी जिसमें अढ़ाई करोड़ निर्मलवंशमें उत्पन्न हुये राक्षसवंशी कुमार थे।

रणभेरी बजते ही दोनों तरफकी सेना सजधज कर रणभूमि में विधिपूर्वक खड़ी हो गई। इशारा करते ही बाणोंकी वर्षा होने लगी, दोनो तरफके सुभट अपना २ बल दिखाने लगे। राम लक्ष्मणने कुंभकरणको घेरकर नागपाशसे बांध लिया। लक्ष्मणने इन्द्रजीतको पकड़ लिया। रावण विभीषण पर तीर छोड़ता ही था कि लक्ष्मणको तीर ताने सन्मुख देखकर लक्ष्मण पर शक्तिबाण चलाया जिसके लगते ही लक्ष्मण बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ा। भाईको गिरा देखकर रामचंद्रके होश हवाश जाते रहे और साहस टूट गया और उस दिन वे युद्ध बंद करके लक्ष्मणका शिर गोदमें लेकर रोने लगे-हाय लक्ष्मण! तू बोलता क्यों नहीं? तुझे यह कैसी निद्रा आई। तूने अबतक तो साथ दिया। अब क्यों रूठ गया? भैया! उठ आंखें खोल, देख तो कैसा तड़फ रहाहूं। मुझे अकेला यहां क्यों छोड़ दिया? भैया तेरी माने तू मुझे धरोहररूप सौंपा था अब मैं उसे जाकर क्या दिखाऊंगा।

---

१ एक अक्षौहणीसेनामें इकीस हजार आठसौ सत्तर रथ, इतने ही हाथी, पैंसठ हजार छह सौ दश घोडे और एक लाख नव हजार तीनसौ पंचास पियादे होते हैं।

भैया! देर न कर उठ खडा हो, मैं क्षणभर भी तेरा वियोग नहीं सहन कर सकता, सीता बिछुड़ी तो क्या तू भी बिछुड गया? इत्यादि प्रकारसे श्रीराम विलाप करके रोने लगे।

सीताको भी यह समाचार मिल गये, वह भी बहुत विलाप कर करके रोने लगी। इधर सारी सेनामें कोलाहल मच गया। इसी बीचमें एक मनुष्यने आकर लक्ष्मणके बचनेका यह उपाय बताया कि—अजोध्याके अधीन द्रोणमेघ राजाकी पुत्री विसल्याके स्नानका जल मगावो तौ अभी लक्ष्मण खड़े हो जांय। हनुमानने तत्काल ही अजोध्या जाकर भरतसे यह हाल कहा— भरतने द्रोणमेघको बुलाया तौ विसल्या स्वयं ही जानेको तैयार हो गई सो हनुमान विमानमें बिठाकर लिवा लाया। विशल्याके आते ही शक्ति लक्ष्मणके शरीरमेंसे निकल भागी। लक्ष्मण चैतन्य हो गया और उसके स्नानके जलका छींटा दे, अन्यान्य घायल योद्धावोंके घाव भी अच्छे कर दिये गये। तभी इन्द्रजीत कुम्भकरण आदि शत्रु पक्षके योद्धावोंके घाव भी अच्छे कर दिये।

दोनों ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। बहुतसा युद्ध होनेके पश्चात् रावणने लक्ष्मण पर चक्र चलाया। रामकी तरफसे चक्रसे लक्ष्मणको बचानेके लिये कई योद्धा उद्यत हुये परंतु वह प्रतिनारायणके हाथका चक्र स्वयं ही अपने नियमानुसार लक्ष्मण नारायणकी तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणके हाथ पर आ गया। फिर लक्ष्मणने उस चक्रको रावण पर चलाया तौ रावणका उरस्थल छेदकर रावणको प्राणरहित कर दिया।

रावणने प्रथम तौ लंकाका आधा राज्य देकर सीताको रख

कर संधि करना चाहा परंतु रामने सीताके सिवाय हमें कुछ नहिं चाहिये ऐसा कहकर दूतको लौटा दिया। तब रावणने युद्धसे पहिले बहुरूपिणी विद्या शांतिनाथके मंदिरमें बैठकर साध ली तब सीताके पास जाकर उसे राजी होनेको बहुत कुछ समझाया। परंतु एक न मानी। शेषमें रावणसे बोली कि-श्रीराम यदि तेरे हाथसे मारे ही जांय तो मरनेसे पहिले इतना अवश्य कह देना कि—"शोक है! तुमारी प्यारी सीता अंत समयमें तुमारे दर्शन न कर सकी। अब तुमारे मरणको सुनते ही वह भी अवश्य प्राण त्याग देगी।" इतना कहकर सीता बेहोश हो गई। रावणने सीताकी यह दृढ़ता देखकर निश्चय कर लिया कि—यह मुझे कदापि न चाहैगी। शोक है कि-संसारमें कलंकका टीका (पर स्त्री हरणका) लगा, कुलको कलंकित किया और सीता भी न मिली, वंशमर्यादाको नष्ट किया, भाई बन्धुओंको भी हाथसे खो बैठा, मित्रोंको शत्रु बना लिया, इत्यादि विचार करके मंदोदरीके महलमें गया और कहने लगा कि—आज न जाने युद्धसे बच कर आऊं या न आऊं अतएव यह अंतिम भेट है। जीता रहा तो आ मिलूंगा। इस प्रकार कहकर फिर युद्धमें चल दिया।

रावणके गिरते ही उसकी सेना तितर बितर हो गई। रावणका पराजय हुआ। विभीषणने रावणके शोकमें अपघात कर प्राण तजना चाहा परंतु राम लक्ष्मणने समझाकर शोक शांत किया और पद्मसरोवरके तटपर सुगंधित द्रव्योंसे रावणका शव दाह किया। तथा रावणके भाई कुंभकरण इंद्रजीत आदिको छोड़ दिया। रावणके मरणसे इन लोगोंके परिणाम संसार

शरीर भोगोंसे उदास हो गये। रामने राज्यादि संपदा लेकर सुखसे रहनेको बहुत कुछ कहा पर इन्होंने नहीं माना उसी दिन छप्पन हजार मुनियोंके संघसहित अनंतवीर्याचार्य लंकामें आये थे, उसी दिन उन्हे केवलज्ञान हुआ। रामचंद्रके साथ वानरवंशी और राक्षसवंशी सबही वंदनाको गये। कुम्भकरण इंद्रजीत और मेघनादने दीक्षा ली। साथ ही मंदोदरीने भी अड़तालीस हजार राणियों सहित शशिका आर्यिकासे आर्याके व्रत लिये।

केवलीकी वंदनाके पश्चात् रामलक्ष्मणने साथियोंसहित लंकामें प्रवेश किया। सीतासे मिले। लक्ष्मणने चरणोंमें शीस धरा। सुग्रीव हनुमान आदिने सीताको नमस्कार कर भेटे दीं। तत्पश्चात् रावणके महलमें शांतिनाथके मंदिरमें वंदना करनेको गये। वहां विभीषणने अपने पितामह सुमाली और माल्यवानको तथा पिता रत्नश्रवाको रावणके शोकशमन करनेके लिये समझाया और अपने महलोंमें जाकर अपनी विदग्धा नामक पटरानी सहित श्रीरामलक्ष्मणके पास जाकर भोजनका निमंत्रण दिया। उनके साथही जाकर राम लक्ष्मण सीताने भोजन किया। विभीषणने खूब सत्कार किया।

तत्पश्चात्—रामलक्ष्मणके अभिषेक करनेकी तैयारियां हुईं तो दोनों भाइयोंने इनकारकर कहा कि—हमारे पिता भरतको राज्य दे गये हैं इसलिये हम जो राज्यप्राप्त करेंगे वह भरतका ही होना चाहिये। परंतु जब सबने हट किया और कहा कि—दोनों भाई नारायण बलभद्र हैं तब स्वीकार किया। अभिषेकके पश्चात् लक्ष्मणने जिन २ कन्यावोंसे मार्गमें विवाह किया था

उनको लानेके लिये विराधितको भेजा और रामचंद्रका भी चंद्रवर्धन आदि राजाओंकी कन्याओंसे विवाह हुआ। तत्पश्चात् लंकाका राज्य विभीषणको देकर उसे सुखी किया और छहवर्षतक वहां रहकर अयोध्याको चल दिये।

अजोध्यामें इनके आगमन पर खूब उत्सव दान धर्मादिक हुआ। इन्हे देखकर सब प्रजा खुसी हुई। भरत, अपनी प्रतिज्ञानुसार १००० राजाओं सहित मुनिदीक्षा लेकर आत्मकल्याणमें लग गया, कुछ दिन बाद केकईने ३०० स्त्रियों सहित आर्यिकाकी दीक्षा ली। इधर रामका राज्याभिषेक करनेको कहा। रामने कहा-लक्ष्मण नारायण है इसीका अभिषेक होनाचाहिये लक्ष्मणने नहिं माना तब दोनों भाइयोंका तथा सीता और विसल्याका राज्याभिषेक हुआ। सब राजावोंको उन उनका राज्य दिया जिनका राज्य छिन गया था उनको वापिस दिलाया। शत्रुघनको मथुराका राज्य दिया। मथुराका राजा मधु स्त्रीमें आशक्त था उसे राज्यकाजकी कुछ चिंता नहिं थी, अहोरात्र विषयभोगोंमें लवलीन था सो उसे जीतकरके शत्रुघ्नने मथुराका राज्य लिया।

कुछदिन राम लक्ष्मण बडे आनंदसे रहनेके बाद सीताके गर्भ रहा उस समय सीताको तीर्थ और मंदिरोंके दर्शनकी अभिलाषा हुई। कभी बीचमें एक दिन अजोध्याकी प्रजाके प्रधान २ मनुष्य एकत्र होकर रामके निकट प्रार्थना करने आये परंतु भय खाने लगे शेषमें कहा कि प्रभो नगरमें बड़ाभारी अन्याय होने लगा है। सबल निर्बलकी स्त्रीको छीन लेता है कुछ दिनके बाद वह किसी कामकी सहायतासे अपनी स्त्रीको वापिस ले आता

है। लोग कहते सुनते हैं तो वे लोग कहदेते हैं कि—यथा राजा तथा प्रजा, हमारे राजाके घरमें ही ऐसा होता है तो हमें क्या भय है ? इत्यादि कहकर उच्छृंखलतामें और भी बढ़ जाते हैं सो आप हमारे रक्षक हैं. आप इसका प्रबंध करें।"

श्रीरामने सोचा—यह बात सीताके कारण होने लगी है। और हमारे कुलको कलंक लगाती है इसलिये सीताको देश-निकाला देनेसे ही यह कलंक दूर होगा। यह विचार लक्ष्मणसे प्रगट किया तो लक्ष्मणने कुपित हो कर सीतापर कलंक लगाने वालोंको दंड देनेका प्रस्ताव किया। श्रीरामने समझा कर ठंडा किया और सीताको निकाल देनेका ही प्रस्ताव ठीक किया। फिर कृतांतवक्र सेनापतिको बुलाकर आज्ञा दी गई कि सीताको समस्त तीर्थ और मंदिरोंके दर्शन कराके फिर सिंह वनमें छोड़ आना।

कृतांतवक्र पराधीन दास विचारा क्या करता? लाचार होकर वैसा ही करना स्वीकार किया। सीताजीको रथमें बिठाकर समस्त तीर्थोंके दर्शन कराके सिंहवनमें ले जाकर रथ थाम दिया। कृतांतवक्रको बड़ा दुःख हुआ। वह रोने लगा। सीताने कहा-भाई तू इतना व्याकुल होकर क्यों रोता है ? इस वक्त तुझे बहुत घबराया हुआ देखती हूं! शीघ्र कहो,क्या बात है ? मेरा हृदय फटा जाता है। आर्यपुत्रका (श्रीरामका) कुछ अमंगल तो नहिं हुआ ?

सीताजीको इस प्रकार व्याकुल देख सेनापतिने अपने चित्त को स्थिर करके कहा- 'माता! क्या कहूं कहते मेरी छाती फटती

है। आप इतने दिन रावणके यहां रहीं. इस कारण नगरनिवासी लोग आपके विषयमें संदेह कर रहे हैं उन्हींके वचनोंको सुनकर श्रीराम प्रभुने दया स्नेह और ममताको छोडकर अकीर्तिके भयसे आपको इस वनमें छोडदेनेकी आज्ञा दी है। लक्ष्मणजीने बहुत कुछ समझाया परंतु स्वामीने आपको निर्दोष स्वीकार करके भी यह कार्य किया है। हे माता! अब तुमको एक धर्म ही शरण है।"

यह वज्रपातके समान वचन सुनते ही सीता मूर्छा खाकर जमीन पर गिर पडी। थोड़ी देरमें गद्गद होकर कहने लगी 'सेनापति! स्वामीने यह अच्छा नहिं किया। अस्तु, उनकी इच्छा, वे प्रसन्न रहें मुझे उनकी आज्ञा शिरोधार्य है। तुम जावो, प्रसन्न रहो। स्वामीसे यह अवश्य कह देना कि—मेरे त्यागका कोई विषाद न करें, धैर्यका अवलम्बन कर प्रजाकी सदा रक्षा करें परंतु यह ख्याल रक्खें कि—लोक निंदासे मुझे तो छोड दिया परंतु प्रजा यदि आपके धर्मकी निंदा करैं तो मेरी समान परीक्षा किये विना कहीं धर्म न छोड बैठें। मेरे अपराधोंको क्षमा करें और धर्ममें लवलीन रहैं। इत्यादि कहकर फिर सीताजी वेहोश हो गई। कृतांतवक्र उसी प्रकार निर्जन भयानक वनमें छोडकर नोकरी पेसेकी निंदा करता हुआ चला आया।

सीता जब सचेत हुई तो अनेक विलाप करके मनमें विचारने लगी-मैंने पूर्व जन्ममें बडा भारी पाप किया है। किसीका अवश्य वियोग किया है। उसीका यह फल है। हाय! मैं राजा जनककी पुत्री वलभद्रको पटरानी स्वर्ग समान महलोंकी रहनेवाली

हज़ारों सहेली सेवा करती थीं कोमल शय्यापर शयन करती नानाप्रकारके गीत सुनती थी, वह अब इस भयानक वनमें अकेली रहूंगी। वीणा मृदंगादिके सुंदर शब्दोंकी जगह सिंह, व्याघ्रों के शब्द सुन रही हूं। हाय! इस भयानक वनमें अकेली कैसे रहूंगी इत्यादि विलाप करती थी। इसी समय पुंडरीकपुरका स्वामी राजा वज्रजंघ हाथी पकडनेके लिये इस वनमें आया था सो सीताजीका रुदन सुनकर आया और पूछा कि-वहन! तू कौन है? इस भयानक वनमें किस पाषाणहृदय मनुष्यने तुझे अकेली छोड दिया है, पुण्यरूपिणी! अपनी इस अवस्थाका कारण शीघ्र कह! शोक तज, धीरज धर, किसी वातका भय मत कर। मैं पुंडरीकपुरका राजा वज्रजंघ हूं। तव सीताने कठिनाईसे शोक दवाकर अपना सव हाल कहा। वज्रजंघने कहा-तू मेरी धर्मकी वहन है। तू मेरे घर चलकर भाईके घरको पवित्र कर। ऐसा कह कर वह रथमें विठाकर ले गया। रानियोंने वड़े आदर सत्कारसे इनकी सेवा प्रारंभ कर दी।

कुछ दिन बाद सीताजीके एक साथ दो पुत्र हुये—एकका नाम अनंग लवण, दूसरेका मदनांकुश रक्खा गया। नगरमें चिरंजीव चिरंजीव जय जय शब्द सुनाई देने लगे। जव ये दोनों कुमार वड़े हुये तो मामा वज्रजंघने राजकुमारोंके योग्य समस्त विद्यायें पढ़ाई, युद्ध विद्यामें वड़े चतुर हो गये।

एक दिन ये कुमार वनमें क्रीड़ा करते थे, कि नारदजी दिखलाई दिये। कुमारोंने नमस्कार किया। नारदजीने आशीर्वाद दिया—"तुम दोनों भाई राम लक्ष्मणकी तरह फलो फूलो!"

कुमारोंने पूछा कि-महाराज रामलक्ष्मण कौन हैं, कहां रहते हैं? क्या उनकी राज्य विभूति हमसे भी जियादा है? नारदजीने आदिसे लेकर सीताजीके त्याग पर्यंतका सब हाल कह दिया मदनांकुशने कहा-निःसन्देह राम लक्ष्मण बड़े पराक्रमी बलधारी हैं परंतु लोकापवादके कारण सीताको त्याग दिया सो अच्छा नहिं किया।" अनंगलवणने पूछा-महाराज! अजोध्या यहांसे कितनी दूर है? नारदने कहा-यहांसे ६४० कोश उत्तरकी तरफ है। क्यों किसलिये पूछते हो? अनंग लवणने कहा कि-हम राम लक्ष्मणसे लड़ेंगे और देखेंगे कि उनका बलवीर्य कितना है?

कुमारोंने घर आकर कहा-माताजी! हम अयोध्या पर चढाई करेंगे। सीताने सुनकर नारदजीसे कहा कि-महाराज! यह क्या स्वांग रच दिया? क्यों वैठे विठाये वाप वेटेमें वजवादी। मैं दुखिया बहुत दिनोंसे शोक दवाये वैठी थी, अव न आपका कुछ विगडेगा न इन वाप वेटेका, आफत आई तो मेरे पर। नारदजीने कहा वहन! मैंने तो कुछ नहिं किया। इन्होंने प्रणाम किया, मैंने आशीर्वाद दिया कि तुम राम लक्ष्मणसे फलो फूलो। इन्होंने पूछा तो सव पूर्वका हाल कह दिया। लवण अंकुशने माताका दुःख सुन मातासे प्रार्थना की। माताने कहा-कि वेटो! तुम लोगोंकी वीरता पर तो मुझे अभिमान है परंतु प्रेमानुराग भी तो दोनों तरफ है। तुम लोगोंमें किसीका भी हानि पहुंची तो मुझे मरी समझो क्यों कि-तुमसे प्यारे मुझे राम लक्ष्मण हैं और उनसे प्यारे तुम हो। यह सुनकर कुमार आश्चर्यसे वोले-यह कैसें? तब सीताने कहा कि-श्रीराम तुमारे पिता हैं और लक्ष्मण तुमारे चाचा हैं।

दोनों तुमारे पूज्य गुरुजन हैं। कुमारोंने कहा–तव तो हम जरूर उनसे युद्ध करेंगे। उन्होंने तुम्ह निरपराधको वनमें छोडकर इतना दुःख दिया सो जरूर वदला लेंगे। सीताने कहा–बेटा! तुम ऐसा मत करो, उनसे जाकर मिलो प्रणाम करो। कुमारोंने कहा–हम वीर हैं इसप्रकार नहिं मिलेंगे। युद्धमें ही उनसे मिलेंगे। नारदजीने कहा–कोई हानि नहीं, होने दो, बाप वेटोंमें युद्ध। मैं वीचमें हूं। हानि समझते ही परिचय करा दूंगा फिर क्या था युद्धको चल दिये। वहां पहुंचते ही युद्ध होने लगा। राम लक्ष्मणने तो कुमारोंको शत्रु समझकर ही वाण चलाये परंतु कुमारोंने पिता और चाचा समझ कर बचा २ कर वाण चलाये तौ भी राम लक्ष्मण घवड़ाने लगे और मनमें संदेह करने लगे कि—सायद ये ही वलभद्र नारायण न हों। तब लाचार होकर कुमारों पर सुदर्शन चक्र चलाया परंतु सुदर्शन चक्र विना घात किये वापिस आगया। सीता और नारदजी यह सब तमासा विमानमें वैठे देख रहे थे। सो नारदजी तुरंत वीचमें कूद पड़े। लक्ष्मणने प्रणामपूर्वक कहा कि महाराज! आज तक मेरा वाण कभी खाली नहिं गया, आज क्या हो गया। सबके सब वार खाली जा रहे हैं! नारदजीने कहा कि–आप किससे लड़ रहे हैं? ये दोनों सीताके पुत्र मदनांकुश और अनंगलवण हैं? बस! कुमार भी तत्काल शस्त्र फेंक रथसे उतर कर राम लक्ष्मणके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने उठाकर छातीसे लगाकर अभूतपूर्व सुखानुभव किया। और सबके वडा आनंद हो गया। सीता देखकर वडी प्रसन्न हुई और वज्रजंघके साथ तुरंत ही लौट गई।

कुछ दिन बाद सुग्रीव हनुमानादि और प्रजाके प्रतिनिधियोंने प्रार्थनाकी कि सीता सर्वथा पवित्र है उनको लाना चाहिये बडी मुसकिलसे समझा कर सीताजीको बुलाया। उसने हाथ जोड़कर कहा कि-लोकापवाद दूर करनेके लिये जो आप कहैं सो करूं। श्रीरामने कहा-अग्निमें प्रवेश करो। सीताने स्वीकार किया। तब तीनसौ हाथ लंबा चौड़ा अग्निकुंड तैयार हुआ। सीता, पंचपरमेष्ठीका स्मरण करके "मैंने श्रीरामके सिवाय स्वप्नमें भी यदि अन्य पुरुषकी वांछा की हो तो मैं इस अग्निकुंडमें भस्म हो जाऊं।' ऐसा कहकर कूद पड़ी। समस्त लोक हाहाकार करते ही रह गये परंतु वह पवित्र पतिव्रता थी। क्या मजाल जो अग्नि उसे जलावे! तुरंत ही देवोंने निर्मल जलका सरोवर बना दिया। इतना पानी बढ़ा कि लोग बहनेलगे। उस पर सहस्र दलका कमल और कमलासनपर सीताजी बैठी दिखायी पडने लगीं। देव उसके शीलव्रतकी प्रशंसा करके धन्य धन्य जय जय शब्द करके पुष्पोंकी वर्षा करते दीखने लगे। लवणांकुश माताकी देवोंके द्वारा प्रशंसा सुन दोनों ओर जा खड़े हुये। रामचंद्रजी ऐसे मुग्ध हुये कि उसके पास जाकर अपने अपराधकी क्षमा प्रार्थना करने लगे और घर चलकर सबका सुखी करनेके लिये कहा। परंतु सीताजीने संसारका सार जान लिया। सिवाय दुःखके संसारमें कुछ नहीं है इस कारण उससे विरक्त हो पृथिवीमती अर्जिकासे दीक्षा लेकर घोर तपस्याके द्वारा स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्गमें इन्द्रकी पर्याय धारण की।

तत्पश्चात् राम लक्ष्मणने बहुत दिनोंतक राज्यसुख भोगा। एक दिन स्वर्गके देवोंमें राम लक्ष्मणके स्नेहकी प्रशंसा होने लगी तो एक देवने आकर रामचंद्रको मायासे बेहोश करके लक्ष्मणको रामके मरनेकी खबर सुनाई। लक्ष्मण सुनते ही हाय कहकर जमीनपर गिर पड़ा और प्राण पखेरू उड़ गये। महलमें शोक छा गया। रामचंद्र पागल हो गये। लक्ष्मणकी लाशको जीवित समझ छह महीने तक लिये लिये फिरे। फिर देवोंने समझाकर शवदहन करवाया। फिर संसारसे विरक्त हो श्रीरामनें विभीषण, शत्रुघ्न, अनंगलवण, सुग्रीव आदि सोलह हजार राजावोंके साथ दीक्षा ली। सबने अपनें २ पुत्रोंको राज्य दिया और श्रीराम कोटिशिलापरसे मुक्ति गये। लवणांकुश भी मोक्ष गये।

——:*:——

३५. कर्मसिद्धांत।

——:o:——

८९। जिस कर्मके उदयसे संतानके क्रमसे चले आये जीवके आचरणरूप उच्च नीच गोत्रमें जन्म हो उसे गोत्रकर्म कहते हैं। गोत्रकर्म दो प्रकारका है—एक उच्च गोत्र, दूसरा नीच गोत्र।

९०। जिस कर्मके उदयसे उच्च गोत्रमें जन्म हो उसे उच्च गोत्र कर्म कहते हैं।

९१। जिस कर्मके उदयसे नीच गोत्रमें जन्म हो उसे नीचगोत्रकर्म कहते हैं।

९२। जो दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमें विघ्न डालें

उसे अंतरायकर्म कहते हैं। इसलिये इस कर्मके पांच नाम हैं: दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, और वीर्यांतराय।

९३। जो जीवोंको इष्टवस्तुकी प्राप्ति करावे उसे पुण्यकर्म कहते हैं।

९४। जो जीवोंको अनिष्टवस्तुकी प्राप्ति करावे उसे पाप-कर्म कहते हैं।

९५। जो जीवके ज्ञानादिक अनुजीवी गुणोंको घाते उसे घातियाकर्म कहते हैं।

९६। जो जीवके ज्ञानादिक अनुजीवी गुणोंको न घाते उसे अघातियाकर्म कहते हैं।

९७। जो जीवके अनुजीवी गुणोंको पूरे तौरसे घाते उसको सर्वघातियाकर्म कहते हैं।

९८। जिसका फल जीवमें हो उसे जीवविपाकी व जिसका फल पुद्गलमें (शरीरमें) हो उसे पुद्गलविपाकीकर्म कहते हैं।

९९। जिसके फलसे जीव संसारमें रुके उसे भवविपाकी कर्म कहते हैं।

१००। जिसके फलसे विग्रह गतिमें जीवका आकार पहिला सा बना रहे उसे क्षेत्रविपाकी कर्म कहते हैं।

१०१। एक शरीरको छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करनेके लिये जीवके जानेको विग्रहगति कहते हैं।

१०२। घातियाकर्म सैंतालीस हैं। ज्ञानावरण ५, दर्शनावरण ९, मोहनीय २८, और अंतराय ५=४७।

१०३। अघातियाकर्मकी एक सौ एक प्रकृति हैं। वेदनीयकी २ आयुकी ४ नामकर्मकी ९३ और गोत्रकर्मकी २=१०१।

१०४। सर्वघातिया प्रकृति इक्कीस हैं—ज्ञानावरणकी १, (केवलज्ञानावरण) दर्शनावरणकी ६ (केवलदर्शनावरण १ और निद्रा ५) मोहनीयकी १४ (अनंतानुबंधी ४ अप्रत्याख्यानावरण ४ प्रत्याख्यानावरण ४ मिथ्यात्व १ सम्यग्मिथ्यात्व १)।

१०५। देशघातिप्रकृति छब्बीस हैं-ज्ञानावरणकी ४ (मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण) दर्शनावरणकी ३, (चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, और अवधिदर्शनावरण) मोहनीयकी १४ (संज्वलन ४ नोकषाय ९ सम्यक्त्व १) अंतरायकी ५ कुल २६।

१०६। क्षेत्रविपाकी प्रकृतियां चार हैं—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, और देवगत्यानुपूर्वी।

१०७। भवविपाकी प्रकृतियां चार हैं—नरकायु, तिर्यंचायु मनुष्यायु और देवायु।

१०८। जीवविपाकी प्रकृतियां अठहत्तर हैं—घातियाकी ४७ गोत्रकी २ वेदनीयकी २ और नामकर्मकी २७ (तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, त्रस, थावर, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, सुभग, दुर्भग, गति ४ जाति पांच) सब मिलकर ७८।

१०९। पुद्गलविपाकी प्रकृति बासठ हैं—सब प्रकृति १४८ में से क्षेत्रविपाकी चार, भवविपाकी चार, जीवविपाकी अठहत्तर

ऐसे सब मिलकर ८६ प्रकृति घटानेसे शेष रहीं बासठ प्रकृति पुद्गलविपाकी हैं।

११०। पापप्रकृति कुल १०० हैं—घातियाकर्मोंकी ४७, असातावेदनीय १, नीचगोत्र १, नरकायु १. नामकर्मकी ५० (नरकगति १, नरकगत्यानुपूर्वी १. तिर्यग्गति १, तिर्यगत्यानुपूर्वी १, जातिमेंसे आदिकी ४, संस्थान अन्तके ५, संहनन अन्तके ५, स्पर्शादिक २०, उपघात १, अप्रशस्त विहायोगति १, स्थावर १, सूक्ष्म १, अपर्याप्ति १ अनादेय १, अयशःकीर्ति १. अशुभ १, दुर्भग १, दुःस्वर १, अस्थिर १, साधारण १)।

१११। पुण्य प्रकृतियां कुल ६८ अडसठ हैं। कर्मोंकी समस्त प्रकृतियां १४८ जिनमेंसे पापप्रकृति १०० घटानेसे शेष रहीं ४८ और नाम कर्मकी स्पर्शादिक २० प्रकृति पुण्य और पाप दोनोंमें गिनी जाती हैं क्योंकि बोसों ही स्पर्शादिक किसीको इष्ट किसीको अनिष्ट होते हैं। इसलिये ४८में २० मिलनेसे ६८ पुण्य प्रकृति होती हैं।

——:o:——

२६. श्रीशैल हनुमान।

इस भरतक्षेत्रमें उत्तरकी तरफ विजयार्द्धनामा पर्वत है। जिसकी दक्षिणश्रेणीमें आदित्यपुर नामका नगर है। उसमें प्रह्लाद नामका राजा राज्य करता था उसकी रानीका नाम केतुमती था। इनके वायुकुमार नामका पुत्र था जिसका दूसरा नाम पवनंजय था।

इस ही भरतक्षेत्रमें दक्षिणपूर्व दिशामें महेंद्रपुर नामका एक नगर था। उसके राजाका नाम महेंद्र, रानीका नाम हृदयवेगा था,इनके अरिंदम आदि १०० पुत्र और अंजना नामकी एक पुत्री थी.जिसकी सुन्दरता अद्वितीय थी। इसको यौवनवती देखकर इसके विवाह करनेकी चिन्ता हुई। मंत्री आदिने रावण वगैरह उनके वर बताये परंतु शेषमें राजा प्रह्लादके पुत्र वायुकुमारको ही वर ठहराया।

एक दिन-वसंत ऋतुमें अष्टाह्निका पर्वमें राजा महेंद्र नंदीश्वर द्वीपमें परवारसहित भगवानकी वंदनार्थ गये थे। वहांसे आते हुये कैलास पर्वतपरके चैत्यालयोंके दर्शनार्थ गये तो वहां पर राजा प्रह्लादसे भेट हो गई। प्रह्लादने मित्रकी कुशलक्षेम पूछी। राजा महेंद्रने कहा कि-जिसके विवाहयोग्य पुत्री हो उसके कुशलक्षेम कहांसे हो? अञ्जनाको विवाहयोग्य देखकर उसके वर ढूंढनेकी चिंतामें वड़ी व्याकुलता रहती है। हमारी दृष्टि तो आपके पुत्र पवनंजय पर है। राजा प्रह्लादने कहा कि-मुझे भी पुत्रके विवाह की चिन्ता लगी हुई है सो आपके वचन सुन वहुत आनंद हुआ जो आपके अंच गंई सो हमें भी प्रमाण है। मेरे पुत्रका वड़ा भाग्य है जो आपने कृपाकर कन्याप्रदानकी। तीन दिन वाद फिर क्या था? मान सरोवर पर ही विवाह करनेका मुहूर्त निश्चय हो गया। दोनों ओर आनन्द मङ्गल होने लगे।

पवनंजयने जब अपने विवाहका समाचार सुना तो अंजना को एक वार देखनेकी प्रबल इच्छा हुई और अपने प्रहस्तमित्र सहित विमानसे अंजनाको देखनेके लिये गये। अंजना अपनी

दासियों सहित झरोखेमें बैठी थी। पवनंजय अंजनाके रूपको देखकर संतुष्ट हुआ। किंतु उस समय वसंततिलकाने पवनंजयके साथ पाणिग्रहण होनेके कारण अंजनाके भाग्यको सराहा। परन्तु दूसरी दासीने पवनंजयकी निंदा करके उसे अयोग्य वर ठहराया और कहा- इसकी जगह यदि विद्युत्प्रभके साथ विवाह होता तौ अच्छा था। पवनंजयको यह सुन कर क्रोध आगया कि— यह नालायक मेरी निन्दा कर रही है और यह चुपचाप सुन रही है। सो इन दोनोंको ही मारनेके लिये जाने लगा। प्रहस्तने समझा कर ठण्डा तो किया परंतु डेरे पर आते ही अपने जानेका प्रबंध करने लगा। पिता और श्वशुरने बहुत समझाया तो विवाह करके ही उसे दण्ड देना ठीक है ऐसा मनमें विचार कर विवाह करने पर राजी हो गया।

मानसरोवर पर विवाह हो गया। विवाहके बाद पवनंजयने अपनी प्रतिज्ञानुसार उसके महल जानेका व किसी प्रकारके सम्बन्ध रखनेका सर्वथा त्यागकर दिया। अंजना पतिकी अप्रसन्नतासे बहुत ही दुःखी हो गई। वह महासती पतिव्रता इस दुःखके कारण इतनी दुर्बल हो गई कि पतिका चित्र बनाते समय हाथमें लेखनीको स्थिर नहिं रख सकती थी।

कितने ही वर्षोंके बाद एकबार रावण और वरुणमें युद्ध ठन गया था। राजा महेंद्र रावणके अधीन राजा था सो उसने युद्धमें सहायता देनेके लिये इसको भी बुलाया। इस युद्धमें राजा प्रह्लाद जाते थे परंतु पवनंजयने कहा कि मेरे रहते आपका जाना ठीक नहीं। विशेष प्रार्थनासे प्रह्लादने पवनंजयको भेजना

स्वीकार किया। युद्धमें जानेके समय अंजना पतिदर्शनार्थ द्वार पर आई सो पवनंजय देखकर बड़ा क्रोधित हुआ। पवनंजयने पहला डेरा मानसरोवर डाला। वहां पर रात्रिमें चकवेसे चकवीका वियोग होनेसे चकवी बहुत ही दुःखित हो तड़फड़ाती थी सो उसे देखकर पवनंजयको अंजनाके दुःखका भान हुआ। और अब वे एकबार अंजनासे मिलकर जानेके लिये विकल हो गये। घरसे रवाना हो आये अब जावें कैसे? फिर सलाह करके प्रहस्तमित्र सहित विमानमें बैठ कर गुप्त भावसे जाना ठहराया सो मुद्गर नामके सेनापतिको सेनाका भार देकर रात्रिमें चल दिये। अंजनाके महलमें रात्रि भर रहे। उस दिन अंजना ऋतु-स्नाता थी। सो उसने गर्भ रहनेकी आशंका प्रगट की और माता पिताको अपने आनेकी खबर करके जानेकी प्रार्थना की परंतु पवनंजय दो चिन्ह देकर चले गये और शीघ्र ही हम लोट आवेंगे ऐसा आश्वासन दे गये। इधर अंजनाके गर्भके चिन्ह प्रगट हो गये। पतिकी दी हुई कुंडल और मुद्रिका दिखाई तौ भी सासने न माना और पतिसे कहकर अंजनाको पिताके नगरके निकट वनमें छुड़वा दिया।

अंजना पिताके घर गई परंतु उसकी ऐसी अवस्था देखकर पिताने व्यभिचारिणी समझकर अपने नगरसे निकलवा दिया। तब वसंतमाला (अपनी सखी) सहित वनमें चली गई। वह बन बड़ा भयानक था। वहां पर्वतके ऊपर एक गुफा थी उसमें रहने का विचार कर वहां गई तो उस गुफामें एक चारण ऋद्धिके धारक मुनिके दर्शन हुये। दोनोंने वंदना करके अंजना के भाग्य-

का वृत्तांत पूछा। मुनिने आगामी सब वृत्तांत कहकर धीरज बंधाया और आकाशमार्गसे चले गये। वे दोनों अबलायें उसी गुफामें रहने लगीं जो कि—बंबईके पास नाशिक नगरसे १८ मीलपर अंजनेरी पहाड़के ऊपर अंजना गुफाके नामसे अबतक मौजूद है एक रात्रिको वहांपर सिंह आया। वसंतमाला शस्त्र-सहित थी सो अंजनाकी रक्षाका प्रबंध किया परंतु दोनों ही भय-भीत थीं। यह देखकर वहांपर रहनेवाले यक्षने यक्षणीकी प्रार्थनासे अष्टापदका रूप धारण करके सिंहको भगा दिया। उस गुफामें दोनों स्त्रियें—मुनिसुव्रत भगवानकी मूर्त्ति स्थापन करके नित्यपूजा वन्दना करने लगीं। गुफामें ही हनुमानजीका जन्म हुआ। बालकके जन्म होने पर उनकी प्रभासे अंधेरी गुफामें उजाला हो गया। बालकको शुभ लक्षणवाला देखकर अंजना को परम संतोष हुआ। हनुमानका जन्म चैत्र सुदी अष्टमीको अर्द्ध रात्रिके समय हुआ था।

दूसरे दिन आकाश मार्गसे एक विमान जाता था सो इस गुफा पर आकर अटक गया और उसे देख इन्हें भय हुवा तो ये रोने लगीं। रोना सुन विमानको नीचे उतार कर उसमेंसे हनुरुह द्वीपके राजा प्रतिसूर्य निकल कर गुफाके दरवाजे पर आये। अंजनाने अपना परिचय दिया। प्रतिसूर्यने अपना परिचय देकर कहा कि तू तो मेरी भानजी है। चल, घर पर चल कर सुखसे रहना। ऐसा कह कर विमानमें बिठाकर अपने नगरको चल दिया। बालक अंजनाके हाथोंमें खेल रहा था सो उछल नीचे पहाड़ पर गिर पड़ा हाहाकार होने लगा विमान उतार कर बालक

को देखा तो बालक एक सिलापर आनन्दसे खेल रहा है शिला के टुकड़े २ हो गये हैं। यह देख प्रतिसूर्यने जाना कि यह बालक चर्मशरीरी वज्रवृषभनाराचसंहननका धारी बड़ा प्रतापी है वास्तवमें वह था भी चर्मशरीरी कामदेव। बालकको लेकर हनुरुह द्वीप पहुंचे। वहां पहुंच कर जन्मोत्सव किया और बालकका नाम श्रीशैल रक्खा गया। हनुरुह द्वीपमें आनेके कारण दूसरा नाम हनुमान प्रसिद्ध हुआ।

इधर पवनंजयने वरुणको जीतकर रावणका आज्ञाकारी बना दिया और घर आने पर सुना कि अंजनाको दोष लगा कर निकाल दिया सो सुनकर बड़ा दुःखी हुआ फिर सर्वत्र खोज हुई। पवनंजय और प्रहस्त सुसरालमें गये। वहांसे भी निकाल दी गई सुनकर पवनंजयने वियोगी योगीका रूप धारण किया। और अम्बरगोचर हस्ती पर चढ़ कर जङ्गल २ खोजता फिरने लगा कुछ दिन बाद हाथीको भी कुमारने छोड़ कर स्वतंत्रता दे दी परंतु हाथीने कुमारको नहिं छोड़ा, साथ २ फिरने लगा। और मित्रके साथ ये समाचार और सब सामान घर भेज दिया। प्रहस्तने राजा प्रह्लादको सब हाल सुनाया। सुनकर बड़े दुःखित हुये। केतुमती माता भी पुत्रके दुःखसे रुदन करने लगी। पिताने कुमारको खोजनेके लिये दूत भेजे। स्वयं आकाशमार्गसे खोजनेको गये। एक दूतराजा प्रतिसूर्यके पास भी भेजा कि कुमार अंजनाको खोजने लिये पागलसे होकर कहींको चले गये हैं। यह समाचार अंजनाने सुना तो वह बहुत ही दुखित हो विलाप करने लगी उसके विलापसे राजा प्रतिसूर्य बड़ा दुःखित

हुआ। दिलासा देकर आकाशमार्गसे कुमारको खोजनेके लिये अनेक विद्याधरोंको साथ लेकर निकल पड़ा। राजा प्रहलादका भी साथ हो गया सो खोजते भूतरवर नामा अटवीमें आये। वहां वर्षाकालके सघन मेघ समान अंबरगोचर हाथीको देखकर विद्याधर प्रसन्न हुये और राजा प्रतिसूर्यको कहने लगे कि— जहां यह कुमारका हाथी है वहां पवनकुमार भी होना चाहिये। पवनकुमार वहीं जंगलमें निश्चल बैठा था और हाथी उसकी रक्षार्थ वहीं खडा था। विद्याधरोंके कटककी आवाज सुन हाथी ने स्वामीकी रक्षार्थ सबको भगा दिया। पास नहीं आने दिया। तब लाचार हो हथिनियोंके समूहसे हाथीको वशमें किया और कुमारके पास गये। पिताने कहा—हे पुत्र ! तू महा विनयवान होकर हमें छोड कहां आया ? महा कोमल सेजपर सोनेवाले तूने महा भयानक बनमें किसप्रकार रात्रि बिताई।

पवनकुमारने कुछ भी जबाब नहि दिया। काठके पुतलेके समान निश्चल हो किसीसे न बोला। फिर प्रतिसूर्यने पवनकुमार को छातीसे लगाकर अंजनाको अपने घर लाने और हनुमानके पैदा होने और पहाड शिलाके टूटने वगेरहका हाल सब कहकर कहा कि—मेरे घर माता पुत्र दोनों कुशलसे हैं। हां ! तुमारे वियोग जनित दुःखसे बहुत ही दुःखित हैं। यह बात सुन कुमार बड़े प्रसन्न हुये तुरंत ही पुत्र स्त्रीके देखनेकी अत्यंत अभिलापा- से विमानमें बैठकर सबके साथ चल दिया। पवनंजयने स्त्री- पुत्रको प्राप्त होकर प्रसन्नतासे अपने मामा श्वसुरके घर पर ही सुखसे रहने लगे तत्पश्चात् राजा प्रहलाद वगेरह सब चले गये।

कुछ दिन बाद फिर वरुणराजाने रावणसे युद्ध ठान दिया। अबकी बार भी पवनंजय आदि अधीनस्थ राजाओंको युद्धार्थ बुलाया सो पवनंजय और प्रतिसूर्यने हनुमानको राज्य देकर जाना चाहा परंतु हनुमानने कहा कि-मेरे रहते आप क्यों जाने लगे? पिता और प्रतिसूर्यने बहुत कुछ समझाया कि तू बालक है, परंतु उसने नहि माना और स्वयं युद्धमें गया। रावणने इसका बहुत सत्कार किया। युद्धमें अद्भुत वीरता देख शत्रुको बंदी किया। युद्ध समाप्त होनेके पश्चात्-वरुणने अपनी पुत्री और रावणने अपनी बहिन चंद्रनखाकी पुत्री अनंगकुसुमाके साथ हनुमानका विवाह किया और संपूर्ण कुंडलपुरका राज्य देकर राज्याभिषेक कराया और वहींपर हनुमान सुखसे रहने लगे।

इसके पश्चात् किष्कंधपुरका राजा सुग्रीव पद्मावती नामा अपनी पुत्रीको यौवनवती देख चिंता करने लगा। राजाने कन्याको अनेक राजकुमारोंके चित्र पट दिखाये परंतु सबको तुच्छ दृष्टिसे देखकर हनुमानके चित्रपर वह आशक्त हो गई। पद्मावतीका चित्र हनुमानके पास भेजा तो उसके एकहजार विवाह दूसरे होने पर भी वह ऐसा आशक्त हो गया कि वह उसे देखने किष्कंधापुर गया। सुग्रीवने हनुमान कुमारका आना सुन बड़े आदर सत्कारसे नगरमें प्रवेश कराया। कन्या भी हनुमानको देख अति हर्षित व चकित हो गई। फिर बड़े आनंद और उत्साहके साथ विवाह हो गया। हनुमान प्रियासहित अपने नगर आये। माता पिता अपने पुत्रको महा लक्ष्मीवान देख सुखसागरमें गोता खाने लगे।

तत्पश्चात्—हनुमान श्रीराम लक्ष्मणसे मिलकर उनके भक्त हो गये और उनके युद्धमें पूर्ण सहायता देकर श्रीरामको लंकापर विजय कराई। श्रीरामने विभीषणको लंकाका, विराधित को अलंकापुरीका (पाताललंकाका) भामंडलको रथनूपुरका, रत्नजटीको देवोपनीत नगरका और हनुमानजीको श्रीनगर तथा हनुरुह द्वीपका राज्य दिया। हनुमानजी अब पूर्वपुण्यके प्रतापसे श्रीनगरमें राजधानी बनाकर सुखसागरमें मग्न हो गये।

एक समय वसंत ऋतुमें हनुमानको अकृत्रिम चैत्यालयोंके दर्शन करनेकी इच्छा हुई। समस्त रानियों मंत्रियों सहित अढ़ाई द्वीपके समस्त चैत्यालयोंके दर्शन करके सुमेरुपर्वत पर आये। वहां पूजन भजनादि करके घर लौट रहे थे, कि–मार्गमें रात्रि हो जानेसे सुरदुंदुभी नामा पर्वतपर ठहर गये। परस्पर वार्तालाप हो रहा था कि–हनुमानजीको आकाशमें एक तारा टूटता हुआ दिखाई दिया तो आपको संसार शरीर भोगोंकी असारता प्रतीत होने लगी। और द्वादश भावनारूप विचार करके मुनिदीक्षा लेनेको उद्यत हो गये। प्रभात होते ही चैत्यवान नाम के वनमें संतचारण नामके चरण ऋद्धिके धारक मुनिमहाराज से साढ़े सातसौ राजाओंके साथ मुनिदीक्षा ग्रहण करके घोर तपश्चरणपूर्वक तुंगी गिरि पर्वतसे मुक्ति धामको पहुंच गये।

३७. छहढाला सार्थ—दूसरी ढाल।

——:०:——

पद्धरि छंद।

ऐसैं मिथ्या—दृगज्ञान चर्ण।
वंशभ्रमत भरत दुख जन्म मर्ण॥
तातैं इनको तजिये सुजान।
सुन तिन संछेप कहूं वखान॥ १॥

मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रके कारण ही यह जीव ऊपर कहे हुये संसारमें भ्रमण करता है और नानाप्रकारके जन्म मरण संबंधी दुःख भोगता है। इस कारण इन तीनोंको भले प्रकार जानकर त्यागना चाहिये। मैं इन सबको संक्षेपसे कहता हूं सो सुनो॥ १॥

जीवादि प्रयोजन भूत तत्त्व। सरधै तिन माहि विपर्ययत्व॥
चेतनको है उपयोग रूप। विनमूरति चिनमूरति अनूप॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीव चाल॥
ताको न जानि विपरीति मान। करि, करै देहमें निज पिछान॥

मोक्षमार्गमें जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष सात तत्व प्रयोजनभूत (अपने मतलबके) हैं। इनमें औरका और उल्टा श्रद्धान करना—कर लेना मिथ्यादर्शन है। जीवका स्वरूप उपयोगमय है। अमूर्त्तिक चैतन्यमय है सो यह जीवका स्वरूप पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन पांच अजीव

पदार्थोंसे भिन्न है। परंतु यह जीव इसको इसी प्रकार न जान-
कर इसके विपरीतजड़ रूप देहको ही आत्मा (आत्माजीव)मान
श्रद्धान कर लेता है और जान लेता है।

मैं दुखी सुखी में रंक राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव॥
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। वेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥
तन उपजत अपनी उपज जानि। तन नशत आपको नाश मानि
रागादि प्रगट जे दुःख दैन। तिनहीको सेवत गिनत चैन॥५॥

शुभ अशुभ बंधके फल मझार।
रति अरति करी निज पद विसार॥
आतमहित हेत विराग ज्ञान।
ते लखै आपको कष्टदान॥६॥
रोकी न चाह निज शक्ति खोय।
शिवरूप निराकुलता न जोय॥

ऐसा उलटा श्रद्धान होनेके कारण ही यह जीव मान लेता है कि— मैं दुखी हूं, मैं सुखी हूं, मैं दरिद्र हूं, मैं राजा हूं, यह घर गोधन संपदा आदि सब मेरा ही प्रभाव है। ये स्त्री पुत्र सब मेरे ही हैं, मैं ही बलवान हूं मैं ही दीन कुरूप सुंदर और मूरख और पंडित हूं। इसी प्रकार अपने शरीरको उत्पन्न होते अपनेको उत्पन्न हुआ, और शरीरको नाश होते अपनेको नाश हुआ मान लेता है। और रागादि कषाय भाव प्रत्यक्षतया दुख देने वाले हैं परंतु इन हीको धारण करनेमें सुख मानता है। तथा शुभबंध

अशुभबंधका फल भोगता है तौ शुभमें रति और अशुभमें अरति मान कर अपने असली स्वरूपको भूल जाता है। इनके विपरीत ज्ञान विरागादि अपने कल्याणकारी हैं जो उनको अपने लिये दुख-दायक समझता है। शक्तिको काममें लाकर अपनी इच्छाओंको रोका नहीं। इसी कारण मोक्षरूपी निराकुलता अब तक नहिं पाई॥ और-

याही प्रतीति जुत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान॥
इन जुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताकू जानहु मिथ्या चरित्त॥
यों मिथ्यात्वादि निसर्गजेह। अब जे गृहोत सुनिये सुतेह॥

इसी (उपर्युक्त प्रकारके) प्रकारके उल्टे श्रद्धान सहित जो कुछ आत्माका ज्ञान है उसको दुखदायक मिथ्याज्ञान जानो और इन मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान सहित पंचेंद्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति है उसे मिथ्याचारित्र जानो॥ इस प्रकार ये मिथ्यादर्शनादिक तौ अगृहीत अर्थात् जीवके हमेशह साथ रहनेवाले हैं। और इनके सिवाय जो इस मनुष्य जन्ममें नये ग्रहण कर लिये हैं। ऐसे गृहीतमिथ्यादर्शनादिको आगै कहते हैं सो सुनो॥ ८॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोषैं चिरदर्शन मोह एव॥
अन्तर रागादिक धरैं जेह। बाहर धन अम्बरतैं सनेह॥ ९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव। ते कुगुरु जनम जल-उपल-नाव॥
जे रागद्वेष मलकरि मलीन। वनिता गदादि जुत चिह्न चीन॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत न तिन भवभ्रमन छेव॥
रागादि भाव हिंसा समेत। दर्वित त्रसथावर मरन खेत॥ ११॥

जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म । तिन सरधै जीव लहै असर्म ॥
याको गृहीत मिथ्यातजान । अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥ १२॥

जो कुगुरु कुदेव और कुधर्मका सेवन है सो हमेशा मिथ्यात्व को ही पोषण करता है। जो लोग अंतरंगमें तो राग द्वेष क्रोध मान माया लोभादि धारण करते हैं और बाह्यमें धन वस्त्रादि परिग्रहोंसे अनुराग करते हैं ऐसे खोटे भेष धारण करके अपने को बड़े भारी महंत (पूजनीय) मानते हैं। वे सब संसार समुद्रमें डुवानेके लिये पत्थरकी नाव समान कुगुरु हैं। और जो रागद्वेष आदि मलसे मलीन है। साथमें स्त्री गहना त्रिशूल आदि शस्त्र रखते हैं वे सब कुदेव हैं। इन कुदेवोंकी सेवा पूजा करनेवालोंका ये कुदेव भवभ्रमण नष्ट नहिं करते तथा रागादि भावमय भाव हिंसा और त्रसथावरोंकी द्रव्य हिंसा करनेकी जो जो क्रिया हैं उन्हें कुधर्म जानना। इस कुधर्मका श्रद्धान करनेसे जीवको दुःख प्राप्त होता है। इन तीनों कुगुरु कुदेव कुधर्मका श्रद्धान करना ही गृहीत मिथ्यात्व वा गृहीत मिथ्यादर्शन है। अब गृहीत मिथ्याज्ञानको कहते हैं सो सुनो ॥ १२॥

एकांत वाद-दूषित समस्त । विषयादिक पोषक अप्रशस्त ॥
कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास । सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥

जो एकांत पक्षसे दूषित, विषय कषायोंके पोषनेवाले कपिल आदि मिथ्यादृष्टियोंके बनाये खोटे शास्त्रोंको पढना सो बहुत दुःख देनेवाला गृहीत मिथ्याज्ञान है ॥ १३॥

जो ख्यातिलाभ पूजादि चाह । धरि करत विविध विध देह दाह

आत्म अनात्मके ज्ञान हीन । जे जे करनी तन करन छीन ॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग । अब आतमके हित-पंथ लाग ॥
जग जाल भ्रमनको देय त्याग । अब दौलत नित आतम सुपाग ॥

जो अपनी ख्याति, लाभ, पूजा प्रतिष्ठादिकी चाहना मनमें धारण करके निज परके ज्ञानरहित शरीरको पंचाग्निसे जलाना अथवा शरीरमें खाक रमाना नख केश बढाना आदि नानाप्रकारके काय क्लेश करके शरीरको क्षीण करनेवाली आदिकी क्रिया हैं वे सब गृहीत मिथ्याचारित्र हैं।

इनको छोड़कर अब अपने हितकारी मार्गमें लागो और जग-जालमें भ्रमण करनेका त्याग करके हे दौलतराम ! अपने आत्म-कल्याणमें मग्न हो । १५ ॥

इति द्वितीय ढाल ॥ २ ॥

———:o:———

३८. श्रीनेमिनाथ, कृष्ण और बलभद्र ।

इस भरतक्षेत्रमें सूर्यवंश चंद्रवंश और हरिवंश ये तीन बड़े प्रसिद्ध वंश हो गये हैं । त्रेसठ शलाका पुरुष प्रायः इन्हीं वंशोंमें होते आये हैं । हरिवंशमें क्रमसे बड़े २ राजा होनेके पश्चात् अंत में एक यदु नामके प्रसिद्ध राजा हुए जिनसे कि यदुवंश चला । यदु राजाके वंशमें फिर नरपति नामका राजा हुआ । नरपतिके सूर और सुवीर दो पुत्र हुए । सूरके अंधकवृष्टि और सुवीरके भोजकवृष्टि हुआ । अंधकवृष्टिके समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमि-

तसागर, हिमवान, विजय. अचल. धारण, पूरण, अभिचंद और वसुदेव ये दश पुत्र हुए और भोजकवृष्टिके उग्रसेन, महासेन और देवसेन हुये। भोजकवृष्टिसे फिर भोजवंश जुदा चला। अन्धकवृष्टि राजा अपने बड़े पुत्र समुद्रविजयको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर मोक्षको गये। समुद्रविजयके शिवादेवी पटराणी के गर्भसे हमारे बाईसवें तीर्थंकर भगवान् श्रीनेमिनाथ हुए और सबसे छोटे भाई वसुदेवके देवकीके गर्भसे नववें नारायण श्रीकृष्ण और रोहिणी देवीसे बलदेव उत्पन्न हुए। नेमिनाथसे उमरमें श्रीकृष्णसे छोटे और बलदेव बड़े थे। बलदेव गौरवर्ण थे श्रीकृष्ण और नेमिनाथ कृष्णवर्ण अति मनोहर थे।

श्रीकृष्णसे पहिले जरासिन्धु प्रतिनारायण था। उस समय तीनों खंडोंमें जरासिंधुका ही राज्य था। श्रीकृष्ण पश्चात् जरासिंधुको मारकर तीन खंडका राज्य लेकर नारायण पदको प्राप्त हुए। युधिष्ठरादि पांच पांडव श्रीकृष्णके परममित्र थे।

एक दिन श्रीकृष्णकी अट्ठारह हजार स्त्रियोंमेंसे पट्टराणी सत्यभामाने जलक्रीड़ाके समय कुछ हास्यवचन कहे, उस परसे नेमिनाथजीने कृष्णकी आयुधशालामें जाकर नागशय्या दलमली, गांडीव धनुष्य चढ़ाया और शंखध्वनि की। जिसको सुनकर नारायणने जाना कि, यह शंखध्वनि आदि कार्य नेमिनाथने किये हैं, सो अपने मनमें अतिशय चिन्तातुर हुआ और बलभद्र भ्रातासे कहा कि, ऐसे बलिष्ठ भ्राताके सामने अपना राज्य करना ठीक नहीं है। ये जब चाहेंगे तब ही अपनेको राजगद्दीसे उठा सके हैं। बलभद्रने कहा कि; भाई! हम सरीखोंको ऐसे राज्यकी इच्छा

रहती है किन्तु नेमिनाथको ऐसी इच्छा कदापि नहीं है। वे इस संसारसे ही उदासीन हैं। वैराग्यका कोई कारण पाते ही वे दीक्षा ग्रहण करके मोक्षका राज्य करेंगे।

तब श्रीकृष्णने अपनी स्त्रियोंको कहा कि,-तुम नेमिकुमारको जलक्रीड़ामें लेजाकर इनसे विवाहकी स्वीकारता कराओ। तब सत्यभामादि कृष्णकी अठारह हज़ार रानियोंने नेमिनाथसे विवाह करनेकी स्वीकारता कराई। तब सोरठ देश जूनागढ़के भोजकवंशी राजा उग्रसेनकी पुत्री राजमतीसे नेमिनाथका विवाह करना निश्चय किया।

श्रीकृष्णने छलसे जूनागढ़में वरातके रास्ते पर भेड़ बकरे-आदि हजारों पशु एकत्र करके एक घेरेमें अटका दिये। और नेमिनाथके रथके सारथीको समझा दिया कि, जब नेमिनाथ पूछें कि-ये पशु किसलिये इकट्ठे किये हैं, तो तू "वरातमें अनेक बराती मांसाहारी भी आये हैं उनके लिये इन सबको वध करेंगे" ऐसा कह देना।

जब पशुओंके निकट वरात आई और वरातकी धूमसे पशुगण भयभीत होकर चिल्लाये तो नेमिनाथने सारथीसे पूछा कि-ये पशु किसलिये एकत्र किये गये हैं? तो सारथीने कृष्णकी उपर्युक्त आज्ञानुसार ही कह दिया। उसको सुनते ही नेमिनाथने कहा कि "अहो! इस मेरे विवाहके लिये इतना महापाप? धिक्कार है इस राज्यविभव और सांसारिक भोगोंको" इत्यादि कहकर वे संसार देह भोगोंसे विरक्त हो गये। त्वरित ही रथको थांभकर

पशुओंको कैदसे छुटाया और गिरनार पर्वत पर जाकर दीक्षा धारण कर बालपनमें ही मुनि हो गये।

इधर राजमती भी अन्य वरकी इच्छा छोड़कर नेमिनाथके शरणमें पहुंची और प्रार्थना की कि-आप दीक्षा छोड़कर चलिये, महलोंमें ही साधन कीजिये। परन्तु वे एकके दो न हुए। लाचार राजमती भी दीक्षा धारण करके आर्यिका (तपस्विनी) हो गई और तपस्याके प्रभावसे स्त्रीलिंगको छेदकर सोलहवें स्वर्गमें जाकर उत्तम देव हुई।

उधर श्रीकृष्णादि अपना निष्कंटक राज्य करने लगे। नेमिनाथ भगवान् घातिकर्मोंको काटकर केवलज्ञान प्राप्त करके अपने उपदेशोंसे असंख्य जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटाकर अन्त में सिद्ध पदको प्राप्त हुए।

—:०:—

३९. कर्मसिद्धांत (४)

११२। कर्मोंके आत्माके साथ रहनेकी मियादके पडनेको स्थितिबंध कहते हैं।

११३। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अंतराय इन चारों कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति तीस तीस कोडाकोड़ी सागर की है और मोहनीयकर्मकी सत्तर कोडा कोड़ी सागर है। नामकर्म तथा गोत्र कर्मकी बीस २ कोडा कोड़ी सागर हैं और आयुकर्मकी स्थिति तेतीस सागर ही है।

११४। जघन्यस्थिति वेदनीय कर्मकी १२ मुहूर्त, नाम तथा

गोत्र कर्मकी आठ २ मुहूर्त, और शेषके समस्त कर्मोंकी अंत-मुहूर्त २ जघन्यस्थिति है।

११५। एक करोडको एक करोडसे गुणा करने पर जो लब्ध हो उसको एक कोडा कोड़ी कहते हैं।

११६। दश कोडा कोडी अद्धापल्योंका एक सागर होता है।

११७। दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गोल गढ्ढेमें कैंचीसे जिसका दूसरा खंड न हो सके ऐसे मेढेके बालों को भरना। जितने बाल उसमें समावें उनमेंसे एक बालको सौ सौ वर्षबाद निकालना। जितने वर्षोंमें वे सब बाल निकल जावें उतने वर्षोंके समयको व्यवहारपल्य कहते हैं। व्यवहार-पल्यसे असंख्यात गुणा उद्धार पल्य होता है। उद्धारपल्यसे असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है।

११८। अडतालीस मिनटका १ मुहूर्त होता है। आवलीसे ऊपर और मुहूर्तसे नीचेके कालको अंतर्मुहूर्त कहते हैं।

११९। एक श्वासोच्छ्वासमें असंख्यात आवली होती हैं। नीरोग पुरुषकी नाडीके एक वार चलनेको श्वासोच्छ्वास काल कहते हैं। ऐसे तीन हजार सातसौ तेहत्तर श्वासका एक मुहूर्त होता है।

१२०। कर्मोंमें फल देनेकी शक्तिकी हीनाधिकताको अनु-भागबंध कहते हैं।

१२१। बंधनेवाले कर्मोंकी संख्याके निर्णयको प्रदेशबंध कहते हैं।

१२२। स्थितिको पूरी करके कर्मके फल देनेको उदय कहते हैं।

१२३। स्थिति बिना पूरी किये ही कर्मके फल देनेको उदीर्णा कहते हैं।

१२४। द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिका अनुद्भूत (प्रगट न) होना सो उपशम है। उपशम दो प्रकारका है। एक अंतःकरणरूप उपशम, दूसरा सद्वस्थारूप उपशम।

११५। आगामी कालमें उदय आने योग्य कर्मपरमाणुओं को आगे पीछे उदय आनेयोग्य करनेको अंतःकरणरूप उपशम कहते हैं।

१२६। वर्तमान समयको छोड़कर, आगामीकालमें उदय आनेवाले कर्मोंके सत्तामें रहनेको सद्वस्थारूप उपशम कहते हैं।

१२७। कर्मकी अत्यंतिक निवृत्तिको क्षय कहते हैं।

१२८। वर्तमान निषेकमें सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदयाभावी क्षय तथा देशघाती स्पर्द्धकोंका उदय और आगामी कालमें उदय आनेवाले निषेकोंका सद्वस्थारूप उपशम ऐसी कर्मकी अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं।

१२९। एक समयमें कर्मके जितने परमाणु उदयमें आवें उन सबके समूहको निषेक कहते हैं।

१२०। वर्गणाओंके समूहको स्पर्द्धक कहते हैं। वर्गोंके समूह को वर्गणा कहते हैं-समान अविभाग प्रतिच्छेदोंके धारक प्रत्येक कर्मपरमाणुको वर्ग कहते हैं।

१३१। शक्तिके अविभागी अंशको अविभाग प्रतिच्छेद

कहते हैं । यहां शक्ति शब्दसे कर्मोंकी फल देनेकी शक्ति समझना ।

१३२ । विना फल दिये आत्मासे कर्मके संबंध छूटनेको उदयाभावी क्षय कहते हैं ।

१३३ । कर्मोंकी स्थिति बढ़ जानेको उत्कर्षण कहते हैं और घट जानेको अपकर्षण कहते हैं ।

१३४ । किसी कर्मके सजातीय एक भेदसे दूसरे भेदरूप हो जानेको संक्रमण कहते हैं ।

१३५ । एक समयमें जितने कर्मपरमाणु और नोकर्मपरमाणु बंधें, उन सबको समयप्रबद्ध कहते हैं ।

—:*:—:*:—

४०. श्रीपार्श्वनाथ भगवान ।

—:*:—:*:—

भरतक्षेत्र आर्यखंडमें पोदनपुरनामका एकनगर था । उसमें अरविंद नामका राजा था । उसके विश्वभूति नामका ब्राह्मण मंत्री था । उसमंत्रीकी स्त्री अनुंधरानामकी बडी सुंदर व शीलवती थी । उसके दो पुत्र हुये । बड़ेका नाम कमठ छोटेका नाम मरुभूति । कमठ कपटी, मरुभूति सरल प्रकृति था । कमठकी स्त्रीका नाम वरुणा और मरुभूतिकी स्त्रीका नाम वसुंधरा था ।

एक दिन विश्वभूति मंत्रीको अपने शिरमें सफेद केश देखनेसे वैराग्य उत्पन्न हो गया । तब मरुभूतिको मंत्री पद देकर मुनिदीक्षा लेली । मरुभूति बडी नीतिके साथ काम करता इसलिये राजाका

उस पर बड़ा भारी प्रेम था। एक समय राजा अरविंद मित्र सहित अपनी सेना लेकर वज्रवीर्य राजापर चढाई करके लड़ाई करने गया। उनके पीछे कमठ ही राज्यका काम करने लगा सो अपनेको ही राजा मानकर जीचाहा सो आचरण करने लगा।

एक दिन अपने छोटे भाई मरुभूतिकी स्त्रीको वस्त्राभूषण धारण किये हुये देखा तौ उसपर आसक्त हो गया। तत्पश्चात् वगीचेमें जाकर लतागृहमें पड़ा हुआ काम विकारसे तड़फने लगा उस समय उसके मित्र कलहंसने इस दुःखका कारण पूछा तौ कमठने लज्जा छोड़कर मनकी सब हालत कह सुनाई। सुनकर कलहंसने उसको बहुत कुछ उपदेश दिया कि परस्त्री और जिसमें भी फिर छोटे भाईकी वह वेटी समान है उसके साथ ऐसा काम करनेमें वड़ा भारी पाप है। निंदा है, इत्यादि बहुत कुछ समझाया परंतु कमठको कभी उपदेश वाक्य न रुचा। उसने कहा कि यदि मुझे वसुंधरा नहिं मिलैगी तौ मैं अवश्य मर जाऊंगा। जब इस प्रकार कमठका हठ देखा तौ कलहंसने जाकर वसुंधरा से कहा कि तेरा जेठ बहुत दुःखी होकर वागमें पड़ा है सो तू उनकी खवर ले। यह सुनते ही वह घवड़ाकर वागमें गई और कमठने कपट वचन कहकर भीतर बुला लिया और उसके साथ काम विकारकी बातें करके उसका जबरदस्ती शील भंग किया।

इधर राजा अरविंद शत्रुको जीतकर नगरमें आया और कमठके ये सब दुराचरण लोगोंने कहे तौ राजाने मरुभूतिको बुलाकर पूछा कि इस दुष्टको क्या दंड देना चाहिये। मरुभूति

सरल मनका क्षमाशील ब्राह्मण था। उसने कहा महाराज एक आदमीके द्वारा कोई अपराध हो जाय तो एकबार माफ करदेना चाहिये राजाने कहा, जो अपराध दंड करने योग्य ही हो, उस पर दया करना राजाको शोभा नहिं देता। तू मनमें कुछ खेद न कर, घरको जा, ऐसा कह कर राजाने उसे घर भेज दिया और कमठ को बुलाकर उसका मुंह कालाकरके गधेपर चढाकर उसको शहर भरमें फिराया तत्पश्चात् उसे देशसे निकाल दिया।

कमठ बहुत दुखी हुवा वहांसे निकालकर भूताचल पर्वतपर तापसियोंके आश्रममें पहुंचा वहां सब तपस्वी अज्ञान तप करते थे। उनमेंसे एकको बडा तपस्वी समझ उसके पास गया उसने उसे दीक्षित करके उसे भी तापसी बना लिया। कमठके चित्त में वैराग्य तो बिलकुल था ही नहीं। वह भी बाहरसे कायक्लेश करने लगा। उसने एक बडी भारी शिला दोनों हाथमें उठा ली और खड़ा २ कायक्लेश करने लगा।

इधर मरुभूति मंत्री कमठका पता लगाता रहा जब उसे मालूम हुआ कि-वह भूताचल पर्वतपर तपस्या करता है तब उसने एकादि राजासे प्रार्थना कर कहा कि-महाराज! मेरा भाई भूताचल पर्वतपर तपस्या करता है। सो उससे मिल आऊं। राजाने कहा कि-वह बडा दुष्ट है उससे मिलनेमें सिवाय हानिके कुछ भी लाभ नहिं होगा सो वहां हरगिज नहिं जाना। परंतु वह सरल स्वभावी था भ्रातृ-वात्सल्यके कारण उससे रहा नहिं गया इसलिये वह एकदिन भूताचल पर्वतपर कमठके पास पहुंच गया। और बोला कि "भइया मेरा अपराध क्षमा कर! मैने राजासे

बहुत कुछ प्रार्थना की थी। परंतु राजाने मेरी बात मानी नहीं और तुझे राजाने दुख दिया। जो कुछ होनहार था सो हो गया अब तेरे विना मेरेसे रहा नहीं जाता सो तू घर चल” ऐसा कहकर उसने भाईके चरणोंमें मस्तक नमा कर प्रणाम किया। परंतु उस दुष्टको इस क्रियासे उलटा क्रोध उत्पन्न हुआ। उस क्रोधके आवेशमें आकर वह शिला जो हाथमें थी उसे अपने भाईपर जोरसे पटक दी। वस उसीक्षण वह मर गया। कमठका ऐसी निर्दय कृत्य पासवाले तपस्वियोंने देखा तो उन्होंने उसको निकाल दिया। वहांसे निकालकर वह भीलोंमें जाकर मिल गया और वहां चोरी लूट डकेती आदि नीच काम करने लगा।

इधर राजा अरविंदने मरुभूति क्यों नहीं आया? ऐसा एक अवधिज्ञानीसे पूछा तो उन्होंने मरुभूतिकी मृत्युका असली कारण कह सुनाया जिससे राजाको वडा दुःख हुआ और कहने लगा कि मैंने उससे बहुत कुछ कहा था कि तू उस दुष्टके पास मत जा परंतु उसने मेरा कहना नहिं माना जिससे कि उसका ऐसा कुमरण हुआ क्या किया जाय होनहार कभी मिटती नही।

इधर मरुभूति मरकर सल्लकी नामके वनमें वज्रघोष नामका हाथी उत्पन्न हुआ और कमठकी स्त्री जो पोदनपुरमें थी वह मरकर इसी वनमें हथिनी हुई सो इस हाथीके साथ संबंध हो गया वह उस हथिनीसे रमण करता हुआ नाना प्रकारकी चेष्टा और लोगोंको कष्ट देता हुआ उसी वनमें फिरता रहा।

इधर राजा अरविंद एक दिन अपने महलपर वैठा हुआ था

उसने एक मंदिरके आकारका बादल देखा उस बादलके बने हुये मंदिरके बड़े ऊंचे २ शिखर थे। सो राजाने उसकी सुंदरता देख कर उसी आकारका एक जिनमंदिर बनानेकी इच्छा की और वह उसका नकशा खींचनेके लिये कागज कलम लेकर तैयार हुआ। कि इतनेमें ही उस बादलका अपूर्व आकार विघट गया, उसे देखकर राजाके मनमें यह बात जम गई कि यह समस्त जगत इसी प्रकार क्षणभरमें नाश होने वाला है। शरीर, धन, दौलत राजसम्पत्ति इसी प्रकार एक दिन नष्ट हो जायगी। यह जीव मोहके वशीभूत हो नाशवान वस्तुओंको शाश्वत मानता है सो बड़ी भूल है इसप्रकार विचार करनेसे राजाको वैराग हो आया उसी वक्त अपने पुत्रको राज्यतिलक देकर गुरुके पास जाकर दिगंबरी दीक्षा लेकर यथायोग्य चारित्र पालने लगा।

एक समय संघके साथ अरविंद मुनि श्री सम्मेद शिखरजी की यात्राकेलिये ईर्यापथ सोधन कर जाते थे। सो सब संघ उसी सल्लकी वनमें आकर ठहरा। मुनिने संध्या समयमें प्रतिमा योग धारण किया था। उसी वनमें वह मरुभूमिका जीव वज्रघोष नामका हाथी था सो बड़े क्रोधके साथ उस संघमें घुस नाना प्रकारके उपद्रव करने लगा। हाथीके सामने जो पड़ा उसका काम तमाम हो गया। उसने कितने ही घोड़े बैल जानसे मार डाले। इस प्रकार सबको मारता हुआ अरविंद मुनिको भी मारनेकेलिये पास आया परंतु मुनि मेरु समान अचल ध्यानस्थ खड़े रहे। उनकी छातीपर श्रीवत्स लक्षण था। उसे हाथी ने देखा तो देखते ही उसे जातिस्मरण हो आया और उसका

क्रोध एकदम शांत हो गया। तथा मुनिके चरणोंमें मस्तक रख कर निश्चल हो गया। तब मुनिमहाराजने मीठे शब्दोंमें कहा कि-अरे! तूने यह क्या हिंसाकर्म आरंभ किया! हिंसा करना बड़ा भारी पाप है, हिंसासे दुर्गतियोंमें दुःख भोगने पड़ते हैं। तूने इतने प्राणियोंकी हिंसा की, तुझे पापका भय कुछ भी न रहा! देख! पापोंके योगसे ही तू ब्राह्मणका जीव होकर इस हाथीकी पर्यायमें आया। तू मरुभूति मंत्री और मैं अरविंद राजा यह तुझे पहचान नहीं पडी। तुझे धर्मरहित आर्तध्यानके कारण ही यह निकृष्ट पशुयोनिकी प्राप्ति हुई है। अब इस कार्यको छोड़ कर मनमें धर्मभावना रख, सम्यग्दर्शन धारण कर, जन्मभर निर्मल पंचाणुव्रत धारण करके रह। यह सुनकर हाथीका मन बहुत दयार्द्र कोमल हो गया। अपने किये हुये पापोंकी निंदा करने लगा और गुरुके चरणोंपर मस्तक रख बैठ गया। तब मुनिने सत्यार्थ धर्मका उपदेश दिया। सम्यक्त्वका स्वरूप कहकर पंच उदंवर तीन मकारका (मद्य, मांस, मधुका) त्याग करनेको कहा। तत्पश्चात् श्रावकके बारह व्रतोंका स्वरूप उसे कहा सो गुरुके मुखसे सुनकर वह हाथी अपने अंतःकरणमें धारण करके वारंवार भूमिपर मस्तक रखकर मुनिके चरणोंमें नमस्कार करने लगा।

तत्पश्चात् मुनि महाराज वहांसे जाने लगे तो हाथी मुनिमहाराजके साथ बहुत दूरतक पहुंचानेको गया और शेष काल नमस्कार करके वापिस लोटा। उसी समयसे अपने व्रतोंको पालन करता हुआ उसी वनमें रहा। पहिलेकेसा सब उपद्रव करना

छोड़ दिया। शीलपनेसे रहने लगा। त्रसजीवोंको मारनेका त्याग कर दिया. चित्तमें क्षमा धारण करके शत्रु मित्रको समान समझने लगा। अष्टमी चतुर्दशीको प्रोषधोपवास करने लगा। केवल सूके पत्ते और घास खाकर रहने लगा। दूसरोंके चले हुये मार्गमें ही जाने लगा। दूसरे हाथियोंका गदला किया हुआ प्रासुक पानी पीने लगा। शरीर पर पानी कीचड़ धूल डालना वगैरह समस्त अनुचित क्रियायें छोड़ दीं। रास्ते चलते त्रस जीवोंको देखकर उन्हें बचाकर चलने लगा। किसीभी हथिनीकी तरफ नजर उठाकर देखनेका सर्वथा त्याग कर दिया। इस-प्रकार उत्तम ब्रह्मचर्य पालन करता हुआ नाना प्रकारके शारीरिक कष्ट सहने लगा। अपने शरीरके हिलानेसे किसी जीवको कोई प्रकारकी पीड़ा न हो जाय इस अभिप्रायसे अपने शरीरकी प्रयुक्त हलनचलन क्रिया भी बंद कर दी। इसप्रकार दृढ़ प्रतिज्ञाओंके पालन करनेमें उस हाथीका शरीर बहुत ही क्षीण हो गया। उसका निरंतर धर्मोंका चिंतवन करते हुये बहुतसा काल बीत गया तब एक दिन बड़ी जोरकी प्यास लगनेसे वह वेगवती नामकी नदी पर पानी पीनेके लिये गया। उस नदीके किनारेपर कमठका जीव कुक्कुट नामका सर्प होकर बैठा था, सो उसने पूर्व-भवके वैरके कारण उस हाथीको काट खाया। हाथीने अपना मरण समझ सन्यास धारणकर लिया। उसके प्रभावसे मरकर वह बारहवें स्वर्गके स्वयंप्रभ विमानमें शशिप्रभनामका देव हुआ वहां अवधिज्ञानके योगसे मालूम हुआ कि मैंने हाथीके जन्ममें व्रत धारण किये थे उन्हीके प्रभावसे यहां स्वर्गमें आकर उत्पन्न

हुआ हूं। इस कारण सबसे पहिले अपने विमानके चैत्यालयमें दर्शन पूजन करके महामेरु नंदीश्वर द्वीप आदिके समस्त अकृत्रिम चैत्यालयोंके नित्य दर्शन करनेको जाने लगा।

इस बारहवे स्वर्गमें सोलह सागरकी आयुपर्यंत सुख भोग कर जंबूद्वीपस्थ पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमें लोकोत्तम नामक शहरके राजा विद्युद्गतिकी रानी विद्युन्मालाके गर्भमें सुंदर सौम्य स्वभावका पुत्र हुआ। उसका नाम अग्निवेग रक्खा गया। इस अग्निवेगकी धर्ममें बड़ी भारी भक्ति हुई। युवावस्थामें राज्यसंपत्ति उपभोग करते हुये एक मुनि महाराजके दर्शन हुये। उन मुनिके उपदेश सुननेसे भी जवानीमें उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। और गुरुके पास महा व्रत ग्रहण किये। दुर्द्धर तपश्चरण करके उसने रागादिक विकार क्षीण कर दिये। एक विहारी होकर द्वादशांगवाणीमें प्रवीण हो गया।

एक दिन हिमगिरि पर्वतकी गुफामें ध्यान धरके बैठा था। सो इधर कर्कट जातिका सर्प मरकर पांचवी नरकभूमिमें सोलह सागर पर्यंत नानाप्रकारके छेदन भेदनादि दुःख भोगकर इसी पर्वत पर अजगर उत्पन्न हुआ था सो वह पूर्व जन्मकी शत्रुता कायम रहनेसे ध्यानस्थ मुनिमहाराजको निगल गया। मुनिने शांतभाव रखकर सन्यास मरण करके सोलहवें अच्युत स्वर्गमें जन्म पाया।

अच्युतस्वर्गमें २२ सागरकी आयु भोगकर वहांसे मरण करके जंबूद्वीपस्थ पश्चिम विदेह क्षेत्रमें पद्मनामके देशमें अश्वनामक नगरके राजा वज्रवीर्यकी पटरानी विजयाके गर्भमें आया

इसके गर्भमें आते ही विजयाने एक रात्रिमें पांच स्वप्न देखे। उसके बाद रानीने प्रातःकालही राजाके पास जाकर स्वप्न कहे। राजाने सुनकर कहा कि तेरे उदरमें अच्युत स्वर्गका देव पुत्र उत्पन्न होगा। सो यहां वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह चौंसठ लक्षणोंवाला था। राजाने पुत्रका जन्मोत्सव बड़े ठाट बाट के साथ किया। बड़ा होनेपर पुत्र वज्रनाभिने समस्त विद्यायें पढ़ लीं। युवावस्था प्राप्त होने पर पिताने अनेक राजकन्याओंसे विवाह किया। फिर पिताके राज्यका भार भी संभालने लगा। एक दिन वह आयुधशालामें गया तो वहां पर उसे चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई। उसे प्राप्त कर उसने छह खंडका दिग्विजय करके चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। उसको चौदह रत्नोंकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार अपूर्व वैभवका सुख भोगता था तथापि उसका चित्त अहोरात्रि धर्मध्यानमें ही रहता था। वह चैत्यालयोंमें जा जिनपूजा, गुरु पूजा, सामायिक, और पर्व तिथिको प्रोषधो-पवास करता हुआ नित्य चार प्रकारका दान करता था। शीलव्रत भी सावधानीसे पालन करता था।

एक दिन कर्म संयोगसे क्षेमंकर नामक मुनिमहाराजके दर्शन हुये, उसने मुनिमहाराजके पास जाकर तीन प्रदक्षिणा देकर बड़े विनयके साथ बैठकर धर्मोपदेश सुना। वह उपदेश उसके चित्तमें एकदम डस गया जिससे चक्रवर्तीकी समस्त विभूति छोड़कर उसने दिगंबर दीक्षा ग्रहण की। वह बारह प्रकारका तपश्चरण करता हुआ अंगपूर्वादि समस्त शास्त्रोंमें पारगामी हुआ।

इधर कमठका जीव अजगर हुआ था सो मरकर छठे नरक में गया था। वहां बाईस सागरकी आयुपर्यंत दुःख भोगकर मरा सो इसी वनमें विहितकुरंग नामका भील हुआ। वह हाथमें तीर कमान लेकर जानवरोंको मारकर मांस खाता फिरता रहता था। फिरता २ इन वज्रनाभि मुनिके पास आया। उन्हें देखते ही पूर्व जन्मके वैरके कारण इसे क्रोध उत्पन्न हो आया सो मुनिको बाण मारा। मुनिने धर्मध्यानमें रहकर प्राण छोड़े सो मध्यम ग्रैवेयकमें जाकर अहमिंद्र हुये। वह भील मुनिकी हत्या करके फिर कुछ दिन बाद रौद्रध्यानसे मरकर सातवें नरकमें जाकर दुःसह दुख सहने लगा।

इधर जंबूद्वीपके भरतखंडमें अजोध्यानगरीका वज्रबाहु राजा राज्य करता था। वह इक्ष्वाकु वंशी जैनधर्मावलंवी था। उसकी रानी प्रभाकरीके गर्भमें उस अहमिंद्र देवने चयकर जन्म लिया जिसका नाम आनंदकुमार हुआ। वह बड़ा ही सुंदर था। युवावस्था प्राप्त होने पर अनेक राजकन्याओंके साथ विवाह हुवा। आगेको वह बड़ा पराक्रमी होकर महामंडलिक राजा हुवा।

एक दिन राजा आनंद सिंहासन पर वैठा था सो स्वामिहित नामक मंत्रीने उससे प्रार्थना की कि—महाराज! यह वसंत ऋतु और नंदीश्वर पर्व है इन दिनोंमें सब कोई नंदीश्वर व्रत धारण करके जिनमंदिरोंमें पूजन विधानादि बड़ा महोत्सव करते हैं। जिन पूजन करनेसे बड़ा भारी पुण्य होता है अतएव आप भी कीजिये। मंत्रीका ऐसा उपदेश सुनकर राजाने नगरमें बडाभारी उत्सव किया। स्वयं स्नान करके जिनमंदिरमें जाकर

बहुत प्रकारकी मनोज्ञ सामग्री लेकर भक्ति भावसे जिनेंद्रभगवान की पूजा की। पूजा करते हुये राजाके मनमें संदेह हुआ कि यह प्रतिमा अचेतन है, पूजा करने वालोंको क्या फल दे सकती है? इस प्रकारका विचार होनेपर उस मंदिरमें दर्शनार्थ आये हुये विपुलमति नामके मुनि महाराजसे यह प्रश्न किया तो मुनि महाराजने कहा कि—हे राजन्! प्रतिमाकी भक्ति भव्य जीवोंको किसप्रकार पुण्य फल देती है सो मैं कहता हूं—तू सुन।

प्रतिमा अपने भावोंको शुभ अशुभ करनेके लिये एक निमित्त कारण है जिस प्रकार सफेद स्फटिकमणिके पीछे लाल पुष्प रखनेसे स्फटिक लाल दिखता है और काला पुष्प रखनेसे काला दिखने लगता है उसी प्रकार यह प्रतिमा जीवोंकी दृष्टिमें जैसी पड़ती है वैसे ही भाव बदल जाते हैं। मंदिरजीमें भगवानकी वीतराग मूर्तिके देखनेसे इस जीवके परिणाम वैराग्यरूप होजाते हैं और वेश्याका नृत्य या चित्र देखनेसे इस जीवके परिणाम रागरूप हो जाते हैं। कारण दो प्रकारके होते हैं। एक अंतरंग कारण, दूसरा बाह्य कारण। सो अंतरंग परिणामोंका कारण बाह्य कारण होता है। अंतरंग परिणामोंके अनुसार ही कर्मबंध होते हैं। ऐसी व्यवस्थामें जिन परिणामोंसे अधिक पुण्य बंध होता है उन परिणामोंके होनेकेलिये निमित्त कारण जिनप्रतिमा है। क्योंकि भगवानकी वीतराग मुद्रा देखनेसे सर्वज्ञ प्रभुके गुणोंका स्मरण हो आता है और वे ही भाव महान पुण्यबंधको कारण हैं ऐसा समझो। रागद्वेषरहित निर्मल दर्पणकी समान भगवान हैं। वे सुख भी नहिं देते और दुख भी नहिं देते। इस

प्रकार अपने अंतःकरणमें समझ कर इसी गुणका चिंतवन करना चाहिये ध्यान करना चाहिये और इसी गुणका जाप्य पूजन स्तुति करना चाहिये क्योंकि अपने परिणामोंका ही फल अपनेको मिलता है और परिणाम ही मोक्ष सुख देनेवाले हैं। जैसे भगवानके गुण स्थिर रूप रागादि विकाररहित और आयुध भूषणादि रहित कहे गये हैं वे ही गुण जिनप्रतिमाके देखनेसे अपने मनमें उत्पन्न हो जाते हैं। यद्यपि यह प्रतिमा शिल्पकारकी बनाई हुई और अचेतन है तथापि देखनेसे अपने अंतःकरणमें शुभभाव उत्पन्न होते हैं। इसी कारण ही यह प्रतिमा अपने परिणाम शुभरूप करनेके लिये निमित्त कारण है। यहां एक दृष्टांत कहता हूं जिससे तेरा संदेह सर्वथा दूर हो जायगा।

एक नगरमें एक बहुत सुंदर वेश्या थी। वह मर गई उसको जलानेके लिये जब उसका शरीर चितापर रक्खा गया तौ वहां पर एक व्यभिचारी मनुष्य था वह उस लासको देखकर अपने मनमें तलमलाने लगा कि यह जीवित अवस्थामें मुझे देखनेको मिलती तौ मैं इसके साथ विषयसुख भोगकर अपने चित्तको तृप्त करता। वहीं पर एक कुत्ता खड़ा २ अपने मनमें पश्चात्ताप करने लगा कि—ये लोग इसे व्यर्थ ही जलाये देते हैं यदि ये मुझे दे देते तौ मैं इसे खाकर अपनी कई दिन तक क्षुधा शांत करता। और वहीं पर एक साधु मुनि बैठे थे उन्होंने इसे एक बार देखकर मनमें कहा कि—हाय हाय! ऐसा निरोग शरीर पाकर इस ने तपश्चरण नहिं किया। इस प्रकार उस अचेतन शरीरको देख कर भिन्न २ जीवोंके भिन्न २ परिणाम कैसे हुये सो विचार कर।

उन तीनों ही जीवोंने अपने २ परिणामोंके अनुसार फल पाया। वह व्यभिचारी तो मरकर नरक गया, कुत्तेको क्षुधारोग लग गया कितना ही खावै तो उसकी भूख न जावे। और मुनि महाराज मरकर स्वर्ग गये। इसी प्रकार यह अचेतन जिनप्रतिमा भी कार्य कारण संबंधसे अपने परिणामोंको शुभ कर देनेके कारण पुण्य प्रदान करती है और पुण्यसे स्वर्गके सुख व परंपरा मोक्षका कारण बन जाती है। इस प्रकार विद्वान् लोग समझते हैं सो इसमें कुछ भी असत्य वा शंका नहीं है। इसप्रकार मुनिमहाराज के मुखसे प्रतिमा पूजाका सविस्तर व्याख्यान सुनकर मूर्त्तिपूजा के विषयमें निःसंदेह हो गया।

इसी प्रसंगमें मुनिराजने तीन लोकसंबंधी अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन भी किया था उनमेंसे सूर्यके विमानमेंके अकृत्रिम जिन-मंदिरका वर्णन कुछ विशेषतासे किया था उसे सुनकर राजाको मनमें बड़ा भारी हर्ष हुआ। उस दिनसे राजा आनंद कुमार सवेरे संध्याको महलकी छत पर चढ कर सूर्य विमानमें स्थित जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओंको अर्घ देने लगा और जिनप्रतिमा का ध्यान करने लगा। सूर्य विमान बनवा कर उसमें एक जिन-मंदिर बनवाया और नित्यप्रति उस मंदिरमें पूजन करता रहा। इसप्रकार नित्य नियमकरनेसे नगरके लोग भी 'यथा राजा तथा प्रजा' की नीतिसे प्रतिदिन सूर्यको नमस्कार करने लगे और अर्घ देने लगे उसी दिनसे इस भरतक्षेत्रमें सूर्यकी उपासना प्रचलित हो गई और अब उसका स्वरूप और अभिप्राय भी अन्यमती विद्वानोंने बदल दिया।

एक दिन राजा आनंद कुमार सभामें बैठा था सो दर्पणमें मुख देखनेसे उसके शिर पर एक सफेद बाल दृष्टिगोचर हुआ। उसे देखते ही उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपने पुत्रको राज्य देकर सागरदत्त मुनिके पास दिगंबरी दीक्षा ग्रहण की। महाव्रत धारण करके बारह प्रकारके तप करने लगा। उसी मुनि अवस्थामें आनंद कुमार मुनिने सोलह कारण भावनाओंका चिंतवन प्रारंभ किया जिससे तीर्थंकर प्रकृतिका बंध हुआ। तपश्चरणके प्रभावसे उसे नानाप्रकारकी ऋद्धियें प्राप्त हुईं। जिस वनमें इन्होंने योग धारण किया था उस वनके समस्त दुख नष्ट हो गये। सूखे हुये सरोवर पानीसे भर गये, समस्त ऋतुओंके फल फूल वृक्षों पर दीखने लगे। सिंह वगेरह जातिवैरी जीव अपना वैर छोड़कर हिरण वगेरह सब जीवोंसे प्यार करने लगे। सांप मयूर, मूसे बिलाई वगैरह आपसमें प्रीतिसे खेलने लगे। मुनि भी सबसे मैत्रीभाव धारण करके आत्मध्यानमें लीन हो गये।

एक दिन मुनिमहाराज ध्यानमें बैठे थे। वह पापी कमठका जीव नर्कमें नानाप्रकारके दुख भोगकर मरा सो इसी वनमें आकर सिंह हुआ था सो उसने आनंदकुमार मुनिको देखा और पूर्वजन्मका वैर याद आनेसे क्रोधित हो मुनिके कंठ जा दबाये। अपने तीक्ष्ण नखोंसे मुनिका सर्व शरीर विदारण करके पंजोंसे टुकड़े २ कर डाले और उन्हें खाडाला। मुनिने ये सब कष्ट साम्य भावोंसे सह लिये, मनमें रंच मात्र भी क्रोध नहिं आने दिया, उत्तम क्षमा भाव धारण कर लिया ऐसी अवस्थामें

मुनि प्राण त्याग करके तेरहवें स्वर्गमें इन्द्र हुये। वहां पर वह नानाप्रकारके सुख भोगने लगा। परंतु अंतःकरणमें उन सब भोगों को मोक्षसुखके सामने तुच्छ मानता था। वहांसे मेरु परके तथा नंदीश्वरद्वीपके अकृत्रिम चैत्यालयोंके दर्शन पूजनके लिये नित्य-प्रति जाया करता था। स्वर्गस्थ सभाके सम्यग्दर्शनरहित देवों को उपदेश देकर उन्हें सम्यक्त्व ग्रहण कराता था। इस प्रकार वीस सागर पर्यंत आयु उसने सुखसे विता दी।

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके काशी देशमें बनारस नामका नगर है। वहां पर विश्वसेन नामका राजा राज्य करता था। वह काश्यप गोत्र और इक्ष्वाकुवंशी था। उसके मति श्रुत और अवधि तीन ज्ञान थे। उसकी पट्टरानी वामादेवी बड़ी सुंदर पतिव्रता थी। ये दोनों तीर्थंकरके माता पिता होनेवाले थे इस कारण इनके मल-मूत्र नहिं होता था।

एक दिन सौधर्मेन्द्रने कुवेरको बुलाकर आज्ञा दी कि–तेरहवे आनंत स्वर्गके इंद्रकी अब छहमहीने आयु शेष रही है। वह वहां से चयकर भरतक्षेत्रमें तेईसवें तीर्थंकर होंगे। इसलिये बनारस नगरमें विश्वसेन राजाके घर पर पंचाश्चर्यवृष्टि करना चाहिये। इन्द्रकी ऐसी आज्ञा होते ही कुवेरने तीर्थंकरके पिता विश्वसेन राजाके घरपर नानाप्रकारके रत्नोंकी वृष्टिकी। प्रति-दिन साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वृष्टि होती थी। इसके सिवा कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी वृष्टि, गंधोदककी वृष्टि होती थी और दुंदुभि बजते थे और आकाशमेंसे देव जय जय शब्द करते थे। इस प्रकार छह महीने तक पंचाश्चर्य होते रहे जिनको देखकर अनेक अजैन जैनधर्मावलंबी हो गये थे।

एक दिन वामादेवी चतुर्थ स्नान करके रात्रिमें सोई थी सो रात्रिके शेषमें उसने १६ स्वप्न देखे। प्रातः काल ही स्नानादि नित्य क्रिया करके सखियों सहित राजसभामें गई। राजाने आदर सन्मान करके अर्द्धासन दिया। रानीने अपने सोलह स्वप्ने कहकर फल सुननेकी प्रार्थनाकी। राजाने स्वप्नोंका फल कहा कि-तेरे गर्भमें तीर्थंकर आये हैं और प्रत्येक स्वप्नके अनु-सार उसमें सब गुण होंगे। यह फल सुननेसे रानीको बड़ा भारी आनंद हुआ।

तदनंतर सौधर्म इंद्रने जान लिया कि तीर्थंकर गर्भमें आये हैं इस लिये श्री ह्री आदि देवियोंको हुक्म दिया कि—तुम सब विश्वसेन राजाके घर जाकर वामादेवीके गर्भका संशोधन करो और देवीकी तनमनसे सेवा करो क्योंकि उसके गर्भसे तेईसवें तीर्थंकर जन्म लेंगे। यह सुनकर देवियोंको बड़ा आनंद हुवा वे इन्द्रकी आज्ञानुसार तत्काल ही बनारसमें जाकर माताकी नाना प्रकारसे सेवा करने लगीं। वैशाख वदि २ विशाखा नक्षत्रकी रात्रि में वामादेवीके गर्भ रहा था उस समय चारों ही प्रकारके देवोंके आसन कंपायमान हुये। वे सब ही देव विमानोंमें बैठ २ कर गर्भ कल्याणका उत्सव करनेके लिये बनारस नगरीमें आये। और तीर्थंकरके माता पिताको सिंहासन पर बैठाकर सुवर्ण कलशोंसे उनका अभिषेक किया। और गर्भस्थ तीर्थंकरको नमस्कार कर के गीत नृत्य वादित्र बजाकर माता पिताकी भेट करी। और रुचिक द्वीप निवासिनी देवियें आकर माताकी नित्यप्रति सेवा करने लगी। मातासे नाना प्रकारके कठिन २ प्रश्न करती थी।

उनके समस्त प्रश्नोंका उत्तर माता देती थी। जिसके गर्भमें तीन ज्ञानका धारक तीर्थंकर है उसको कठिन २ प्रश्नोंका उत्तर देदेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। माताको गर्भको कुछ भी भार वा कष्ट नहीं था। उदरकी त्रिवलीका भी भंग नहिं हुआ। अन्य स्त्रियोंकी समान माताको किसी भी प्रकारका विकार नहिं हुआ। पूर्वमें छह महीनोंकी तरह नवमहीने तक पंचाश्चर्यवृष्टि नित्य होती रही।

नवमास पूर्ण होनेपर पौष कृष्णा एकादशीके दिन पार्श्वनाथ भगवान्का जन्म हुआ। उस वक्त इन्द्रने जन्मकल्याणका उत्सव किया। माता पिताकी साक्षीसे तीर्थंकरका नाम पार्श्वनाथ रखा गया और उनकी सेवाके लिये योग्य देवोंको रखकर सब अपने २ स्थान चले गये।

भगवान् दोजके चंद्रमाको समान दिनों दिन बढ़ने लगे। आठवर्षकी उमरमें श्रावकके बारह व्रत धारण किये। प्रभुके साथ खेलनेके लिये उनहींकी उमरके बराबर होकर देव खेलते रहते थे। वे सब कभी हाथीपर कभी घोड़ेपर बैठकर बागमें जाते थे, कभी जलक्रीड़ा करते थे। भगवान् युवावस्थामें आये तब उनका शरीर नव हाथ ऊंचा हो गया। यही उनके शरीर की पूर्ण ऊंचाई थी। शरीरका रंग नीलवर्ण था। सोलह वर्षकी उमर हो गई तब एक दिन भगवान् सिंहासन पर बैठे थे। उस

---

१ हरएक तीर्थंकरके जन्मसमय जैसा जन्मोत्सव होता है वैसा ही उत्सव इस समय किया गया इसलिए यहां कुछ लिखा नहि गया।

समय पिताने आकर कहा कि—आप एक राजकन्याके साथ विवाह करें जिससे अपने वंशकी रक्षा हो जिसप्रकार नाभिराज की इच्छा आदिनाथ भगवानने पूर्ण की थी वैसी तुम हमारी इच्छा पूर्ण करो। यह पिताके वचन सुनकर भगवानने कहा कि आदिनाथ भगवानकी समान मेरी उमर कहां है ? मेरी उमर कुल १०० वर्षकी है उसमेंसे सोलह वर्ष तो बालकपनके खेल कूद में ही चले गये और तीस वर्षमें दीक्षा लेनी है तब थोड़ेसे दिन के लिये थोड़ेसे सुखके लिये यह उपाधि किस लिये लगाऊं। इसप्रकार भगवानकी विवाह करनेकी इच्छा न देख पिताको उदासी अवश्य हुई। परंतु अवधिज्ञानसे उन्होंने भी ऐसा ही भवितव्य समझ संतोष धारण किया।

इधर कमठका जीव सिंह हुआ था और मुनिकी हत्याकरके मरकर पांचवे नरक गया। वहां पर सतरह सागर पर्यंत दुःख भोगके मरण किया सो तीन सागर पर्यंत पशु योनिमें भ्रमण करते करते किसी जन्ममें कोई शुभकार्य हो जानेसे वह महिपाल नामके नगरमें महिपाल नामका राजा हुआ। वही वामादेवीका पिता वा पार्श्वनाथ भगवानका नाना था। उसकी जब पटरानी मर गई तो उसके विरह दुःखसे दुःखित होकर राज्यपाट छोड़ कर उसने संन्यासी तपस्वीका भेष धारण कर लिया और वनमें पंचाग्नि योग साधन कर रहने लगा। शिरपर जटा बढ़ाकर मृगछाला ओढ़कर ऐसे भेषमें फिरता २ बनारसके जंगलमें आया। उस समय पार्श्वनाथ भगवान हाथी पर सवार होकर अनेक देवोंके साथ वनक्रीड़ा करनेके लिए निकले थे सो वापिस आते समय

अपने नाना महिपालको पंचाग्नि साधन करते हुये देखा । महिपाल तापसीने भी प्रभुको देखा और क्रोधाविष्ट होकर अपने मनमें कहने लगा कि—मैं इसका नाना हूं, कुलवान महान तपस्वी हूं तो भी इसने मुझे देखकर नमस्कार नहीं किया। देखो इस छोकड़ेको कितना अभिमान है ऐसा कहकर अग्निमें के लकड़े सब जल गये थे सो उसके लिये कुहाडा हाथमें लेकर लकडीको चीरने लगा । यह देख भगवान पार्श्वनाथने मिष्ट वचनोंसे कहा कि—हे तापसी ! जरा ठहरो, फिर इस लकड़ेको चीरना ! इस लकड़ेके भीतर दो नाग नागिन बैठे हैं । यह सुनकर तापसीको और भी क्रोध हो आया उसने कहा कि—हे लड़के ! क्या सबका सब ज्ञान तेरेमें ही आ गया है मानो ब्रह्मा विष्णु-महेश तू ही है जिससे ऐसी ज्ञानकी बात कहता है ? इस प्रकार कह कर भगवानके मनाही करते २ ही उसने अपने कुठारको लकड़े पर चलाही दिया । जिससे तत्काल ही नाग नागिनके टुकडे हो गये और तड़फने लगे । उन्हे देखकर भगवान पार्श्वनाथको बड़ी दया आई और उस तापसीको कहा कि अरे तू व्यर्थ ही गर्व करता है । तेरे अंतःकरणमें जरा भी दया नहीं हैं । अरे ज्ञानके बिना इस शरीरको व्यर्थ ही क्यों कष्ट देता है ? यह वचन सुनकर तापसीने फिर कहा कि—अरे छोकडे ! तू क्या समझता है मै तेरा नाना हूं तेरी मा मेरी बेटी है तिसपर मैं तापसी हो गया हूं सो तूने मुझे नमस्कार तक नहीं किया—मुझसे विनयके साथ बोलना चाहिये सो उसको जगह तू मेरी निंदा करता है ? अरे मैं शरीर परकी अग्नि सहकर

पंचाग्नि साधन करता हूं, एक पांवपर खड़ा होकर एक हाथ ऊंचा रख करके तपस्या करता हूं। क्षुधा तृषा सहन करता हूं। पारणेके दिन सूखे पत्ते खाकर ही रहता हूं। अरे तू मेरी तपश्चर्याको ज्ञानहीन तपस्या कैसे कहता है? तब भगवानने उसे मिष्ट शब्दोंमें फिर कहा कि—तेरी तपस्यामें हिंसाका पाप बहुत है। नित्य तेरे हाथसे छह कायके जीवोंकी हिंसा होती रहती है। जहां जरा भी जीव हिंसा हुई कि वहां अवश्य ही पातक होता है और पातकके फलसे दुर्गतिके दुख अवश्य भोगने पड़ते हैं। इस लिये यह दयाहीन तप है। ज्ञानके (विवेकके) विना सर्व-प्रकारके कायक्लेश किये तौ भी वे उत्तम फल देनेवाले नहीं। जिस प्रकार धान छोड़कर तुषको कूटना व्यर्थ है उसी प्रकार यह अज्ञानतप निष्फल है। जैसे अंधा पुरुष दावाग्नि लगे हुये जंगलमें इधर उधर भागता फिरता है परंतु उसे आगसे बच कर निकलनेका रास्ता नहि मिलता, जलकर मर जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव कायक्लेश करते करते मर जाते हैं परंतु संसाररूपी दावाग्निसे निकल नहि सकते और इसी प्रकार क्रियाके (चारित्रके) विना सिर्फ ज्ञान भी फलदायक नहि है। पांव और आंखें होते हुये भी भागकर दावाग्निसे निकलनेका उपाय नहिं किया तौ दावाग्निमें अवश्य ही जलकर मरना पड़ेगा इसकारण ज्ञानसहित आचार और उनके साथ २ विश्वास (श्रद्धान) ये तीनों हीं जब एकत्र हों तब इच्छित फल प्राप्त होता है। इसप्रकार जिनमतानुसार चलकर तू आत्महित कर, और यह हठ छोड़ दे। यह मैं तेरे हितके अर्थ कहता हूं।

विचार करके देख, यदि तुझे अच्छा लगै तौ कर, नहीं तो मेरा कुछ आग्रह नहीं है।

वे दोनों नाग नागिनी लकड़ेमेंसे टुकड़े होकर पड़े थे उन्होंने मरते समय तीर्थंकर भगवानका दर्शन किया और उनके मुखका उपर्युक्त भाषण सुनकर शांतचित्त होकर मरण किया सो धरणेंद्र पद्मावती हुये। उन्हें मरते समय भगवानका साक्षात् दर्शन हुआ। यह उनका बडा भारी पुण्योदय समझना चाहिये।

तदनंतर पार्श्वनाथ स्वामी तौ अपने घर आये। वह तापसी कुछ दिनोंवाद मरकर ज्योतिर्वासी शंवर नामका देव हुआ। भगवानका आयु जव तीस वर्ष हो गया तव अयोध्याके राजा जयसेनने भगवान पर अपनी अतिशय भक्ति होनेके कारण कुछ घोड़े वगेरह वहुतसी वस्तुयें एक दूतके साथ भेजा थीं। सो वह दूत सव सामग्री लेकर वनारस गया। भगवान सिंहासन पर वैठे थे सो उसने वड़े आनंदके साथ प्रभुको नमस्कार किया और राजाकी भेजी हुई सव भेंट भगवानके सामने रखकर वोला कि—राजा जयसेनने आपको साष्टांग नमस्कार कहा है। तव भगवानने उसको अजोध्याके सव समाचार पूछे। उस दूतने जो जो तीर्थंकर अजोध्यामें उत्पन्न हुये और कर्म काटकर मोक्षधाम पधारे उन सवका वर्णन भी किया जिसको सुनकर भगवानके मनमें वैराग उत्पन्न हो आया और तत्काल ही मनमें चिंतना करने लगे कि—

"सवसे श्रेष्ठ पद इन्द्रासन वह भी मैंने इच्छानुसार भोग लिया तौ भी मेरी तृप्ति नहिं हुई तो इस मनुष्य जन्ममें कितना सुख

मिल सकता है ? अहो ! जब समुद्रप्रमाण जलके पीनेसे ही प्यास नहिं बुझी तो तिनकेकी बूंदसे वह प्यास कैसे मिट सकती है। अग्निमें इंधन झोंकनेसे अग्नि कभी नहिं बुझती परंतु बढ़ती ही जाती है। नदियोंसे समुद्रकी कभी तृप्ति हुई है क्या ? कभी नहीं, उसी प्रकार ये विषय भोग अतिशय विकट हैं इनके भोगते रहनेसे कभी तृप्ति नहिं होगी। विषय भोग ज्यों ज्यों अधिक २ भोगनेको मिलते हैं त्यों त्यों उनके भोगनेकी लालसा अधिक २ बढ़ती जाती है विषयभोग लालसा विषय भोगनेसे नष्ट होती है ऐसा जो कहते हैं वे घी डालके अग्नि बुझानेको कहते हैं। ये विषयभोग भोगते समय बड़े प्रिय लगते हैं परंतु उनके फल बहुत कटुक होते हैं। जैसे कोई मनुष्य धतूरा खालेता है तो उसे सब सोना ही सोना दीखता है। विषकी बेलमें लगे हुये फल जिस प्रकार प्राणोंके घातक हैं उसी प्रकार ये विषयभोग प्राणघातक हैं। धिक्कार है इस इन्द्रियसुखको जिसके लोभमें यह जीव अनादि कालसे इसका स्वाद चखता २ भ्रमण करता फिरता है। इन्द्रियसुखोंके वशीभूत होनेसे ही इसको किसीका उपदेश प्रिय नहिं लगता और उसके लिये नानाप्रकारके पाप कार्य करता रहता है। स्थावर और त्रस जीवोंकी हिंसा इस इन्द्रिय सुखके कारण ही करता है-चोरी ठगाई भी इसी विषयभोगके लिये करता है, परस्त्रीकी वांछा भी इसी विषयतृष्णाकेलिये करता है। परिग्रहोंकी तृष्णा बढाना भी इन्द्रियविषयोंके लिये करता है। अर्थात् जितने अनर्थ हैं वे सब एकमात्र इन्द्रियजनित विषय-सुखकेलिये ही होते हैं परंतु शेषमें उन विषयोंकी तृप्ति तो होती

नहीं उसकी जगह नरक तिर्यंचादि दुर्गतियोंके दुःख ही भोगने पड़ते हैं। अतएव इन विषयभोगोंका अनुराग छोड़ना ही उत्तम है। मैने भी इतने दिन व्यर्थ गमा दिये। संयमके विना जो इतना काल विता दिया वह समझमें ही नहिं आया। मोहके वशीभूत हो तपश्चरण धारण नहिं किया सो अच्छा नहिं किया। अस्तु, जो हुआ सो तो हुआ परंतु अब चारित्ररूपी चिंतामणि ग्रहण करनेमें विलंब नहिं करना चाहिये।"

इसप्रकार विषय भोगोंसे विरक्त होकर भगवानने द्वादशानुप्रेक्षा[1] का चिंतवन प्रारंभ किया। इतनेमें ही पांचवें स्वर्गके लौकांतिक देव आ गये और भगवानपर पुष्पांजली डालकर भगवानके चरणोंकी पूजा की और हाथ जोडकर कहने लगे-धन्य प्रभो धन्य! हे जगत्पते धन्य हैं आपके विचारोंको और धन्य है आपके इस सियानपनको! हे दयानिधे! आजका यह समय भी धन्य है जो यह असार संसार और देह अपवित्र है ये सब क्षण भंगुर हैं ऐसा आपने जानकर स्थिर किया और इन्द्रियोंके सब सुख स्वप्न समान आपको भास गये सो वास्तवमें सब इसी प्रकार ही हैं। इसमें रंचमात्र भी शंका नहीं है। आपने जो चित्त में विचार लिया है वही आपका व जगत भरका कल्याण करने वाला कार्य है। आज आप वैराग्यरूपी खड्ग हाथमें लेकर मोह-रूपी शत्रुको नाश करनेके लिये उद्यमी हुये हैं उससे शुभका

---

१ बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन सर्वत्र एकसा ही होता है इसलिये यहां नहीं लिखा।

उदय हुआ समझना और मुक्तिरूपी लक्ष्मीको सौभाग्य प्राप्त हुवा है। भगवन्! यह समस्त जगत् प्रमादसे वेशुध होकर सो रहा है जब आपकी दिव्यध्वनिरूपी गर्जना होगी तब ही यह जगत जागैगा। यह सब आप जानते ही हैं। आप स्वयंबुद्ध हैं, अन्य जीवोंको उपदेश देनेमें समर्थ हैं आपको उपदेश देनेकी किसकी सामर्थ्य है आप तो सूर्य हैं आपके सामने दीपकका प्रकाश करना व्यर्थ है। आपके वैराग्यके समय हम लोगोंको यहां आनेका नियम है इसीलिये हम आकर आपसे प्रार्थना करैं इतना ही नियोग है। बाकी करने योग्य कार्य तो सब आप करते ही हैं इसलिये हे प्रभो! अब आप महाव्रत धारण करकैं कर्मरूपी शत्रु का शीघ्र ही संहार करें। भ्रमरूपी अंधकारको नष्ट करदें जिससे स्वर्गमुक्तिका मार्ग जगतके जीवोंको ठीक २ मालूम हो जाय इस प्रकार बडी भक्तिके साथ स्तुति करकें वारंवार भगवानके चरणोंमें नमस्कार करकें सब देव अपने २ स्वर्गमें चले गये।

इसके पश्चात् चार प्रकारके देवोंके इन्द्र अपने २ बाहनों पर चढकर परिवारसहित बड़े हर्षके साथ भगवानके दीक्षा कल्याणक करनेके लिये आये। नानाप्रकारके बाजे बजने लगे। देवांगनायें नृत्य करतीं, किन्नरियां मधुर स्वरसे गातीं और समस्त देव जय जयकार घोष करने लगे। सौधर्मेंद्रने भगवानको क्षीर समुद्रसे भरकर लाये हुये सुवर्णके कलशोंसे सिंहासन पर बैठाकर विधिपूर्वक अभिषेक किया। और सर्व प्रकार वस्त्राभरण धारण कराकर शरीर पर चंदन चर्चित किया। इस समय भगवान ऐसे शोभते थे मानो मुक्तिस्त्रीको वरण करनेके लिये

दुल्हा (बीन) ही सजे हों। तत्पश्चात् भगवानने अपने माता पितादि समस्त कुटुंब और उपस्थित जनताको वैराग्यका उपदेश दिया। उसे सुनकर माताके नेत्रोंमें पानी भर आया। तब उसे भगवानने बड़े कष्टसे समझा कर शांत किया। और इन्द्रके द्वारा लाई हुई विमला नामकी पालकीमें बैठ गये। उस पालकीको प्रथम तौ भूमिगोचरी राजा कंधेपर उठा कर सात पांव चले। तत्पश्चात् विद्याधर राजा अपने कंधे पर उठाकर सात पांव चले तत्पश्चात् इन्द्रादिक देवोंने अपने कंधों पर लेकर अश्वनामा वनमें जाकर रक्खी। उस वनमें एक बड़के वृक्ष तले स्वच्छ शिला पर इन्द्राणीने साँथिया (मांडना) पूरा था उस पर भगवान जा विराजे। समस्त कोलाहल शांत हो गया भगवान अपने मनमें शांति लाकर समस्त वस्त्राभूषण उतार कर एक दम नग्न हो गये और अत्यंत उदासवृत्तिसे उत्तरमुख बैठकर हाथ जोड़कर सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार किया। अंतरंग और बाह्य समस्त परिग्रहोंका त्याग करके पांच मूठियोंसे अपने केशोंका लोच किया। इस प्रकार पौषशुक्ल एकादशीके दिन प्रथम पहरमें भगवान पार्श्वनाथने महाव्रत धारण किये और पद्मासन धारण करके बैठ गये। भगवानके साथ अन्यान्य तीन-सौ राजाओंने भी दीक्षा ग्रहण की। भगवानके लोच किये हुये केश इन्द्रने अपने हाथमें लिये और बड़े आनंद उत्साहसे क्षीरसमुद्रमें डालकर सब देव अपने २ स्थान गये।

तत्पश्चात् प्रभुने एक साथ तीन उपवास किये। वे मुनिके अठाईस मूलगुण और ८४ उत्तर गुण उत्कृष्ट रीतिसे पालते

हुये मौनसे ध्यान करने लगे जिससे चौथा मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

ध्यान पूरा होने पर भोजनार्थ विहार किया सो जमीनकी तरफ ही दृष्टि रखकर ईर्यापथ शोधन करते हुये गुल्मखेट नामके नगरमें पहुंचे। वहांका राजा ब्रह्मदत्त भगवानको देखकर अत्यंत हर्षित हुआ और इन्हें उत्तम पात्र समझ कर नमस्कार किया और घरमें ले जाकर सोनेके सिंहासन पर बैठाया, प्रासुक जल से चरण प्रक्षालन करकें अष्टप्रकारसे पूजन किया और हाथ जोड़कर नमस्कार किया तथा मन वचन और कायको शुद्ध रखकर भगवानको आहार प्रदान किया। ऐसे उत्तम पात्रको विधिपूर्वक भक्तिसे आहार देनेसे उसके घर पर देवताओंने पंचाश्चर्यवृष्टि की। जिससे राजाकी बड़ी कीर्ति विस्तरी। तदनंतर भगवान वनमें आये और पुनः ध्यान करनेको बैठ गये। उनके इस एकाग्र ध्यानके माहात्म्यसे उस वनके समस्त पशु परस्पर वैरभाव छोड़ कर प्रीतिसे परस्पर खेलते हुये रहने लगे। सिंह किसीको मारता नहीं, सांप किसीको काटता नहीं इस प्रकार सर्वत्र साम्यभाव फैल गया।

एक दिन भगवान दीक्षावनमें कायोत्सर्ग ध्यानमें निमग्न होकर खड़े थे। उस समय शंवर नामक कमठका जीव जो ज्योतिषी देव हुवा था। वह विमानमें बैठकर कहींको जाता था सो उसका विमान भगवानके मस्तक पर आते ही रुकगया। तव शंवर ज्योतिषीने अवधिज्ञानसे देखा तो मालूम हुआ कि मेरा पूर्वजन्म का वैरी नीचें खडा है। उसका वदला लेना चाहिये ऐसा मनमें

विचार कर बड़े क्रोधसे नेत्र लाल करके भगवानको उपसर्ग करना प्रारंभ किया। उसने चारों ओर घोर अन्धकार करके मेघकी भयानक गर्जनापूर्वक मूसलधार मेघ बरसाया, आंधी भी खूब जोरसे चलाई जिससे पर्वत गिर पड़े, बड़े २ वृक्ष उखड़ गये, समस्त पृथिवी समुद्र समान भासने लगी। परंतु भगवान जैसेके तैसे अडिग सुमेरुपर्वत समान अचल खड़े रहे। इसके पश्चात् और भी अनेक प्रकारके उपसर्ग भगवानके ऊपर किये, उनके सामने आकर यमराजका भयंकर रूप दिखाने लगा। अपने मुंह पर कलोंच लगाकर बड़े जोर जोरसे रोने चिल्लाने लगा, गलेमें मुंडमाला डाल कर मुहसे अग्निके फुलिंगे बाहर करने लगा, और मोटे स्वरसे 'मारो मारो' चिल्लाने लगा। इत्यादि प्रकारसे भगवानको अनेक उपसर्ग किये. परंतु भगवान का ध्यान तिलभर भी न डिगा जिसके प्रभावसे पातालमें धरणेंद्र का आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञान जोड़नेसे मालूम हुआ कि पूर्वजन्ममें भगवान पार्श्वनाथका मेरे ऊपर बड़ाभारी उपकार हुआ है सो वह तुरंत ही पद्मावतीको साथ लेकर भगवानके पास आया दोनोंने हाथ जोड़कर भगवानको नमस्कार किया। और भगवानके मस्तक पर नागके फणोंका बडाभारी मंडपसा बना दिया जिससे भगवानके ऊपर एक बूंद भी पानी नहिं पड़ा और एसे एक बडेभारी भुजंगको जब उस ज्योतिपीने देखा तो देखते ही भय खाकर भाग गया। उस समय भगवान सातवें अप्रमत्त गुणस्थानमें स्थिर हो गये। भगवानने चौथे गुणस्थान में सात प्रकृतियोंका क्षय तो पहिले ही कर दिया था और

इस सातवें गुणस्थानमें तीन प्रकृतिका और भी क्षय करके शुक्ल-ध्यानके प्रथम पायेको प्रारंभ किया। वे क्षपकश्रेणीके मार्गसे अगले गुणस्थानों पर चढ़ने लगे। नववें गुणस्थान चढ़ कर छत्तीस कर्मप्रकृतियोंका क्षय किया। दशवें गुणस्थानमें सूक्ष्म लोभको नष्ट करके ग्यारहवें गुणस्थानमें न जाकर बारहवें गुण-स्थानमें पहुंच कर सोलह प्रकृतिका नाश किया इस प्रकार चार घातिया कर्मोंकी ६३ प्रकृतियोंको नष्ट करके चैत्र कृष्णा १४ के दिन केवलज्ञानको प्राप्त किया और तेरहवें गुणस्थान पर आ गये।

भगवानको केवलज्ञान हो जाने पर त्रिलोकीके समस्त पदार्थ हाथकी तीन रेखाओंकी तरह दीखने लगे। उनका शरीर जमीन से गंधकुटीके मध्य ऊंचा आकाशमें अधर होगया उस वनके समस्तवृक्षों पर विना ऋतुके ही फल दीखने लगे, समस्तप्रकार की वेलों पर पुष्प आ गये। इंद्रका आसन कंपायमान हुआ तव उसने अवधिज्ञानसे जान लिया कि भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया उसी वक्त कुवेर आदि देवोंने भगवानका समव-शरण रचा, वारह सभा वनी। वहां पर पशु पक्षी आदि सवने ही अपने परस्परका वैरभाव छोड़ दिया और वे भगवानके उपदेश को सुनकेकेलिये सभामें आकर वैठे।

इसके पश्चात् स्वयंभूनामके गणधरने भगवानसे प्रार्थनाकी कि-हे प्रभो! ये जीव अज्ञानरूपी अंधकारमें पड़े हुये दुःख भोग रहे हैं सो इनको आप धर्मोपदेशरूपी प्रकाश देकर मार्ग दिखावें। इस परसे भगवानने समस्त जीवोंकी समझमें आनेवाली

दिव्य ध्वनिमें धर्मोपदेश देना प्रारंभ किया। अनेक जीवोंने अनेक प्रश्न किये उन सबका समाधान दिव्यध्वनि द्वारा भगवानने किया जिनको सुनकर कितनों हीने दिगंबर मुनिकी दीक्षा ली, कितने ही पशुओंने भी अणुव्रत धारण किये। कितनीक स्त्रियां अर्जिका हुईं और अपने पतिके साथ ही साथ वनमें चल दीं कितने ही मनुष्योंने तथा पशुओंने और देव देवियोंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। इस समय कमठका जीव शंवर नामका ज्योतिषी भी यहां पर आया था उसने भी भगवानके मुखसे उपदेश सुना। जिस से मिथ्यात्व नष्ट हो गया और भगवानके चरणोंमें पड़कर उसने भी सम्यक्त्व ग्रहण किया। उस वनमें सात सौ अन्यमती तपस्वी रहते थे, उनने भी जिनेंद्र भगवानकी समवशरण विभूति देखी जिससे उनको समीचीन ज्ञान हो गया। भगवानकी तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया और अपने पूर्वके मिथ्या आचरणोंका पश्चात्ताप करके संयम धारण किया। तत्पश्चात् स्वयंभू गणधरने भगवानकी वाणीको द्वादशांग चौदह पूर्वरूप रचना करके सुनाया जिससे समस्त सभायें अत्यंत हर्षित हुईं।

इसके पश्चात् इन्द्रने खडे होकर भगवानसे प्रार्थना करी कि—हे जगत्पते! जगह २ के भव्य जीवोंको उपदेश देनेके लिये आप विहार करिये। यह सुन भगवान विहार करनेको निकले, काशी, कोशल, पांचाल, महाराष्ट्र, मारवाड़, मगध, अवंती, मालवा, अंग, बंग आदि आर्य खंडके देशोंमें विहार करके धर्म का उपदेश किया। उनके साथ २ चतुर्निकायके देव और सौ इन्द्र चलते थे और स्वयंभू आदि समस्त आगमके ज्ञाता दश

गणधर भी रहते थे। जहाँ जहां भगवान जाते देवतागण समव-शरण रचते जाते थे। भगवानके साथ पूर्वधारी साढ़े तीन सौ मुनि, दश हजार नवसौ पुराण कहनेवाले शिष्य मुनि थे, चौदह सै अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, विक्रियाधारी एक हजार, मनःपर्ययज्ञानी साढ़े सातसौ, वाद जीतनेवाले छहसौ मुनि, सोलह हजार साधारण मुनि, छत्तीस हजार अर्जिकायें, एकलाख श्रावक, तीन लाख श्रावकायें असंख्यात देवी देवी और संख्यात पशु पक्षी थे। इसप्रकारकी वारह सभा सहित रत्नत्रयका उपदेश करते हुये धर्मका मार्ग दिखाते भगवान् विहार करते थे।

इसप्रकार कुछ दिन कम सत्तर वर्ष तक विहार करके सम्मेद शिखर पर आये वहां पर एक महीनेका योग धारण करके शुक्लध्यानके तीसरे पाये सूक्ष्म क्रियाप्रतिपातिका प्रारंभ किया। इसके वाद सयोगकेवली तेरहवां गुणस्थान छोडकर अयोग-केवली नामके चौदहवें गुणस्थानमें आये इस गुणस्थानका काल अ इ उ ऋ लृ इन पांच अक्षरोंके उच्चारण जितना ही होता है इतने ही कालमें चौथे शुक्लध्यानके पाये व्युपरतक्रियानिवृत्ति नामका धारण करके अघातिकर्मोंकी ८५ प्रकृतियोंका क्षय किया।

इस प्रकार संपूर्ण कर्मोंकी प्रकृतियोंका क्षय करके श्रावण सुदि सप्तमीको विशाखा नक्षत्रमें भगवान मोक्षको पधारे। उनके साथ २ छत्तीस मुनि और भी मोक्षको प्राप्त हुये। इसके वाद इन्द्रादि देव मोक्षकल्याणके लिये अपने २ विमानोंमें वैठ कर आये और भगवानका शरीर पवित्र है इसलिये रत्नोंकी पालकी

पर रखकर पूजाकी फिर अगर चंदन वगेरह सुगन्धि द्रव्योंसे अग्नि कुमार देवोंने अपने मुकुटसे उत्पन्न की हुई अग्निसे भगवान के शरीरको दग्ध किया। भगवानका शरीर दहन होनेसे चारों तरफ सुगंधि फैल गई। उसके बाद दहनक्रियाकी भस्म लेकर इन्द्रादिक देवोंने अपने २ मस्तक छाती हाथ गले पर लगाई और बड़ी भक्तिसे नृत्यभजनादिक कर वे समस्त देव अपने अपने स्थान चले गये।

—:*:○:*:—

पार्श्वनाथ भगवानके भवांतर.

—:*:○:*:—

१। ब्राह्मण कुलमें मरुभूति मंत्री।

२। सल्लकी वनमें वज्रघोप नामका हाथी जिसने बारह व्रत पाले।

३। बारहवें स्वर्गमें शशिप्रभ देव।

४। विद्याधर कुमार अग्निवेग जिसने बालकपनमें संयम लिया।

५। अच्युत स्वर्गमें देव जिसकी आयु बाईस सागर।

६। वज्रनाभि चक्रवर्त्ती।

७। अहमिंद्र देव।

८। आनंद राजा जिसने मुनि दीक्षा लेकर १६ भावना भाई।

९। तेरहवें स्वर्गमें इन्द्र हुये।

१०। राजा विश्वसेन और वामादेवीके उदरसे पार्श्वनाथ तीर्थंकर हुये।

---

४१. छहढाला सार्थ—तीसरी ढाल।

नरेंद्र छंद २८ मात्रा (योगीरासा)।

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये।
आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिव,—मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥ १॥
पर द्रव्यनितैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है।
आपरूपको जानपनो सो, सम्यकज्ञान कला है॥
आपरूपमें लीन रहै थिर, सम्यक चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतिको होई॥ २॥

आत्माका हित सुखमें है, आकुलता (इच्छा) रहितको सुख कहते हैं। मोक्षमें आकुलता नहीं है इस लिये मोक्षमार्गमें लगना उचित है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता को मोक्षमार्ग कहते हैं सो निश्चय व्यवहारके भेदसे दो प्रकार का है। जो सत्यार्थरूप है सो तो निश्चय मोक्षमार्ग है और निश्चय मोक्षमार्गका कारण रूप व्यवहार मोक्षमार्ग है॥ १॥ पर द्रव्योंसे भिन्न अपनी आत्मामें ही रुचि (श्रद्धान) रखना सो तो निश्चय सम्यग्दर्शन है तथा अपने रूपको जानना सो निश्चय

सम्यग्ज्ञान है और अपने आत्म स्वरूपमें ही लीन व स्थिर रहना सो निश्चय सम्यक्चारित्र है। इस निश्चय मोक्षमार्गका जो कारण स्वरूप व्यवहार मोक्षमार्ग उसे अब सुनिये॥ २॥

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों को त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुनि सामान्य विशेषैं, दृढ प्रतीति उर आनो॥ ३॥

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व जिनेंद्र भगवानने जिस प्रकार कहे हैं उसी प्रकार श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अब इन तत्त्वोंका सामान्य और विशेष स्वरूप आगें कहता हूं सो जानकर उनपर दृढ श्रद्धान करना॥ ३॥

बहिरातम अंतर आतम परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीवको एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके, अंतर आतम ज्ञानी।
दुविधसंग बिन शुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी॥
मध्यम अंतर आतम हैं जे, देशव्रती आगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वै विध, तिनमें घातिनिवारी।
श्रीअरहंत सकल परमातम, लोकालोकनिहारी॥ ५॥

जीव (आत्मा) तीन प्रकारके हैं, बहिरात्मा, अंतरात्मा, और परमात्मा। जो शरीर और आत्माको एक ही जानैं सो तौ तत्त्व

विचारमें मूढ़ वहिरात्मा है और अंतरात्मा उत्तम मध्यम जघन्यके भेदसे तीन प्रकारका है। इन तीनोंमेंसे वाह्य अभ्यंतर दो प्रकार के परिग्रहरहित शुद्धोपयोगी आत्मध्यानी मुनि तौ उत्तम अंतरात्मा हैं। और—जो देशव्रती गृहस्थ हैं वे मध्यम अंतरात्मा और अव्रत सम्यग्दृष्टी जघन्य अंतरात्मा हैं। ये तीनों ही अंतरात्मा जीव मोक्षमार्गमें चलनेवाले हैं॥

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल,—वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै॥
परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनंद पूजै॥ ६॥

परमात्मा सकल निकल भेदसे दो प्रकारका है। घातिया कर्मोंको नष्ट करके लोक अलोकको देखनेवाले सर्वज्ञ अरहंत भगवान तौ सकल परमात्मा हैं। और ज्ञानमय शरीरवाले तीन कर्म मल (द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म) रहित सिद्ध भगवान् निकल परमात्मा हैं जो कि अनंत सुखोंके भोक्ता हैं। हे भाई! बहिरात्मापनको (मिथ्यात्वको) हेय (त्यागने योग्य) जान कर छोड़ दे और अंतरात्मा होकर परमात्माका नित्य ध्यान कर जिससे तुझे अविनाशी आनंदकी प्राप्ति हो॥ ६॥

चेतनता बिन सो अजीव है पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस पन गंध, दु फरस वसु जाके हैं॥
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्त्ति निरूपी॥ ७॥

सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वरतना निस दिन सो, व्यवहार काल परिमानो॥
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय पर,—माद सहित उपयोगा॥८॥
ये ही आतमके दुख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बंधै विधिसों, सो बंधन कवहु न सजिये॥
शमदमसौं जो कर्म न आवै सो संवर आदरिये।
तपबलतैं विधिझरण निरजरा ताहि सदा आचरिये॥ ९॥
सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिवतियसुखकारी।
इहविधि जो सरधा तत्त्वनकी सो समकित व्योहारी॥
देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकितको कारन, अष्ट अंगजुत धारो॥ १०॥

जिसमें चेतनता नहीं सो अजीव है। अजीवके पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और कालके भेदसे पांच भेद हैं। पहिला भेद—पुद्गलमें पांच रंग हैं पांच रस (स्वाद) दोय गंध और आठ प्रकारका स्पर्श है इस प्रकार सब मिलकर बीस गुण हैं। जीव पुद्गलको चलनेमें सहयता करे उसे धर्म द्रव्य और ठहरनेमें सहाय करे उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। ये दोनों द्रव्य अरूपी हैं। आकाश द्रव्य दो प्रकारका है जिसमें समस्त द्रव्योंका वास हो उसे लोकाकाश कहते हैं और लोकसे बाहर अलोकाकाश है। काल द्रव्य भी दो प्रकारका है समस्त द्रव्योंका परिवर्त्तन करै सो तो निश्चय काल है। इस द्रव्यका एक एक

कालाणु लोकाकाशके एक एकप्रदेशमें रत्नोंकी राशिके माफक भरा है और घड़ी पल मिनट वगेरहको व्यवहार काल कहते हैं।

मन वचन काय इन तीनोंका चलना सो योग है। इन्हीं योगों से कर्मोंका आना सो आस्रव है और मिथ्यात्व, अविरत (व्रत न पालना) क्रोधादि कषाय और प्रमादसहित आत्माके भाव हैं इन्हींके द्वारा आत्माके साथ कर्मोंका एकमेक होना सो बंध है। ये भाव ही दुःखके (बंधके) कारण हैं इस कारण इनको छोड़ कर कर्मबंधसे बचना चाहिये। शम दमादिसे अर्थात् समताभाव और इन्द्रियोंके दमनसे आस्रव (आते हुये कर्म) रुकते हैं इसीको संवर तत्त्व कहते हैं। तपके प्रभावसे कर्मोंका एक देश झडना सो निर्जरा है इस कारण तपका आचरण करना चाहिये। समस्त कर्मोंसे रहित होना सो स्थिर सुखकारी मोक्ष तत्त्व है। इस प्रकार सात तत्त्वोंका श्रद्धान करना सो व्यवहार सम्यक्त्व है। इसके सिवाय सत्यार्थ जिनेंद्र देव, चौवीस परिग्रहरहित गुरु और दयामय धर्मका श्रद्धान करना भी व्यवहार सम्यक्त्व है सो आठ अंगसहित यह सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) धारण करना चाहिये।

वसुमद टारि निवारि त्रिसठता, षट अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेप हु कहिये।
बिन जानेतैं दोष गुननको, कैसैं तजिये गहिये॥ ११॥

आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और आठ शंकादि दोष इस प्रकार २५ दोषोंको दूर करके प्रशम संवेग अनुकंपा

और आस्तिक्य गुणोंको चित्तमें धारण करो। अब आठ अंग और २५ दोषोंको संक्षेपसे कहा जाता है क्योंकि दोष गुणोंको विना जाने त्याग वा ग्रहण करना नहीं हो सक्ता॥

जिन वचमें शंका न धारि वृष, भव सुख वांछा भानै।
मुनि तन मलिन न देख घिनावैं, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निजगुन अर पर अवगुन ढांकें, वा निजधर्म वढावें।
कामादिककर वृषतें चिगते, निजपरकों सु दृढावें॥ १२॥
धर्मीसों गउवच्छ प्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावैं।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय, न तौ मद ठानै।
मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन वलको मद भानै॥ १३॥
तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै।
मद धारै तौ ये ही दोष वसु, समकितको मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवककी, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन मुनि जिन श्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है॥

जिन भगवानके वचनोंमें संशय नहिं करना सो निःशंकित अंग है १, सांसारिक सुखोंकी वांछा न करना सो निःकांक्षित अंग है २. मुनि वा अन्य सम्यग्दृष्टि धर्मात्माके शरीरको मैला देखकर घृणा नहिं करना सो निर्विचिकित्सित अंग है। ३, खोटे खरे तत्त्वोंकी पहचानमें मूढ़ता (निर्विचारता) न रखना सो अमूढ़ दृष्टि अंग है ४, अपने गुण और परके दोष ढके या अपना धर्म वढ़ावे सो उपगूहन अंग है. ५, कामादिकके कारण

धर्मसे डिगते हुये निजपरको स्थिर कर देना सो स्थितिकरण अंग है ६, धर्मात्माओंसे गौ वछरेकीसी प्रीति करना सो वात्सल्य अंग है, ७, और जिस प्रकार बने उस प्रकारसे जैनधर्मका महत्त्व (माहात्म्य) प्रगट करना सो प्रभावना अंग है। ये सम्यक्त्वके आठ अंग हैं इनसे उल्टे ८ शंकादि दोष हैं। इन दोषोंसे हमेशह दूर रहना चाहिये। अब आठ मद कहते हैं—पिता राजा या बड़ा ओहदेवाला प्रतिष्ठित हो तो उसका गर्व करना सो कुल मद है १, इसी प्रकार मामा नानाके अधिकारका गर्व करना सो जाति-मद है २, अपने रूपका घमंड करना सो रूपमद है ३, अपनी विद्या वा पंडिताईका मद करना सो ज्ञान मद है ४, धनका घमंड करना सो धनमद है ५, बलका घमंड करना सो बलमद है ६, अपने तप करनेका घमंड करना सो तप मद है ७, अपनी प्रभुताका मद करना प्रभुता मद है ८, ये ८ मद भी दोष हैं ये सम्यक्त्वको दूषित करते हैं इस कारण इनको भी छोड़ देना चाहिये इसके सिवाय कुगुरु कुदेव कुधर्म तथा इन तीनोंको सेवन करने वाले ये छह अनायतन हैं। इन छहोंकी प्रशंसा करना वा मानना सो छह दोष हैं। तथा कुगुरु कुदेव कुशास्त्रोंको नमस्कार करना सो तीन मूढता है। इस प्रकार आठ शंकादि दोष, आठमद, छह अनायतन और तीन मूढता इन सबको मिला कर पच्चीस दोष होते हैं॥

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक दरश सजै हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥

गेही, पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है।
नगर नारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥ १५॥

जो सुधी उपर्युक्त पच्चीस दोष और आठ अंग सहित सम्यग्दर्शनसे अपनेको शोभित करते हैं वे यद्यपि चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे कुछ भी संयम धारण नहिं करते तौ भी उनको इंद्रगण नमस्कार करते हैं। यद्यपि वे घरमें रहनेवाले गृहस्थी हैं परंतु घरमें मग्न (लीन) नहिं होते जिस प्रकार कमल जल को नहिं छूता उसी प्रकार घरके कार्योंसे उदासीन रहते हैं। घर में उनकी जो प्रीति है वह वेश्याकी तरह अस्थिर प्रीति है। अथवा कीचड़में पड़े हुये सोनेकी तरह निर्मल ही रहते हैं॥ १५॥

प्रथम नरक विन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षंड नारी।
थावर विकल त्रय पशुमें नहिं, उपजत सम्यक धारी॥
तीन लोक तिहूं काल मांहि नहिं, दर्शनसो सुखकारी।
सकल धरमको मूल यही इस, विन करणी दुखकारी॥ १६॥
मोखमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा॥
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहिं होवै॥

सम्यकधारी जीव—पहिले नरक विना शेष छह नरकोंमें, ज्योतिषी भवनवासी और व्यंतरदेवोंमें, स्त्री पर्यायमें, स्थावर एकेंद्रियोंमें तथा द्वीन्द्रिय, तेइंद्रिय, चतुरिंद्रिय इन विकलत्रय जीवोंमें, और पशुओंमें पैदा नही होता। सम्यक्त्वके समान

तीनलोक तीनकालमें अन्य कोई सुखकारी नहीं है। समस्त धर्मों का मूल यही है इसके विना जितनी क्रियायें या चारित्र है वह दुखकारी है। मोक्षमहलकी यह पहिली सीढ़ी (पैड़ी) है। इस सम्यग्दर्शनके विना ज्ञान और चारित्र सम्यग्ज्ञान वा सम्यक्चारित्र नहिं होता। इस कारण हे भव्य पुरुषो ! इस सम्यग्दर्शनको पवित्र (निर्दोष) धारण करो। दौलतरामजी कवि कहते हैं कि-हे सयाने ! इस वातको समझ कर सुन और शीघ्र ही चेतजा वृथा काल मत गमा। यदि इस भवमें सम्यक्त्व नहिं होगा तो फिर यह नर भव मिलना अत्यंत कठिन है ॥ १७ ॥

४२. वर्द्धमान भगवान और दीपमालिका।

——:o:——

वर्द्धमान भगवान हमारे चौवीस तीर्थंकरोंमेंसे अंतिम तीर्थंकर हैं इनके महावीर, सन्मति, वीर जिन आदि नाम हैं।

इसही आर्यखंडके—भरतक्षेत्रमें विदेह नामका देश सत्य धर्मोपदेष्टा मुनिसंघादिकोंसे परिपूर्ण विदेहक्षेत्रके समान शोभता है जहांसे जीवात्मा निरंतर देहरहित हो मोक्षधाम प्राप्त करते हैं। जहां पदपदमें तीर्थंकर व केवलियोंकी निर्वाणभूमियां दिखलाई देती हैं। जिनकी वंदना करनेको मनुष्य, देव व विद्याधर आया जाया करते हैं। इसी विदेह देशमें वह सम्मेदाचलपर्वत भी है जो अनंत तीर्थंकरों व केवलियोंकी निर्वाणभूमि हो गई है और रहेगी। इसीको भूगोलमें पार्श्वनाथहिलके नामसे लिखा गया है।

इस धनधान्यपूरित विदेह देश (वर्तमान विहार) के भीतर मध्यभागमें कुंडपुर (वर्तमान कुंडलपुर) नगर, देहमें नाभिके समान शोभायमान है। यह उस समय धर्मात्माओंसे भरा हुआ था। यहां बड़े ही सुंदर नर नारी समान गुणोंके धरनेवाले देवों के समान ऊंचे २ महलोंमें निवास करते थे। कुंडलपुर एक छोटा ग्राम न था परंतु एक बडा भारी नगर था।

इस नगरके रक्षक राजा श्रीसिद्धार्थ थे—यह हरिवंशरूपी आकाशके सूर्य, काश्यपगोत्रधारी, मति, श्रुति, अवधि तीन ज्ञान के स्वामी, नीतिमार्ग पर चलनेवाले, श्रीजिनेंद्रके भक्त, महादान के कर्त्ता, तथा परम मनोहर लक्षणोंसे शोभायमान थे। इनके वंशको नाथवंश भी कहते थे।

इनकी अर्द्धाङ्गिनी अपने पतिकी परमप्रिय, जिनधर्मभक्त, परम गुणवती श्रीप्रियकारिणी थी। जिसको त्रिशला भी कहते हैं।

पतिपत्नी गृहस्थधर्मको सेवन करते हुए व नीतिसे प्रजाकी रक्षा करते हुए सच्चे हार्दिक प्रेमसे जीवन विताते थे। जिसके कारण इन गृहशीलधारिकाओंको श्रीमहावीरस्वामी ऐसे महावीर पुत्रका लाभ हुआ। जब बड़े भारी पुण्यशाली जीव माताके गर्भ में आते हैं तब माताके पुण्योदयसे शुभकर्मोदयसूचक शुभस्वप्न होते हैं। एक दिन पिछली रात्रिको श्रीप्रियकारिणीने १६ स्वप्न देखे–प्रातःकाल उठ सामायिक पूजनादि नित्यक्रिया कर राजा सिद्धार्थकी सभामें सखियोंको साथ ले, गई। राजा अपनी धर्म-

सहायिनी परममित्राको सभामें आते हुए देख सन्मान सहित मिष्टवचन बोल अर्द्धासन दे आप बैठे।

प्रियकारिणीने मुदितमनसे सोलह स्वप्नोंका हाल कहा और प्रश्न किया कि महाराज ! इन स्वप्नोंका क्या फल प्राप्त होगा राजा सिद्धार्थ थोड़ी देर ठहर अवधिज्ञानसे विचार कहने लगे कि—हे प्रिये ! तुमने हाथी देखा उसका फल यह है कि तुम्हारे तीर्थंकर पुत्रका जन्म होगा, बैल देखनेसे वह जगत्का ज्येष्ठ महाधर्मरूपी रथका चलानेवाला होगा, सिंह देखनेसे अनंतवीर्य का धारी कर्मरूपी हाथियोंके यूथका घातक होगा, लक्ष्मीदेवीका अभिषेक देखनेसे इस पुत्रका जन्माभिषेक इन्द्रादिकदेव सुमेरु-पर्वतके ऊपर करेंगे. दो पुष्पमाला देखनेसे इसका देह अतिसु-गंधित होगा और यह सत्यधर्मके ज्ञानका फैलाने वाला होगा, पूर्ण चन्द्र देखनेसे बुद्धिमानोंके हृदयमें सद्धर्मरूपी अमृतका वर्षा करनेवाला होगा, सूर्यमंडल देखनेसे अज्ञान अंधकारका नाशक परमतेजःपुंज होगा, दो कुम्भ देखनेसे तीन ज्ञानका धारी ज्ञान ध्यानरूपी अमृतका धारक होगा, दो मत्स्य देखनेसे आप महासुखी और विश्वको सुखकर्ता होगा, प्रफुल्लित कमल युक्त सरोवरके देखनेसे मनोहर लक्षण और चिन्होंसे शोभित होगा, गंभीर समुद्र देखनेसे नवकेवललब्धिधारी केवलज्ञानी होगा, सिंहासन देखने से साम्राज्य पदके योग्य जगत्का गुरु होगा, स्वर्गका विमान देखनेसे उसका आत्मा स्वर्गसे आकर जन्म लेगा, नागेन्द्रका भवन देखनेसे वह अवधिज्ञानधारी होगा, रत्नराशि देखनेसे व्रत आदि रत्नोंका स्वामी होगा तथा अग्नि देखनेसे कर्म मलको जलावेगा।

अपने प्रिय पतिके परम मंगलकारक शब्द सुन प्रियकारिणीका हृदयकमल प्रफुल्लित हो गया । शरीर रोमांचित हो आया आंख में आनंदके अश्रुपात भर आए। आषाढ़ सुदी ६ उत्तराषाढ़ नक्षत्र में श्रीवीरस्वामीका जीव सोलहवें अच्युतस्वर्गमें देव पर्यायको समाप्त कर, माता प्रियकारिणीके गर्भमें आया जैसे सीपके भीतर जलबिंदु रहता है इस तरह गर्भमें रहते हुये माताको कुछ भी दुःख न हुआ।

जिस समय यह पुण्याधिकारी गर्भमें थे। देवियां माताकी सेवा करती थीं तथा नानाप्रकार सुन्दर २ कथाओंसे माताको प्रसन्न करतीं व प्रश्न करके उत्तर लेतीं थीं। हजारों मनोहर सवालोंके जवाब माता अपने ज्ञानबलसे तुरंत देती थी । इसीके प्रमाणमें दो श्लोक दिये जाते हैं-

किं ध्येयं धीमतां लोके ध्यानं च परमेष्ठिनां ।
जिनागमं स्वतत्त्वं वा धर्म्यं शुक्लं न चापरं ॥ २७ ॥

के चौराः दुर्द्धराः पुंसां धर्मरत्नापहारिणः ।
पंचाक्षाः पापकर्त्तारः सर्वानर्थविधायिनः ॥ ५० ॥

भावार्थः-प्रश्न-इस लोकमें ध्यान करने योग्य क्या है ? उत्तर पंच परमेष्ठीका ध्यान, जिनागम, आत्मतत्त्व व धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान, अन्य नहीं । मनुष्योंके सबसे भारी चोर कौन हैं— उत्तर-धर्मरूपी रत्नके हरनेवाले व सर्व प्रकार अनर्थके कर्ता, पाप के कारण पंचेन्द्रियोंके विषय हैं । इस प्रकार सहजहीमें अनुमान ९ मासके पूर्ण हुए और परम शोभित प्रसूति-गृहमें मिती चैत्र

सुदी १३ के दिन श्रीतीर्थंकर महाराजका जन्म हुआ। सुवर्ण रंग धारी, परम दीप्तिमान, वज्रके समान हड्डी, वेष्टन और कीलोंको रखनेवाले परम सुडौल सांचेमें ढले कांतियुक्तशरीर पूर्व दिशामें सूर्योदयके समान गर्भ स्थानसे उदय हुये। उसी समय इन्द्र देवों की सेना ले भक्तिके अर्थ आया और श्रीमहावीरस्वामीको ऐरावत हस्ती पर विराजमान कर सुमेरु पर्वत पर ले गया। वहां उसने क्षीरसमुद्रके निर्मल जलसे स्नान कराया और बड़ा भारी उत्सव किया। तथा वालकका नाम वीर और वर्द्धमान रक्खा गया। अर्थात्—कर्मरूपी शत्रुओंको नाश करेगा इसलिये वीर तथा गुणोंकी वृद्धिका आश्रय होनेसे श्रीवर्द्धमान नाम रक्खा।

इन्द्रने सुमेरुसे ला मातापिताकी गोदमें प्रफुल्लित वदन वालकको सौंपा तब माताने जन्मोत्सव किया—बहुत दान दिया।

महावीर बाल्यवस्थामें रंजित मुख चंद्रके समान अन्य निज-वयस्क राजपुत्रोंके साथ क्रीड़ा करते बढ़ते हुये। जैसे और वालकों को पांच वर्षकी उम्रमें अक्षर प्रारंभ और आठ वर्षकी उम्रमें गुरु के पास उपासकाध्ययनादि ग्रंथ पढने पड़ते हैं। उस तरह विद्या पढनेकी श्रीमहावीर वालकको कोई जरूरत नहीं हुई थी क्योंकि पूर्व संस्कारके बलसे श्रीमहावीर जन्मसे ही मति श्रुत तथा अवधि इन तीन ज्ञानके धारी थे, जिससे उनके ज्ञानके वाहर कोई शास्त्रीय विद्या ऐसी न थी. जिसे वह पढकर जानें। इससे वे किसीके शिष्य नहीं हुए। जन्महीसे सम्यक्त्वके धारी थे। इससे आत्मा और परका भेदविज्ञान विद्यमान था। अपने आत्माको शुद्ध निश्चय से परमानंदमय ज्ञाता दृष्टा अनुभव करते थे तथा अतींद्रिय व

स्वाधीन आनंदको ही सुख निश्चय करते थे। इसी कारण आठ वर्षकी ही उम्रमें स्वामीने गृहस्थ योग्य द्वादशव्रत अपने आप धारण कर लिये और तबसे श्रावक धर्मको पालने लगे।

श्रीमहावीर कुमार अवस्थाहीमें बड़े वीर निर्भय और साहसी थे। एक दफे सौधर्म इन्द्रने अपनी सभामें स्वामीके बलकी प्रशंसा की। संगम नामक एक देवको विश्वास न हुआ। वह परीक्षा करनेके लिये एक बड़े भारी काले नागके रूपमें आया और जहां राजकुमारोंके साथ श्रीमहावीर खेल रहे थे, वहां जाकर जिस वृक्षपर कुमार चढ़े थे उसको लिपट गया। अन्य सब राजकुमार भयभीत हो वृक्षसे कूद कर भागे परंतु वीर कुमारको कुछ भी भय न हुआ, किंतु उस सर्पको पकड़ कर उसके साथ तरह २ की क्रीड़ा करने लगे। इनके इस तरहके बलको देख वह देव अति प्रसन्न हुआ और बहुत भांति स्तुति कर स्वर्गलोक गया।

सम्यक्त्व और व्रतकी महिमासे पूर्ण उदासीनचित्त महावीरका मन गृहजालमें उसी तरह ठहरता हुआ जिस तरह एक कमलका पुष्प सरोवरमें ठहरता है। सामायिकद्वारा नित्य सिद्धोंका ध्यान करते, वे आत्म-अनुभव करते व गृहस्थावस्थामें माता व कुटुंबियोंको आनंदित करते व राज्यकार्य देखते व मित्रोंसे उत्तम गोष्ठी करते हुये स्वामीने ३० वर्ष बिता दिये और विवाह करनेकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। कुमार अवस्थाहीमें पवित्र जीवन बिताया।

एक दिन काललब्धि आने और चारित्र मोहनीय कर्मके विशेष क्षयोपशम होनेपर श्रीमहावीरस्वामी स्वयं विचार

करने लगे। अर्थात् अवधिज्ञानसे स्वामीने यह विचार किया कि-मैंने इस अनादि संसारमें भील, मारीच, राजपुत्र तिर्यंच नरक आदिके करोडों भव धारण किये हैं और परिभ्रमण किया है। कहीं पर भी सारता न देख समस्त भोगादि वस्तुओंमें उत्कृष्ट वैराग्यको प्राप्त हुये और मनन करते हुये कि-अहो! मुझ मूढ़के इतने दुर्लभ दिन इस जगतमें विना महाव्रतके यों ही चले गये। यह भी एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि मैंने इस भवमें तीन ज्ञानका धारी व आत्मज्ञानी होकर भी घरमें रहकर विना संयमके धारण किये इतने दिन वृथा ही खो दिये। जो लोग ज्ञान पाकर निर्दोष तपका आचरण करते हैं उन्हींका ज्ञान सफल है, दूसरोंके लिये ज्ञानाभ्यासादि मात्र क्लेशरूप ही है। अज्ञानपूर्वक किया हुआ पाप तत्त्वज्ञानसे नष्ट होता है परंतु ज्ञानपूर्वक किया हुआ पाप यहां किस तरह नष्ट हो। ऐसा जानकर ज्ञानवानोंको कोई भी पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि मोहसे दुर्द्धर राग और प्राण जानेपर भी मोहादि निंद्यकर्मरूप द्वेष उत्पन्न होते हैं। जिनके वश होकर यह प्राणी महाघोर पाप कर लेता है और पापसे चिरकाल दुर्गतिमें दुःख पाता है। ऐसा जानकर ज्ञानियोंको उचित है कि पहले प्रगट वैराग्यरूपी खड्गसे सर्व अनर्थके कारण दुष्ट मोहरूपी शत्रुओंका संहार करें।

अहो! इस मोहका जीतना गृहस्थियोंसे नहीं हो सकता इसलिये पापके समान गृहके बंधनको भी दूरसे छोड देना चाहिये। वे ही इस जगतमें पूज्य महान और धैर्यवान हैं—जो युवा अवस्थामें दुर्जय कामरूपी शत्रुको अच्छी तरह नाश कर डालते हैं।

क्योंकि यौवनसे कामादिभाव बढ़ते हैं और पांच इन्द्रियरूपी चोर परम विकारको प्राप्त हो जाते हैं। राज्यलक्ष्मीके सदृश गृहवासको कैदखानेके समान जानकर स्वामीने इसको त्यागकर तपोवनमें जानेका दृढ निश्चय किया।

दृढ़ निश्चय करके भगवान अपने माता, पिता आदि संबंधियों से मोह हटा अपने आत्मामें स्थिर हो, अपना स्वरूप अनुभव करने लगे-और वैराग्यकी माता-संवरके कारण १२ भावनाओं का चिंतवन करने लगे--अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा. लोक, बोधिदुर्लभ, और धर्म इनका भिन्न २ प्रकारसे स्वरूप विचारते हुए, वैराग्यरसमें भीज गए और इस शरीरसे स्वरूप सिद्धिका ही निश्चय किया। कि—"यदि इस अपवित्र शरीरसे पवित्र गुणोंके समूह केवल ज्ञान केवलदर्शनादि सिद्ध हो सके हैं तब इस कार्यके करनेमें विचार ही क्या करना।

वश! आप उद्यमी होगए-लौकांतिक देव पांचवें ब्रह्मस्वर्गसे आकर आपकी अति प्रशंसा करने लगे—इन्द्रादिक देव आए— अति मनोहर पालकीमें प्रभुको विराजमान किया-भूमिगोचरी व विद्याधर राजा तथा इन्द्रादिक देव सर्व मिलके प्रभुकी सवारी राज्यांगणसे लेकर बडे जलूसके साथ नगर बाहर जाते हुए। नगरके नरनारी देख कर अति आश्चर्य करने लगे कि धन्य हैं कुमार, इन्होंने विना विवाह कराये व राज्य किये ही तपधारणका संकल्प कर लिया। राजा सिद्धार्थ त्रिज्ञानी थे-ऐसा ही होनेवाला था। ऐसा विचार कर शांतिसे चुप रहे। परंतु माता प्रियकारिणि

को मोहकर्मका तीव्र उदय हो आया और अनेक बंधु व सखियों के साथ रोती हुई पालकीके पीछे २ दौड़ती हुई चल पड़ी।

माताको विह्वलचित्त और नगरके वारह तक आते हुए देख जलूसके संगमें जो महान पुरुष थे उन्होंने इस तरह समझाया।

हे देवी! क्या तू जगत् गुरु अपने पुत्रका चरित्र जानती है? यह तीन जगतका गुरु अद्भुत पराक्रमी है। यह आत्मज्ञानी तीर्थंकर संसार समुद्रमें गिरते हुये अपने आत्माको पहले उद्धार करके उसके वाद वहुतसे भव्य जीवोंका उद्धार करेगा। हे शुभे! तेरे पुत्रका संसार अति ही निकट रह गया है, यह जगत को तारने समर्थ है सो दीन पुरुषकी नाई किस तरह घरमें प्रेम कर सकता है।

इन वचनोंने माताके परिणामोंको बदलदिया। उसका शोक सारा जाता रहा और संसारका स्वरूप विचार अति धर्मानुराग सहित धर्मको हृदयमें रखती हुई बंधुवर्ग और सखियों सहित अपने मंदिरको लौटी।

भगवानकी पालकी वनखंड नामके वनमें पहुंची वहां प्रभुने एक स्फटिक शिला पर विराजमान हो अपने वस्त्राभूषण सर्व उतार दिये और "ओं नमः सिद्धेभ्यः" कह सिद्धोंको नमस्कार कर अपनी ही मुट्ठियोंसे अपने केशोंको घासकी तरह उपाड़ डाला और नग्न वालकके समान मुद्रा धार तेरह प्रकार चारित्र मिती मार्गशीर्ष वदी १० के दिन धारण कर लिया।

उस समय भगवान ताये हुये सुवर्णके समान शरीरकी प्रभा को धरनेवाले, जन्म समयके नग्नरूप धारी, स्वभावसे ही अति-

कांति और दीप्ति सहित तेजकी राशिके समान प्रकाशित होते हुए। स्वामी मुनिधर्मकी क्रियाओंको पालते हुए विहार करते हुए। प्रथम आहार कूलके स्वामी कुलाभिध राजाने दिया। दान लेते समय वीतराग हृदयके धरनेवाले तीर्थंकर वर्द्धमान रागादि भावोंको दूरसे ही त्याग करके हाथोंको ही पात्र करके खडे हुये।

दीक्षा लेनेके बाद प्रभु आहारादिकी अति तुच्छ कामना करते हुए शक्तिके अनुसार अपने आत्मध्यानमें मग्न होगये। उपदेश देनेकी भी प्रवृत्ति छोड रात्रि दिन आत्मसमुद्रमें ही स्नान करते हुए—कभी २ गावोंमें जाकर शुद्ध आहार ग्रहण करते हुए।

प्रभुने एकाकी विना किसी वाहनके पैदल अनेक देश शहर ग्रामों में विहार किया जिससे निस्पृहता रहै और ध्यानकी सिद्धि होसके।

विहार करते करते आप एकदफे मालवाकी उज्जैनी नगरी के वाहर स्मशान भूमिमें जा आत्मध्यानमें तल्लीन हो गए—उज्जैनी में ११ वें रुद्र स्थाणु निवास करते थे—इनकी ही स्त्रीका नाम पार्वती था। ये पहिले बहुत बड़े तपस्वी थे। जब इनको मंत्रादि विद्याएं सिद्ध होगईं तब ये कामाशक्त हो विचलित हो गए और स्त्रियोंमें अनुरक्त हो रहने लगे। स्मशानमें श्रीमहावीरस्वामीको परम सुन्दर यौवनवान ध्यानमग्न देखकर आप विचार करते हुए कि ऐसे पुरुषका मन कितना ध्यानमें दृढ है इस बातकी परीक्षा करना योग्य है। बस! आप अपनी विद्याके बलसे नाना-प्रकारके उपसर्ग करने लगे—सर्पों और विच्छुओंका डसना,

धूल, मिट्टीपानीका वरसना, विजलीका कड़कना, स्त्रियोंका हाव भाव, शृंगार दिखाना, डांस मच्छरोंका काटना, पिशाचोंका नाचना आदि—घंटों तक स्थाणुने अनेक उपाय किये कि किसी तरह प्रभुका मन ध्यानसे चलायमान करें और उनके क्रोधादि पैदा हो जावे। परंतु जैसे सुमेरु पर्वतको वज्रके आघात किसी भी प्रकारकी हानि या वाधा नहीं करसक्ते इसीतरह श्रीमहावीर के चित्तको यह उपसर्ग क्षोभित न करसका। उन्होंने अपने आत्माको अजर, अमर, अविनाशी, अच्छेद्य अनुभवकर शरीर की क्रियाओंको पुद्गलकी क्रिया जान कुछ भी क्षोभ न किया। स्थाणु अपनी परीक्षामें हार गया—हाथ जोड मस्तक नमा खड़ा हो गया और अनेक प्रकार वीनती कर क्षमा मांगता हुआ— श्रीगुरुने उत्तम क्षमा धर्मकोही स्थिर रक्खा।

प्रभु नगरके बाहर ५ दिन और ग्रामके बाहर तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते थे। यहांसे विहार करते २ आप कौसांवी नगरीमें पधारे। यहाँ एक सेठ वृषभसेन बहुत धनी था उसके वशीला नगरीके राजा चेटककी कन्या अति गुणवती पतिव्रता चंदना सती पुत्रीके भावमें निवास करती थी। उसको अति रूपवान जान एक विद्याधर विमानमें बैठ कर आकाशमार्गसे ले गया था। पीछे इस कामको अति निंद्य समझ उसे वनमें छोड गया था। वही सती अपने शीलकी रक्षा करती हुई कौसांवी नगरीमें आई। वहां इस सेठने दया करके रक्षित किया। परन्तु इसकी स्त्री समुद्राने यह आशंका कर कि सेठजी इसे स्वस्त्री बनाना चाहते हैं इसको अपने कुटुम्बसे अलग मकानमें रख

दिया और नित्य प्रति दले हुये कोद्रों व जलही भोजनको भेजना शुरू किया। यह श्राविकाके षट् कर्म देवपूजा गुरु उपास्ति स्वाध्याय, संयम तप, और दानमें चतुर थी। दान देनेके अर्थ नित्य मध्याह्नकालके पूर्व द्वारापेक्षण करती थी। पुण्ययोगसे श्रीवर्द्धमान स्वामी उधर ही आ निकले। सतीने अति नम्र हो आहार पानी शुद्ध 'अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ' तीन बार कहा। स्वामी उसी ओर बढे, आंगणमें गये। सतीने नवधाभक्ति सहित उसी कोद्रों और जलका आहार स्वामीको दिया। स्वामीके पुण्यके प्रतापसे कोद्रोंके पुद्गल खीरके रूपमें परिणत होगये।

निरन्तराय आहार होनेसे देवोंने रत्नादिकी वृष्टि की। सती चंदनाके दानकी अति महिमा विस्तरी। उसने आजन्म कुमारिका रहनेका निश्चय किया। श्रीवर्द्धमानस्वामीने इस तरह ध्यानका अभ्यास करते हुये १२ वर्ष पूर्ण किये।

तत्पश्चात् विहार करते हुए प्रभु मिती वैशाखशुक्ल १० अपराह्नके समय जंभिका ग्रामके वाहर ऋजुकूला नदीके तट पर शालभू वृक्षके नीचे आकर ध्यानमें मग्न हो गये। छठे, सातवें गुणस्थानसे सातिशय अप्रमत्त हो क्षपकश्रेणी चढे। अंतर्मुहूर्त्त में आठवे, नवमें, १० वें गुणस्थान चढ़ संपूर्ण मोहनीय कर्मको नाश किया। फिर १२ वें गुणस्थानमें अंतर्मुहूर्त्त ठहरकर ज्ञानावरणी दर्शनावरणी और अंतरायका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय भगवान सर्वज्ञ वीतराग जीवनमुक्त परमात्मा हुए। अनंत ज्ञान, दर्शन वीर्य और अनंतसुखके स्वामी हो गये।

इन्द्रादि देवोंने समवशरण रचा उसमें प्रभु अंतरीक्ष सिंहा-

सन पर उच्च विराजे। भगवत्‌के दर्शनार्थ विदेह देशमें प्रसिद्ध इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति, नामके बड़े दिग्गज ब्राह्मण पंडित अपने सैकडों शिष्योंको लेकर आये और प्रभुके शिष्य (जैन) हो गये। श्रीप्रभुके शिष्य २८००० मुनि और ३६००० अर्जिकाएं तथा एकलाख श्रावक व तीन लाख श्राविकाएं थीं। इन सबमें मुख्य इन्द्रभूति हुये जिनका प्रसिद्ध नाम गौतमस्वामी था तथा सुधर्माचार्य, वायुभूति अग्निभूति आदि ११ गणधर हुये। बहुतसे मुनियोंके संघोंके स्वामीको गणधर कहते हैं। तथा अर्जिकाओंमें मुख्य सती चंदना हुई। श्रीभगवानका दिव्य उपदेश जीवोंके पुण्य के उदयसे दिनरातमें चार वार छः छः घडीके लिये धाराप्रवाही मेघकी ध्वनिके समान होता था। इस उपदेशको मनुष्य, स्त्री, पशु, देव, देवी, समस्त १२ सभाओंमें बैठकर अपनी अपनी भाषासे सुनते थे। श्रोताओंमें मुख्य राजगृह नगरका स्वामी राजा श्रेणिक था। प्रभुने ३० वर्ष तक अनेक देशोंमें इसी तरह धर्मोपदेश करते हुये विहार किया और सब जगहोंमें हिंसाका प्रचार बन्द कराया।

अनेकोंने मिथ्यात्व त्यागा और सम्यग्ज्ञानका लाभ किया। प्रभुकी दिव्यध्वनिमें जो सारगर्भित उपदेश हुआ था। उसको गौतमस्वामी गणधरने आचारांग आदि द्वादश प्रकारके महान ग्रंथोंमें रचा। उन्हींका कुछ अंश आधुनिक प्राप्त ग्रंथोंमें उपलब्ध हैं। श्रीप्रभु कार्तिक वदी अमावस्याके प्रातः काल विहार देशके पावापुरीके वनसे शुक्लध्यान द्वारा अघातिया कर्मोंका नाश कर मुक्तिधाममें चले गये। अपने साध्यकी सिद्धि करके परमात्मपद

का लाभ किया। शरीरको छोड़ते ही क्षणमात्रमें शुद्ध आत्माने उसी ही ध्यानाकारको धारण किये हुए निर्वाण भूमिकी सीध-पर ही आकर लोकाग्रनिवास किया और अनंत कालके लिये परम सुखी हो गये।

वह स्थान जहांसे श्रीप्रभुने निर्वाण प्राप्त किया था सर्व जैनियों से अति माननीय और पूजनीय विहार स्टेशनसे ६ मील पोखर पुर (पावापुर) है। उस ग्रामके बाहर एक बृहत् सरोवरके मध्य में एक जिनमंदिर निर्मापित है जिसमें भगवानकी चरण पादुकाएं शोभायमान हैं। प्रतिवर्ष निर्वाणके दिन अर्थात् कार्तिकवदी अमावस्याको बड़ा भारी मेला होता है। कलकत्ता, आरा, छपरा व दूर दूरके अनेक यात्री दर्शन पूजनार्थ आते हैं।

जिस समय भगवान मोक्ष पधारे उसी दिन गौतमस्वामीको जिनको गणधरोंका ईश गणेश कहते हैं केवलज्ञानरूप लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई। इसप्रकार उस दिन इंद्रादिक देवोंने भगवानके शरीरका विधिपूर्वक अग्निसंस्कार करके निर्वाण लक्ष्मीकी पूजनकी जिसको मोक्षलक्ष्मी व महालक्ष्मी भी कहते हैं। उसी दिन मनुष्योंने दिन भर दान पूजन संयमादिपूर्वक निर्वाण महोत्सव और केवलज्ञान प्राप्तिका उत्सव किया और रात्रिको यत्नाचारसहित दीपोत्सव-पूर्वक नृत्य गीत भजनादि करते हुये रात्रिजागरण किया और घर घरमें नानाप्रकारके मंगलाचरण किये गये। उस दिनसे फिर प्रतिवर्ष भगवान्की स्मृतिके लिये इसीप्रकार ही भगवान् की निर्वाणपूजापूर्वक दीपोत्सवपर्व मानने लगे, जिसको दीपा-

वली और लक्ष्मी पूजन भी कहने लगे। उस दिनसे व्यापारी गण भी अपने यहां व्यापारिक नवीन वर्षका प्रारंभ मानने लगे, जिसको आज विक्रम संवत् १९७९ तक २४४७ वीं वर्ष चलता हुआ (जैनी लोग) मानते हैं। और दक्षिण भारतके गुर्जर महाराष्ट्र कर्णाटकादि प्रान्तोंमें अब भी वीर स्वामीके निर्वाण दिनके पश्चात्से अर्थात् दिवालीसे नवीन वर्षका प्रारंभ माना जाता है और गुजराती पंचांग भी इसी तिथिसे नवीन संवत् प्रारम्भ करते हैं। और हम लोग भी दीपमालिकाके दिन नैवेद्य बनाकर महावीर स्वामीकी निर्वाणपूजा प्रतिवर्ष करते रहते ही हैं।

——:०:——

४३. कर्मसिद्धांत।

आस्रवबंधका विवरण।

१३६। बंधके कारण आस्रव चार प्रकारके हैं। द्रव्यबंधका निमित्त कारण १, द्रव्यबंधका उपादान कारण २, भावबंधका निमित्त कारण ३, भावबंधका उपादान कारण ४।

१३७। कार्यकी उत्पादक सामग्रीको कारण कहते हैं। कारण दो प्रकारका है। एक समर्थ कारण दूसरा असमर्थ कारण।

---

१ जो लोग रुपये पैसेको लक्ष्मी मानकर पूजते हैं वे भूलते हैं।

२ यह २४४७ का हिसाब अभी तक सर्वजनसम्मत नहिं हुआ है।

१३८ । प्रतिबंधकका अभाव होनेपर सहकारी समस्त सामग्रियोंके सद्भावको समर्थ कारण कहते हैं । समर्थ कारणके होने पर अनंतर समयमें कार्यकी उत्पत्ति नियमसे होती है ।

१३९ । भिन्न भिन्न प्रत्येक सामग्रीको असमर्थ कारण कहते हैं । असमर्थ कारण कार्यका नियामक नहीं है ।

१४० । सहकारी सामग्री दो हैं । एक निमित्त कारण, दूसरा उपादान कारण ।

१४१ । जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप नहिं परिणमें, किंतु कार्यकी उत्पत्तिमें सहायक हों उनको निमित्त कारण कहते हैं जैसें घटकी उत्पत्तिमें कुंभकार, दण्ड, चक्र, आदिक ।

१४२ । जो पदार्थ स्वयं कार्य रूप परिणमै, उसको उपादान कारण कहते हैं । जैसें घटकी उत्पत्तिमें मृत्तिका । अनादिकालसे द्रव्यमें जो पर्यायोंका प्रवाह चला आ रहा है उसमें अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय उपादान कारण है और अनंतर उत्तरक्षणवर्त्ती पर्याय कार्य है ।

१४३ । कार्माण स्कंधरूप पुद्गल द्रव्यमें आत्माके साथ संबंध होनेकी शक्तिको द्रव्यबंध कहते हैं ।

१४४ । आत्माके योग कषायरूप भावोंको भाव बंध कहते हैं ।

१४५ । आत्माके योग कषायरूप परिणाम द्रव्यबंधके निमित्त कारण हैं ।

१४६ । बंध होनेके पूर्वक्षणमें बंध होनेके लिये सन्मुख हुये कार्माण स्कन्धको द्रव्यबंधका उपादान कारण कहते हैं ।

१४७। उदय तथा उदीर्णा अवस्थाको प्राप्त पूर्वबद्ध कर्म भाव वंधका निमित्त कारण है।

१४८। भाववंधके विवक्षित समयसे अनंतर पूर्व क्षणवर्ती योग कषाय रूप आत्माकी पर्याय विशेषको भाववंधका उपादान कारण कहते हैं।

१४९। द्रव्यवंधके निमित्त कारण अथवा भाववंधके उपादान कारणको भावास्रव कहते हैं।

१५०। द्रव्यवंधके उपादान कारण अथवा भाववंधके निमित्त कारणको द्रव्यास्रव कहते हैं॥

१५१। प्रत्येक प्रकृतिमें भिन्न भिन्न उपादान शक्ति युक्त आत्मासे संवंध होनेको प्रकृति वंध कहते हैं और उन ही स्कन्धोंमें फलदान शक्तिकी न्यूनाधिकता होनेको अनुभागवंध कहते हैं।

१५२। जिस प्रकार भिन्न भिन्न उपादान शक्तियुक्त नानाप्रकारके भोजनोंको मनुष्य हस्त द्वारा विशेष इच्छा पूर्वक ग्रहण करता है और विशेष इच्छाके समय उदर पूर्ण करनेके लिये सामान्य भोजनका ग्रहण करता है, उसी प्रकार यह जीव विशेष कषायके अभावमें योगमात्रसे केवल साता वेदनीयरूप कर्मको ग्रहण करता है परंतु वह योग यदि किसी कषायसे अनुरंजित हो तो अन्यान्य प्रकृतियोंका भी वंध करता है।

१५३। प्रकृतिवंधके कारणत्वकी अपेक्षासे आस्रवके पांच भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग।

१५४। मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे अदेवमें देवबुद्धि, अतत्त्व

में तत्त्व बुद्धि, अधर्ममें धर्मबुद्धि, इत्यादि विपरीताभिनिवेशरूप जीवके परिणामको मिथ्यात्व कहते हैं।

१५५। मिथ्यात्त्वके पांच प्रकार हैं–ऐकांतिक मिथ्यात्त्व, विपरीत मिथ्यात्व, सांशयिक मिथ्यात्त्व, आज्ञानिक मिथ्यात्त्व, वैनयिक मिथ्यात्त्व,।

१५६। धर्म धर्मीके "यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं" इत्यादि अत्यन्त अभिसन्निवेशको (अभिप्राय) ऐकान्तिक मिथ्यात्त्व कहते हैं। जैसे वौद्ध मतावलंवी पदार्थको सर्वथा क्षणिक मानता है।

१५७। सग्रंथ निर्ग्रंथ है, केवली ग्रासाहारी है, इत्यादि रुचिको विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

१५८। धर्मका अहिंसा लक्षण है या नहीं इत्यादि मतिद्वैविध्यको सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

१५९। जहां हिताहित विवेकका कुछ भी सद्भाव नहीं हो, उसको आज्ञानिक मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे पशुवधको धर्म समझना।

१६०। समस्त देव तथा समस्त मतोंमें समदर्शीपनेको वैनयिक मिथ्यात्व कहते हैं।

१६१। हिंसादिक पापोंमें तथा इंद्रिय और मनके विषयोंमें प्रवृत्ति होनेको अविरति कहते हैं।

१६२। अविरति तीन प्रकारकी है। अनंतानुवंधिकषायोदयजनित १, अप्रत्याख्यानावरणकषायोदयजनित २, और प्रत्याख्यानावरणकषायोदय जनित ३।

१६३। संज्वलन और नो कषायके तीव्र उदयसे निरतिचार चारित्र पालनेमें अनुत्साह होनेकी तथा स्वरूपकी असावधानता को प्रमाद कहते हैं।

१६४। प्रमाद पंद्रह प्रकारका है। विकथा ४ (स्त्री कथा, राष्ट्रकथा, भोजन कथा, राज कथा) कषाय ४ (संज्वलनके तीव्रोदय जनित क्रोध, मान, माया, लोभ,) इंद्रियोंके विषय ५, निद्रा एक और राग एक।

१६५। संज्वलन और नोकषायके मंद उदयसे प्रादुर्भूत आत्माके परिणाम विशेषको कषाय कहते हैं।

१६६। मनोवर्गणा अथवा काय वर्गणा (आहार वर्गणा तथा कार्माण वर्गणा) और वचन वर्गणाके अवलंबसे कर्म नोकर्मको ग्रहण करनेकी शक्ति विशेषको योग कहते हैं।

१६७। योग पंद्रह प्रकारका है—मनोयोग ४ सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभय मनोयोग, और अनुभय मनोयोग काय योग ७ (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, और कार्माण) वचन योग ४ (सत्य वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, और अनुभय वचन योग)

१६८। मिथ्यात्वकी प्रधानतासे सोलह प्रकृतियोंका बंध होता है। जैसे—मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसक वेद, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, जाति ४ एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण।

१६६। अनंतानुबंधि कषायोदयजनित अविरतिसे आगे लिखी पचीस प्रकृतियोंका बंध होता है। अनंतानुबंधि क्रोध, मान. माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यग् गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यगायु, उद्योत, संस्थान ४ (न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन) संहनन ४ (वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, और कीलित)।

१७०। अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरतिसे दश-प्रकृतियोंका बंध होता है। जैसे–अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति; मनुष्यगत्यानुपूर्वी. मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक आंगोपांग, और वज्रवृषभनाराच संहनन।

१७१। प्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरतिसे चार प्रकृतियोंका बंध होता है—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभका।

१७२। प्रमादसे छह प्रकृतियोंका बंध होता है, अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशः कीर्ति, अरति और शोकका।

१७३। कषायके उदयसे अठावन प्रकृतियोंका बंध होता है अर्थात् देवायु, निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेंद्रियजाति, तैजसशरीर, कार्माणशरीर, आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियकशरीर, वैक्रियक आंगोपांग. देवगति, देवगत्यानु-पूर्वी, रूप, रस, गंध. स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, पर-घात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर,

शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा, भय, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय-ज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण, चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, दानांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, लाभांतराय, यशःकीर्ति, और उच्चगोत्र ५८ इन प्रकृतियोंका बंध होता है।

१७४। योगके निमित्तसे एक मात्र सातावेदनीयका बंध होता है।

१७५। कर्मप्रकृति सब १४८ हैं और बंध होनेका कारण केवल १२० प्रकृतियोंका ही दिखलाया तो प्रश्न हो सकता है कि २८ प्रकृतियोंका क्या हुआ इसका समाधान यह है-स्पर्शादि २० की जगह ४ का ही ग्रहण किया गया है इस कारण १६ तो ये घटीं और पांचों शरीरोंके पांचों बंधन और पांच संघातका ग्रहण नहिं किया गया इस कारण दश ये घटीं और सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका बंध नहिं होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वबद्ध मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन खंड करता है तब इन दो प्रकृतियोंका प्रादुर्भाव होता है बंध नहिं होता इस कारण दो प्रकृति ये घट गईं।

१७६। द्रव्यास्रव सांपरायिक और ईर्यापथके भेदसे दो प्रकारका होता है।

१७७। जो कर्मपरमाणु जीवके कषाय भावोंके निमित्तसे आत्मामें कुछ कालके लिये स्थितिको प्राप्त हों उनके आस्रवको साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

१७८। जिन परमाणुओंका बंध, उदय और निर्जरा एक ही समयमें हो, उनके आस्रवको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

१७९। सांपरायिक आस्रवका कर्त्ता (स्वामी) कषाय सहित और ईर्यापथका स्वामी कषायरहित आत्मा होता है।

१८०। शुभयोगसे शुभास्रव और अशुभयोगसे अशुभास्रव होता है।

१८१। शुभ परिणामोंसे उत्पन्न योगको शुभयोग और अशुभ परिणामोंसे उत्पन्न योगको अशुभयोग कहते हैं।

४४. राजा श्रेणिक।

अबसे प्राय: २५०० वर्ष पहिले अर्थात् अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामीके समयमें मगधदेशकी राजगृही नगरीमें एक उपश्रेणिक नामका राजा राज्य करता था। मगधदेशको आज कल विहारप्रदेश कहते हैं। परन्तु राजगृही नगरी अब भी राजगृही के नामसे प्रसिद्ध है, जो विहारके भागलपुर और पटनेके निकट है। विहारप्रान्तमें उस समय बौद्धधर्मका अधिक प्रचार था, क्योंकि बौद्धधर्मका चलानेवाला गौतमबुद्ध इसी विहारप्रान्तमें ही उत्पन्न हुआ था, और उसके उपदेशोंका वहांपर बहुत प्रभाव पड़ता था। कहते हैं कि, राजा उपश्रेणिक भी बौद्धधर्मावलम्बी ही था।

उपश्रेणिककी अनेक रानियां थी, उनमें एक इन्द्राणी नामकी

मुख्यरानीके गर्भसे श्रेणिकने जन्म लिया था। श्रेणिक बालकपन से ही अतिशय बुद्धिमान और पराक्रमी जान पड़ता था। उसको मुखमुद्रा देखकर प्रत्येक ज्योतिषी तथा भविष्यद्वक्ता यही कहते थे, कि उपश्रेणिकके पीछे यही राजा होगा। परन्तु उपश्रेणिकको यह बात इष्ट नहीं थी कि, मेरे राज्य करते अधिकारी श्रेणिक होवे। वह अपने पीछे अपनी प्यारी राणी तिलकावतीके पुत्र चिलातीको राजा बनाना चाहता था। क्योंकि तिलकावतीसे विवाहके प्रथम वह प्रतिज्ञा कर चुका था कि, तेरे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही राजगृहीका राजा होगा। इसलिये उसने एक झूठमूठ अपराध लगाकर श्रेणिकको देश निकाला दे दिया।

श्रेणिकको बालकपनसे बौद्धधर्ममें श्रद्धा नहीं थी. परन्तु राजगृहीसे निकल कर जब वह नन्दिग्रामके सभामंडपमें गया और वहां बौद्धगुरु जठराग्निका उपदेश सुना तो बौद्धधर्मपर उस का दृढविश्वास हो गया। नन्दिग्रामसे एक इन्द्रदत्त नामक वणिक् के साथ वह वेणातड़ाग ग्रामको गया और वहां इन्द्रदत्तकी बुद्धिमती कन्या नन्दश्रीके साथ विवाह करके सुखसे रहने लगा। वहां नन्दश्रीसे उसके एक परम रूप गुणवाला अभयकुमार पुत्र हुआ।

यहां उपश्रेणिक चिलातीपुत्रको राज्य देकर मर गया और चिलातीपुत्र राज्य करने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनोंमें उसके अन्याय और अत्याचारोंसे राजगृहीकी प्रजा ऊब उठी, इसलिये राज्यके मंत्रियोंने श्रेणिकके पास एक पत्र भेजकर उसे बुला लिया और अपना राजा बना लिया। श्रेणिक सुखसे राज्य करने लगा, और चिलातीपुत्र भयके मारे अन्यत्र भाग गया।

राजा श्रेणिकके नंदश्रीके अतिरिक्त एक चेलिनी नामकी दूसरी रानी थी, जिसने कि अपने रूप और गुणोंके कारण पट्टरानीका पद पाया था। यह वैशाली नगरके (सिन्धुदेशके) राजा चेटक की कन्या थी। उस समय सिन्धुदेशमें जैनधर्मका अधिक प्रचार था, बौद्धधर्मका वहां प्रवेश ही हुआ था। राजा चेटक जैनी था, और इसीलिये रानी चेलिनीकी जैनधर्ममें अतिशय प्रीति और श्रद्धा थी।

राजा श्रेणिकको जैनधर्मसे बहुत घृणा थी, और इस कारण वह चाहता था कि, रानी चेलिनी भी किसी तरह बौद्ध हो जावै, परन्तु उसके सब उपाय निष्फल होते थे, क्योंकि चेलिनीके चित्तमें जैनधर्मके आगे बौद्धधर्मका महत्व स्थान नहीं पाता था। और यह उसकी शक्तिसे बाहरकी बात थी कि, वह चेलिनीका इसी कारणसे तिरस्कार करने लगे, अथवा अपने प्रेमको न्यून कर सके। क्योंकि चेलिनीके रूप और गुण अद्वितीय थे।

रानी चेलिनी भी चाहती थी कि, मेरा पति किसी प्रकारसे जैनी हो जावे और कल्याणके मार्गमें लग जावे तो बहुत अच्छा हो जिससे मेरे पतिका जन्म सफल हो जावे। इस कारण राजा को प्रतिबोधित करनेके लिये वह भी समय २ पर प्रयत्न किया करती थी।

एक दिन राजा श्रेणिक शिकार खेलनेको जंगलमें गया था। वहांसे लौटते समय एक स्थानमें यशोधर नामके एक दिगम्बर मुनिको तपस्या करते हुए देखकर उसके हृदयमें धर्मद्वेषकी आग धधक उठी। इसलिये उसने अपने शिकारी कुत्तोंको मुनिराज

पर छोड दिया : परन्तु मुनिके तपके प्रभावसे वे कुत्ते कुछ न कर सके और प्रदक्षिणा देकर मुनिके समीप जा बैठे। तब राजा अतिशय कुपित होकर एक मरा हुआ सांप मुनिके गलेमें डाल कर वहांसे चला आया। तीन दिनतक यह बात उसने सर्वथा छुपा रखी, किसीसे भी नहीं कही, परन्तु चौथे दिन रात्रिको रानी चेलिनीसे जैन मुनियोंकी हँसी करते हुए यह बात भी कह दी। जिसे सुनकर रानीको अतिशय दुःख हुआ। उसने एक बड़ी भारी आह खींचकर कहा, कि-स्वामिन्! आपने बड़ा बुरा कर्म किया, व्यर्थ ही आपने अपने आत्माको नरकमें पटका। निर्ग्रंथ मुनियोंको कष्ट पहुंचानेके समान संसारमें कोई अन्य पाप नहीं है। यह सुनके श्रेणिकने कहा, कि, क्या वे उस सांपको गलेमेंसे निकालके अन्यत्र नहीं जा सके होंगे? रानीने कहा, नहीं! वे महामुनि स्वयं ऐसा नहीं कर सकते। जब तक उनका उपसर्ग निवारण न होगा तबतक वे महामुनि वहां ही अचल रहेंगे।

यह सुनके मुनियोंकी ऐसी वृत्तिपर बड़ा भारी आश्चर्य किया। इसलिये कौतूहलवश उसी समय अनेक दीपकोंका प्रकाश कराके सेवकों और रानी चेलिनीके साथ राजा श्रेणिक उसी समय वहां गया, जहां उक्त महामुनिको देखा था। पहुंच कर देखा तो, महामुनि ज्योंके त्यों ध्यानस्थ हो रहे हैं, और सांप गलेमें पड़ा हुआ है। उनकी शांतिमय ध्यानमुद्राको देखकर राजाका हृदय भक्तिसे भीग गया, रानीने बड़े यत्नके साथ सांपको अलग करके समयोचित पूजा की और शेष रात्रि वहीं बिताई।

सूर्योदयके समय रानीने मुनिराजकी प्रदक्षिणा करके और मस्तक नम्र करके कहा—हे संसारसमुद्रसे पार उतारनेवाले भगवन्! हे शान्तिमूर्ते! उपसर्ग दूर हो गया है, हम लोगोंपर अनुग्रह कीजिये। यह सुनकर मुनिराज ध्यानासन छोड़के बैठ गये और नमस्कारके उत्तरमें दोनोंकी ओर हाथ उठाकर बोले, तुम दोनोंकी धर्मवृद्धि होवे। श्रेणिक राजाके हृदयपर इस आशीर्वादकी बड़ा चोट लगी। वे सोचने लगे, अहो! मुनिराजके कैसी अद्वितीय क्षमा है, जो मुझ अपराधीमें और परम भक्तिनीमें कुछ भी भेद नहीं समझते। और मैं कैसा चाण्डाल हूं, जिसने ऐसे परम पुरुषके गलेमें सांप डालकर इतना कष्ट पहुंचाया। ऐसा विचार करके वह आत्मघात करनेको तैयार हो गया। परन्तु ज्ञानी मुनिने उसके हृदयकी बातको जानके कहा—राजन्! तुम्हे ऐसा बुरा कर्म करनेको उद्यत नहीं होना चाहिये। मुनिकी ऐसी अपूर्व शक्ति देखकर श्रेणिकका हृदय पलट गया। उसने उसी दिनसे जैनधर्म पालनेकी ठानली और सुखसे राज्य करने लगा। बादको इसके एक कुणक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, राज्य पाते ही श्रेणिकको कैद करके अतिशय दुःख दिया। एक दिन कुणक अपने इस पापका पश्चात्ताप करता हुआ राजा श्रेणिकको बंदीगृहसे मुक्त करनेके लिये गया था, परन्तु श्रेणिककी आयु पूर्ण होगई थी, वह लोहपिंजरमें मरा हुआ मिला जिससे कुणकको बडा पश्चात्ताप हुआ।

इतिहासोंमें तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें राजा श्रेणिक (शिशुनागवंशीय) बिम्बसारके नामसे और उसका पुत्र कुणक अजातशत्रुके नामसे प्रसिद्ध है। अजातशत्रु बौद्धधर्मका उपासक था॥

४५. छहढाला सार्थ-चौथी ढाल।

——:※:——

दोहा।

सम्यक श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥ १॥

इस प्रकारसे सम्यग्दर्शन धारण करके फिर सम्यग्ज्ञानकी आराधना करो यह सम्यग्ज्ञान अनेक धर्मयुक्त निजपर पदार्थोंको प्रकट करनेके लिये सूर्यसमान है॥ १॥

रोलाछंद २४ मात्रा।

सम्यक साथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधो।
लक्षण श्रद्धा ज्ञान दुहूमें भेद अबाधो॥
सम्यक कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होते हू प्रकाश दीपकतैं होई॥ २॥

यद्यपि सम्यग्दर्शनके साथ ही ज्ञान होता है तथापि उसे जुदा ही आराधन (धारण) करना चाहिये क्योंकि दोनोंके लक्षणमें श्रद्धान और जानना इस प्रकार बाधारहित भेद है। सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) तौ कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। जैसे दीपक और प्रकाश साथ २ ही उत्पन्न होते हैं तथापि दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है॥

तासु भेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं॥

अवधिज्ञान मनपर्यय दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छा॥ ३॥
सकल द्रव्यके गुन अनंत परजाय अनंता।
जानहि एकै काल प्रगट केवलि भगवंता॥

उस सम्यग्ज्ञानके परोक्ष प्रत्यक्ष दो भेद हैं। इंद्रिय और मनकी सहायतासे पैदा होनेवाले मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तौ परोक्ष हैं। और द्रव्य क्षेत्रका परिमाण लिये विशद जाननेवाले अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान देश प्रत्यक्ष हैं। और द्रव्यके समस्त गुण और भूत भविष्यत् वर्त्तमानकी अनंत पर्यायोंसहित युगपत् (एक साथ) जाननेवाले केवली भगवानका केवलज्ञान सर्वदेश प्रत्यक्ष है॥

ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारन।
इह परमामृत जन्म जरामृत रोग निवारन॥४॥
कोटि जन्म तप तपै ज्ञान विन कर्म झरैं जे।
ज्ञानीके छिन माहिं गुप्तितैं, सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनंतवार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान विना, सुख लेश न पायो॥ ५॥
तातैं जिनवर कथिततत्त्व, अभ्यास करीजे।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि लीजै॥
यह मानुष परजाय सुकुल सुनिवो जिनवानी।
यह विधि गये न मिलै, सुमनि ज्यों उदधि समानी॥

ज्ञानके समान जगतमें अन्य कोई सुख देनेवाला नहीं है।

ज्ञान ही जन्म जरा मृत्यु रोगको नष्ट करनेके लिये परमामृत है। ज्ञानके विना अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मोंमें तप करके जितने कर्मो को काटता है उतने कर्म सम्यग्ज्ञानीके मन वचन काय वशमें होने के कारण सहजमें ही नष्ट हो जाते हैं। यह जीव मुनिव्रत धारण करके अनंतवार नव ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ परंतु आत्मज्ञानके विना लेशमात्र भी सुख नहिं पाया। इस कारण जिनेंद्र भगवान द्वारा कथित तत्त्वोंका अभ्यास करके संशय विभ्रम विपर्यय इन दोषोंको छोड़कर आत्मज्ञानको प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि यह मनुष्य पर्याय उत्तम कुल और जिनवाणीका सुनना व्यर्थ ही चले जांयगे तौ समुद्रमें डूबे हुये चिंतामणि रत्नकी तरह फिर नहिं मिलेंगे ॥ ६ ॥

धन समाज गज बाज, राज तौ काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञानको कारण स्वपर, विवेक बखान्यो।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आन्यो ॥ ७ ॥

धन समाज हाथी घोड़ा राज्य आदि कोई काम नहीं आते। ज्ञान आत्माका स्वरूप है। उसकी प्राप्ति होनेपर वह निश्चल रहता है। उस ज्ञानका कारण निजपरका विवेक करना बताया गया है अतएव हे भव्य! कोटि उपाय बनाकर भी उस स्वपर विवेकको प्राप्त करो ॥

जो पूरब शिव गये, जाहिं, अब आगे जै हैं।
सो सब महिमा ज्ञानतणी, मुनिनाथ कहै हैं ॥

विषय चाह दवदाह, जगतजन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान घन घान बुझावै॥ ८॥

मुनियोंके नाथ जिनेंद्र भगवान कहते हैं कि-जितने जीव पहिले मुक्त गये, अब जाते हैं और आगेंको जांयगे, सो सब ज्ञानकी ही महिमा है। पंचेंद्रियोंके विषयोंकी चाह है सो दावाग्नि है सो जगतजनरूपी जंगलको जलाती है। ऐसी दावाग्निको बुझानेके लिये ज्ञानरूपी बादलोंके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ८॥

पुण्यपापफलमाहिं, हरख बिलखो मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै थिर थाई॥
लाख बातकी बात यहै, निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जगद्वंदफंद, नित आतम ध्याओ॥ ९॥

इसके सिवाय हे भाई! पुण्य और पापका फल मिले उसमें हर्ष विषाद मत करो क्योंकि यह पुण्य पाप पुद्गलरूप कर्मकी परजाय मात्र है सो हमेशह विनसती उपजती रहती है। संक्षेपमें लाख बातकी बात यह है कि अपने हृदयमें यह निश्चय लाओ कि-जगतके सब द्वंदफंद तोड़कर नित्य आत्माका ही ध्यान करना चाहिये॥ ९॥

सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि, दृढचारित लीजै।
एक देश अरु सकल देश, तसु भेद कहीजै॥
त्रसहिंसाको त्याग वृथा, थावर न संघारै।
परवधकार कठोर निंद्य, नहि वैन उचारै॥ १०॥

जलमृतिका विन और नाहिं, कछु गहै अदत्ता।
निजवनिता विन सकल नारिसौं, रहे विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दशदिश गमनप्रमान ठान, तसु सीम न नाखै॥११॥

उक्त प्रकारसें सम्यग्ज्ञानी हो जाय तब फिर दृढ़ताके साथ सम्यक्चारित्रको धारण करना चाहिये। चारित्र एक देश और सकल देशके भेदसे दो प्रकारका है। उसमेंसे एकदेश चारित्र कहते हैं॥

प्रथम तौ त्रसहिंसाको सर्वथा त्यागना और व्यर्थ स्थावर एकेंद्रिय जीवोंकी भी विराधनाका त्याग करना चाहिये। दूसरा परवध करनेवाले कठोर निंद्य वा असत्य वचन न बोलना। तीसरे जलमृत्तिकाके सिवाय विना दिया हुआ कुछ भी किसी का ग्रहण नहिं करै। चौथे-अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्रियोंसे विरक्त रहना चाहिये। और अपनी शक्तिको विचार जहां तक बनै थोडा परिग्रह राखै इस प्रकार पांच अणुव्रतके सिवाय तीन गुण व्रत धारण करना चाहिये। उसमेंसे प्रथम तौ दिशावोंमें जितनी २ दूर तक जानेका काम पड़ै उतनी दूर तकका परिमाण करकें उससे आने जानेका यावज्जीव त्याग देना सो दिग्व्रत है।

ताहूमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा॥
काहूकी धनहानि, किसीकी जय हार न चिंतै।
देय न सो उपदेश होय अघ वनज कृषीतैं॥१२॥

करि प्रमाद जलभूमि वृक्ष, पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण, नहिं दे जस लाधै॥
राग द्वेष करतार कथा, कबहू न सुनीजै।
और हु अनरथ दंड हेतु, अघ तिन्है न कीजै॥१३॥

उस दिग्व्रतमेंसे फिर थोड़ेसे कालकी मर्यादासे किसी ग्राम, गली घर बाजार आदि तककी मर्यादा रखकर शेषका त्याग कर रहना चाहिये इसे देशव्रत कहते हैं। तीसरे किसीकी धन हानि किसीकी हार किसीकी जय होना अपने मनसे न चाहै। इसको अपध्यान नामा अनर्थदंड कहते हैं। जिससे पाप हो ऐसे व्यापार और वनज वा खेती करनेका उपदेश नहिं देना। इसको पापोपदेश अनर्थदंड कहते हैं। प्रमादके विना प्रयोजन पानी बखेरने पृथिवी खोदने, वृक्ष काटने आग जलाने आदिका त्याग कर देना चाहिये इसे प्रमादचर्या अनर्थदंड व्रत कहते हैं। तलवार, धनुष, हल आदि हिंसाके उपकरण यशके लिये मांगे हुये नहिं देना इसे हिंसोपकरणदान नामा अनर्थदंडव्रत कहते हैं और राग-द्वेष बढ़ानेवाली कथा कहानी या पुस्तक नहिं सुनना वांचना नहीं। इसे दुःश्रुतिनामा अनर्थदंड व्रत कहते हैं॥ १३॥

धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
पर्व चतुष्टय माहि, पाप तज प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियम कर ममत निवारै।
मुनिको भोजन देय, फेरि निज करहि आहारै॥ १४॥
बारह व्रतके अतीचार, पन पन न लगावै।

मरन समय सन्यास धारि, तसु दोष नसावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तहँतैं चय नर जन्म पाय, मुनि हो शिव जावै ॥ १५ ॥

अब चार शिक्षाव्रतको कहते हैं । प्रथम तौ प्रतिदिन प्रातः काल और संध्याकाल अपने हृदयमें समता भाव धर कर सामायिक किया करै । दूसरे-महीनेकी दो आठैं दो चतुर्दशीके दिन समस्त पापारंभ छोड़कर प्रोषध (एकासना) करना चाहिये । तीसरे भोग उपभोगमें आनेवाले पदार्थोंका परिमाण कर लेना चाहिये । चौथे-मुनि आदि अतिथियोंको आहारदान देकर भोजन करै । इस प्रकार बारह व्रत धारण करके सबके पांच २ अतीचार (दोष) हैं उनको न लगावै । और मरन समयमें मुनिव्रत धारण करै तौ सोलवें स्वर्गको जावै और स्वर्गसे चयकर मनुष्य भवमें मुनिव्रत धारण करके मोक्षको जावै ॥ १५ ॥

——:*:——

४६. इन्द्रभूतिगणधर ।

हे बालको ! तुम चौवीसवें तीर्थंकर भगवान वर्द्धमानस्वामी का चरित्र पिछले ४२वें पाठमें पढ़ चुके हो । उसमें तुम्हें बतलाया गया है कि, वर्धमान भगवान्के इन्द्रभूति आदि ११ गणधर थे । इस पाठमें तुम्हें उन्हीं इन्द्रभूतिगणधरका चरित्र पढ़ाया जाता है ।

इन्द्रभूतिका दूसरा नाम गौतम भी है । इसका कारण यह

है कि, इन्द्रभूतिने ब्राह्मणोंके गौतमवंशमें जन्म लिया था और गौतमवंशमें जो उत्पन्न होवे उसको गौतम कहते हैं। उसी समय में अर्थात् जब गौतम गणधर अथवा महावीर भगवान् हुए हैं, एक बुद्धधर्मको चलानेवाला गौतम बुद्ध नामका विद्वान् भी हो गया है। इसलिये कोई कोई लोग दोनोंको एक ही समझते हैं, परन्तु यह भूल है। यथार्थमें ये दोनों जुदे २ हो गये हैं।

इन्द्रभूति एक गौतम नामक ग्रामके रहनेवाले गौतम ब्राह्मण थे। इनके वायुभूति और अग्निभूति नामके दो भाई थे। ये तीनों ही भाई वैदिकधर्मानुयायी वड़े भारी विद्वान् थे और तीनोंके पास पांच पांचसौ शिष्य विद्याध्ययन करते थे। इन्द्रभूतिकी जिह्वापर चारो वेद और छहो शास्त्र नृत्य करते थे। इस कारण उस समयके सम्पूर्ण विद्वानोंमें वे श्रेष्ठ गिने जाते थे। उन्हें अपनी विद्याका गर्व भी इतना था कि, संसारमें अपने सामने विवाद करनेवाला वे किसीको नहीं समझते थे।

जब महावीर भगवान्को चारघातिया कर्मोंके नाश होनेसे वैशाख शुक्ला १० दशमीके दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ और इन्द्र की आज्ञा पाकर कुवेरने जब वहां समवसरणकी रचना की, तथा देवमनुष्यादिकोंकी बारह सभा एकत्र हो गई, तब सम्पूर्ण भव्यजीव भगवान्की दिव्यध्वनि सुननेके लिये प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु जब ६६ दिन दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब इन्द्रने इसका कारण यह निश्चय करके कि "गणधरके न होनेसे दिव्यध्वनि नहीं खिरती है" गणधरके अन्वेषणकरनेका विचार किया। उस समय अवधिज्ञानसे विचार करके वह गौतम ग्रामको एक

विद्यार्थीका वेष धारण करके गया और जहांपर इन्द्रभूति अपने शिष्योंको पढ़ा रहे थे, वहांपर जाकर आप भी बैठ गया और उनका व्याख्यान सुनने लगा।

उस समय किसी विषयका प्रतिपादन करके इन्द्रभूतिने अपने सम्पूर्ण विद्यार्थियोंको उद्देश करके कहा, क्यों तुम लोगों की समझमें यह विषय आया? तव सव विद्यार्थियोंने प्रसन्नतासे "हां! हां!" कह दिया। परन्तु इन्द्रने जो कि छात्रके ही वेषमें वहां था, नाक भौंह सिकोड़कर अपनी अरुचि दिखलाई। जिसे विद्यार्थियोंने देखकर अपने गुरूजीसे कह दिया कि, महाराज! यह छात्र आपकी अविनय करता है। तव इन्द्रभूतिने उस अपूर्व छात्रसे कहा कि, मुझे सम्पूर्ण वेद और शास्त्र हस्तामलक हो रहे हैं, मेरे सामने ऐसा कोई भी विद्वान् वादी नहीं है जो गर्वगलित न हो जावै। फिर क्या कारण है कि, तुझे मेरा व्याख्यान नहीं रुचता है। तव वेषधारी छात्रने कहा कि, यदि आप संपूर्ण-शास्त्रोंके तत्त्वोंको जानते हैं तो मैं एक आर्याछन्द कहता हूं, आप उसका अर्थ लगा दीजिये—

"षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपंचास्तिकायषट्कायान्।
विदुषां वरः स एव हि यो जानाति प्रमाणनयैः॥"

इस अश्रुतपूर्व और विषम अर्थको कहनेवाली आर्याको

---

१ भावार्थः—छह द्रव्य, नौपदार्थ, तीन काल, पांच अस्तिकाय, और छहकायोंको जो प्रमाण और नयपूर्वक जानता है, वही पुरुष विद्वानोंमें श्रेष्ठ है।

सुनकर उसका यथार्थ अर्थ समझनेमें लटपटाते हुए इन्द्रभूतिने कड़ककर कहा कि, पहले यह वतला कि तू किसका शिष्य है? इन्द्रने कहा कि, मैं जगद्‌गुरु श्रीवर्धमानस्वामीका शिष्य हूं। तब इन्द्रभूति कहने लगा कि, ओह! क्या तू उस इन्द्रजालके जानने वाले और आकाशमार्गमेंसे आते हुए देवताओंको दिखलानेवाले सिद्धार्थनन्दन (सिद्धार्थ राजाके पुत्र) का शिष्य है? अच्छा तो चल मैं उसीके साथ शास्त्रार्थ करूंगा। तेरे साथ विवाद करनेसे मेरा अपमान होता है क्योंकि तू विद्यार्थी है। यह सुनकर इन्द्रने अपना प्रयोजन सिद्ध हुआ जानकर प्रसन्नतासे कहा कि, अच्छा! आइये, मेरे गुरूके पास चलिये। तब इन्द्रभूति अपने दोनों भाइयों और शिष्योंके साथ इन्द्रको आगे करके समवसरणमें आया जहांके मानस्तंभोंको देखते ही उसका और उसके भाइयों का गर्व गलित हो गया। भगवान्‌के समवसरणमें जो मानस्तंभ रहते हैं, उनका ऐसा अतिशय होता है कि, उनको देखने पर कोई कैसा ही मानी क्यों न हो अपने गर्वको भूलकर विनयी बन जाता है। पश्चात् इन्द्रभूतिने अपने भाइयों सहित भगवान्‌की प्रदक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक स्तुति की और तत्काल ही संपूर्ण परिग्रहोंको छोड़कर जिनदीक्षा ले ली।

ये ही इन्द्रभूति मुनि मनःपर्ययज्ञान और सात ऋद्धिके धारी होकर भगवान्‌के गणधर होगये। भगवान्‌की दिव्यध्वनि खिरने लगी और इन्द्रभूति गणधर उसको श्रवण करके द्वादशांग रचना करके भव्यजीवोंको सुनाने लगे।

बहुत कालतक धर्मोपदेश करके भगवान् महावीर तो मोक्ष

को पधारे और इन्द्रभूतिगणधरने शुक्लध्यानके प्रभावसे केवल-ज्ञान प्राप्त करके १२ वर्षतक धर्मोपदेश किया और अन्तमें अविनाशी मोक्षपदकी प्राप्ति की।

४७. जीवके असाधारण भावादि।

१। जीवके औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक इस प्रकार पांच असाधारण भाव हैं।

२। जो किसी कर्मके उपशमसे हो, उसे औपशमिक भाव कहते हैं। औपशमिक भाव दो प्रकारके होते हैं। एक सम्यक्त्व भाव, दूसरा चारित्र भाव।

३। जो किसी कर्मके क्षयसे उत्पन्न हो उसे क्षायिकभाव कहते हैं। क्षायिक भाव नौ प्रकारका है। क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदान, क्षायिक-लाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिकवीर्य।

४। जो कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे हो, उसको क्षायोपशमिक-भाव कहते हैं। क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकारका होता है। सम्यक्त्व, चारित्र, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, देश-संयम, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, कुमति ज्ञान, कुश्रुतज्ञान, कुअवधिज्ञान, दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य।

५। जो कर्मोंके उदयसे उत्पन्न हो उसे औदयिकभाव कहते

हैं। (औदयिकभाव इक्कीस प्रकारके होते हैं,-यथा गति ४ कषाय ४ लिंग ३ मिथ्यादर्शन १ असंयम १ असिद्धत्व १ लेश्या ६ (पीत, पद्म शुक्ला, कृष्णा, नील, कापोत)

६। जो उपशम, क्षय, क्षयोपशम वा उदयकी अपेक्षा न रखता हुआ जीवका खास स्वभाव मात्र हो उसको पारिणामिक भाव कहते हैं। पारिणामिक भाव तीन हैं। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

७। कषायके उदयसे अनुरंजित योगोंकी प्रवृत्तिको भाव लेश्या कहते हैं और शरीरके पीत पद्म आदि वर्ण होनेको द्रव्य लेश्या कहते हैं।

८। जीवके लक्षणरूप चैतन्यानुविधायी परिणामको उपयोग कहते हैं। उपयोग दो प्रकारका है। एक दर्शनोपयोग दूसरा ज्ञानोपयोग।

९। दर्शनोपयोग चार प्रकारका है—चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन।

१०। ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान, और कुअवधिज्ञान।

११। अभिलाषा या वांछाको संज्ञा कहते हैं। संज्ञा चार हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, और परिग्रहसंज्ञा।

१२। जिन-जिन धर्म विशेषोंसे जीवोंका अन्वेषण (खोज) किया जाय उन उन धर्म विशेषोंको मार्गणा कहते हैं। मार्गणा चौदह प्रकारकी हैं गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान,

संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व, आहार ।

१३। गतिनामा नामकर्मके उदयसे जीवकी पर्याय विशेषको गति कहते हैं। गति चार हैं-नरकगति, तिर्यंचगति मनुष्यगति, देवगति।

१४। आत्माके लिंगको (चिह्न) इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय दो प्रकारकी है। द्रव्येंद्रिय और भावेंद्रिय।

१५। निर्वृत्ति और उपकरणको द्रव्येंद्रिय कहते हैं।

१६। प्रदेशोंकी रचना विशेषको निर्वृत्ति कहते हैं। निर्वृत्ति दो प्रकारकी होती है। १ बाह्यनिर्वृत्ति २ आभ्यन्तर निर्वृत्ति।

१७। इन्द्रियोंके आकाररूप पुद्गलकी रचनाविशेषको बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं।

१८। आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंकी इन्द्रियाकार रचनाविशेषको आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

१९। जो निर्वृत्तिकी रक्षा (उपकार) करै उसे उपकरण कहते हैं। उपकरण भी बाह्य आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है।

२०। नेत्रेंद्रियमें पलक वगेरहकी तरह जो निर्वृत्तिका उपकार करै, उसको बाह्योपकरण कहते हैं।

२१। नेत्रेंद्रियमें कृष्ण शुक्ल मंडलकी तरह सब इन्द्रियोंमें जो निर्वृत्तिका उपकार करै उसको आभ्यन्तर उपकरण कहते हैं।

२२। लब्धि और उपयोगको भावेंद्रिय कहते हैं।

२३। ज्ञानावर्ण कर्मके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं और क्षयोपशम हेतुक चेतनाके परिणाम विशेषको उपयोग कहते हैं।

२४। द्रव्येंद्रिय पांच प्रकारकी है—स्पर्शन, रसना, घ्राण,

चक्षु और श्रोत्र।

२५। जिसके द्वारा आठ प्रकारके स्पर्शोंका ज्ञान हो, उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं।

२६। जिसके द्वारा पांच प्रकारके रसका (स्वादका) ज्ञान हो, उसे रसनेंद्रिय कहते हैं।

२७। जिसके द्वारा दो प्रकारकी गंधका (सुगंध दुर्गंधका) ज्ञान हो, उसको घ्राणेंद्रिय कहते हैं।

२८। जिसके द्वारा पांच प्रकारके वर्णोंका ज्ञान हो, उसको चक्षुरिंद्रिय कहते हैं।

२६। जिसके द्वारा सात प्रकारके स्वरोंका ज्ञान हो, उसे श्रोत्रेंद्रिय कहते हैं।

३०। पृथिवी, अप, तेज, वायु, और वनस्पति इन जीवोंके एक स्पर्शन इंद्रिय ही होती है। कृमि आदि जीवोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रियां होती है। पिपीलिका (चिवटी) वगेरह जीवोंके स्पर्शन, रसना, और घ्राण ये तीन इन्द्रियां होती हैं। भ्रमर मक्षिका वगेरहके श्रोत्रके विना चार इन्द्रियां होती हैं। घोड़े आदि पशु, मनुष्य देव और नारकी जीवोंके पांचों इन्द्रियां होती हैं।

३१। त्रस स्थावर नाम कर्मके उदयसे आत्माके प्रदेश प्रचय को काय कहते हैं।

३२। त्रस नामा नामकर्मके उदयसे द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेंद्रियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंको त्रस कहते हैं।

३३। स्थावर नामकर्मके उदयसे पृथिवी, अप, तेज, वायु

और वनस्पतिमें जन्म लेनेवाले जीवोंको स्थावर कहते हैं।

३४। पृथिवी आदिकसे रुक जाय वा दूसरोंको रोके उसको बादर जीव कहते हैं।

३५। जो पृथिवी आदिकसे स्वयं न रुके और न दूसरे पदार्थों को रोके, उसको सूक्ष्म जीव कहते हैं।

३६। शरीरका जो एक ही स्वामी हो उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं, प्रत्येक वनस्पति सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदसे दो प्रकारका है।

३७। जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय अनेक साधारण वनस्पति शरीर हों उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

३८। जिस प्रत्येक वनस्पतिके आश्रय कोई भी साधारण वनस्पति न हो, उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

३९। जिन जीवोंके आहार, श्वासोच्छ्वास, आयु और काय ये साधारण (समान अथवा एक) हों उनको साधारण कहते हैं। जैसे कंद मूलादिक।

४०। पृथिवी अप, तेज, वायु, केवली भगवान, आहारक शरीर, देव, नारकी इन आठको छोड़कर समस्त संसारी जीवोंके शरीरोंमें साधारण अर्थात् निगोद रहता है। निगोद दो प्रकार का है। एक नित्यनिगोद दूसरा इतरनिगोद।

४१। जिसने कभी भी निगोदके सिवाय दूसरी पर्याय नहिं पाई अथवा जिसने कभी भी निगोदके सिवाय दूसरी पर्याय न तौ पाई और न पावैगा उसको नित्यनिगोद कहते हैं।

४२। जो जीव नित्यनिगोदसे निकलकर दूसरी पर्याय पाकर

फिर निगोदमें उत्पन्न हो, उसको इतर निगोद कहते हैं।

४३। पृथिवी, अप्, तेज वायु, नित्यनिगोद और इतर निगोद ये ६ बादर और सूक्ष्म दोनों प्रकारके होते हैं। बाकीके सब जीव बादर ही होते हैं सूक्ष्म नहिं होते।

४४। पुद्गलविपाकी शरीर अंगोपांग नामा-नामकर्मके उदयसे मनोवर्गणा, वचनवर्गणा, तथा कायवर्गणाके अवलंबनसे कर्म नोकर्मके ग्रहण करनेकी जीवकी शक्तिविशेषको भावयोग कहते हैं इस ही भावयोगके निमित्तसे आत्मप्रदेशके परिस्पंदको (चंचल होनेको) द्रव्ययोग कहते हैं। योगके भेद पंद्रह हैं—मनोयोग ४ वचनयोग ४ और काययोग ७।

४५। नोकषायके उदयसे उत्पन्न हुई जीवके मैथुन करनेकी अभिलाषाको भाववेद कहते हैं और नामकर्मके उदयसे आविर्भूत जीवके चिह्नविशेषको द्रव्यवेद कहते हैं। वेद तीन प्रकारका होता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

४६। जो आत्माके सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र रूप परिणामोंको घाते, उसको कषाय कहते हैं कषाय ४ प्रकारके हैं—अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन।

४७। ज्ञानमार्गणा—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल तथा कुमति, कुश्रुत, कुअवधि भेदसे आठ प्रकारकी है।

४८। अहिंसादि पांच व्रत धारण करने, ईर्यापथ आदि पांच समितियोंको पालने, क्रोधादि कषायोंके निग्रह करने, मनोयोगादि तीनों योगोंको रोकने, स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियोंके विजय

करनेको संयम कहते हैं। संयम—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयम भेदसे सात प्रकारकी है।

४९। दर्शनमार्गणा, चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन भेदसे चार प्रकारकी है।

५०। लेश्या मार्गणा कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल भेदसे छह प्रकारकी है।

५१। भव्यमार्गणा भव्य अभव्य भेदसे दो प्रकारकी है।

५२। तत्त्वार्थ श्रद्धानको सम्यक्त्व मार्गणा कहते हैं। सम्यक्त्व मार्गणा ६ प्रकारकी है। उपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशम सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सासादन और मिथ्यात्व।

५३। जिसमें संज्ञा हो उसको संज्ञी कहते हैं। द्रव्य मनके द्वारा शिक्षादि ग्रहण करनेको संज्ञा कहते हैं। संज्ञीमार्गणा संज्ञी असंज्ञी भेदसे दो प्रकारकी है।

५४। औदारिक आदिक शरीर और पर्याप्तिके योग्य पुद्गलों के ग्रहण करनेको आहार कहते हैं। आहार मार्गणा आहारक अनाहारक भेदसे दो प्रकारकी है।

५५। विग्रहगति और किसी २ समुद्घातमें और अयोग केवली अवस्थामें जीव अनाहारक होता है।

५६। जन्म तीन प्रकारका होता है। उपपाद जन्म, गर्भजन्म, और सम्मूर्च्छन जन्म।

५७। जो देवोंकी उपपादशय्या तथा नारकियोंके योनि स्थानमें (उत्पत्ति स्थानमें) पहुंचते अंतर्मुहूर्त्तमें युवावस्थाको

प्राप्त हो जाय उस जन्मको उपपाद जन्म कहते हैं।

५८। माता-पिताके शोणित शुक्रसे जिनका शरीर बनै उनके जन्मको गर्भ जन्म कहते हैं।

५९। जो माता-पिताकी अपेक्षाके विना इधर उधरके परमाणुओंको शरीररूप परिणमावै उसके जन्मको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

६०। नराकियोंके उपपाद जन्म होता है। जरायुज अंडज पोत (जो योनिसे निकलते ही भागने दौड़ने लग जाते हैं और जिनके ऊपर जेर वगेरह नहिं होती) जीवोंके गर्भ जन्म होता है और शेषजीवोंके सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

६१। नारकी और सम्मूर्च्छन जीवोंके नपुंसक लिंग होता है। देवोंके पुंलिंग और स्त्री लिंग और शेष जीवोंके तीनों लिंग होते हैं।

---

४८. श्रीसमन्तभद्राचार्य।

विक्रम संवत् १२५ के लगभग दक्षिण कांची देशमें व्याकरणादि समस्त प्रकारके शास्त्रोंके रचयिता और दुर्द्धर तपके कर्ता श्रीसमन्तभद्र नामके महा मुनि थे। एक समय तीव्र असाता कर्मके उदयसे उनको भस्मक[1] व्याधि हो गई। इस रोगसे जब

१। भस्मक व्याधि होनेसे जितना खाया जाता है, उतना ही भस्म (हजम) हो जाता है और यह अनेक दिनतक अच्छे २ माल खानेसे ही दूर होता है।

अतिशय दुःखी हो गये, तब एकदिन उन्होंने विचार किया कि, इस रोगपीड़ित अवस्थासे न तो मैं अपना ही कल्याण कर सकता हूं और न जिनशासनका ही उपकार कर सकता हूं, इस कारण सबसे पहिले जिसप्रकार बने. इस रोगको दूर करना चाहिये। शरीर रहेगा तो फिरसे मुनि होकर मैं सब कुछ कर सकूंगा परन्तु शरीर नष्ट हो गया तो उभयतः भ्रष्ट हो जाऊंगा। ऐसा विचारकरके अन्तमें यह निश्चय किया कि, इस भेषको छोड़कर कोई ऐसा भेष धारण करना चाहिये, जिससे उत्तमोत्तम गरिष्ठ भोज्य पदार्थ खानेको मिले। लाचार कांची देशको छोड़कर वे उत्तरकी तरफ पुंड्रनगरमें बौद्धोंकी आहार-दानशाला थी, सो वहां बौद्धसाधुका भेष धारण करके रहने लगे परन्तु यहां पर भी पूरा आहार न मिलनेसे रोगकी उपशान्ति न हुई, तब वहांसे निकलकर और भी उत्तरकी तरफ चले. और कितने ही दिनोंमें दशपुर नगरमें आये जिसको हालमें मन्दसौर कहते हैं। यहां पर शैवलोगोंका बडा प्रताप था। शिवधर्मी साधु सन्यासियोंको उत्तमोत्तम भोजनोंसे संतुष्ट करनेके अनेक स्थान थे। सो यहां आकर वे शिवलिंगी सन्यासी हो गये। अनेक दिन रहनेपर भी जब भस्मक व्याधि दूर न हुई, तब यहांसे भी निकलकर वे वाराणसी नगरीमें पहुंचे।

वाराणसीमें उस समय शिवकोटी नामक राजाका राज्य था शिवकोटी महाराजके बनाये हुए विशाल शिवमंदिरमें नित्य ही अठारह प्रकारके मिष्ट पदार्थोंसे भोग लगता था, सो इस मंदिर-को देखकर विचार किया कि, यदि इस मंदिरमें प्रवेश हो जाय

तो मेरा महा क्षुधारोग दूर हो सकता है। लाचार उन्होंने योग्य शैवका भेष बनाकर अर्थात् शिवभक्त बनकर उस मंदिरमें प्रवेश किया और शिवनिर्माल्यको मंदिरसे बाहर फेंका हुआ देखकर वहांके पुजारियोंसे कहा कि, यहाँ पर कोई भी ऐसा समर्थ नहीं हैं, जो भगवान्‌को आह्वान करके इन उत्तमोत्तम पदार्थोंका भोजन करा दे? इस प्रकार सुनकर पुजारियोंने कहा कि तुम्हारेमें ऐसी सामर्थ्य है. जो ऐसा कहते हो? समन्तभद्रस्वामीने कहा कि "बेशक मैं अपनी भक्तिसे भगवान्‌को इस मंदिरमें अवतरण कराके सब नैवेद्यका भोग लगा सकता हूं।"

पुजारियोंने यह बात राजाके कानोंतक पहुंचाई, तो राजाने उस दिन और स्त्रियोंसे उत्तमोत्तम मिठाई बनवाकर उस योगीसे कहा कि आप इन पदार्थोंका भगवान्‌के भोग लगाइये अर्थात् भगवानको अवतरण करा खिला दीजिये।

तब योगिराजने पहिले मंदिरको धुलवाकर पवित्र करवाया और सब नैवेद्य मंदिरमें लेजाकर भीतरसे द्वार बंद कर दिया और सब नैवेद्य स्वयं खा लिया। पश्चात् दरवाजा खोलकर सबको बतादिया कि देखो! भगवान् आकर सब नैवेद्य खा गये। सबने आश्चर्य किया और समझ लिया कि बेशक भगवान् आये थे, अन्यथा इतना नैवेद्य कहां जाता। मनुष्यकी सामर्थ्य नहीं कि, इतना नैवेद्य खा जावे। तब शिवकोटि महाराजने समन्तभद्रस्वामीको वहांका पुजारी नियत कर दिया और नित्य उत्तमोत्तम पदार्थ बनवाकर भेजना प्रारंभ कर दिया सो योगिराज द्वार

बंद करके भगवान्‌के अर्थात् अपने आप भोग लगा कर आनन्द करने लगे।

इसप्रकार भोजन करते २ जब छह महीने बीत गये तब उन का रोग दूर होने लगा और कुछ कुछ नैवेद्य बचने लगा। तब अन्य पुजारियोंने पूछा कि, भगवान् अब सब नैवेद्य क्यों नहीं खाते? तब योगिराजने कहा कि भगवान् अब तृप्त हो गये सो थोड़ा थोड़ा नैवेद्य छोड़ देते हैं। परन्तु इस जवाबसे पुजारियों का दिल नहिं भरा इसलिये उन्होंने यह बात महाराजसे प्रगट की। महाराजने गुप्तभावसे पनालेकी राहसे एक चालाक और छोटे लड़केको प्रवेश कराकर उसे देखनेको कहा। उसने समन्तभद्रको स्वयं भोजन करते देखकर जैसाका तैसा महाराजसे निवेदन कर दिया।

महाराज कुपित होकर योगिराज पुजारीसे बोले कि, तुम बड़े धूर्त और झूठे हो, जो भगवान्‌का नाम लेकर स्वयं सबका सब प्रसाद उड़ा जाते हो? और भगवान्‌को नमस्कार भी कभी नहिं करते? जान पड़ता है तुम कोई नास्तिक हो।

यह सुनकर समन्तभद्रस्वामी कुछ घबराये नहीं और बोले कि राजन्! मेरा नमस्कार अष्टादशदोषरहित देव ही झेल सकते हैं। यह मूर्ति मेरा नमस्कार झेल नहिं सकती। यदि मैं इसे नमस्कार करूंगा, तो मूर्त्ति फट जायगी।

राजाने कहा कि मूर्ति फट जाय तो फट जाने दो परन्तु तुमको हमारे सामने नमस्कार करनाही होगा। देखें तुम्हारी कैसी सामर्थ्य है? योगिराजने कहा कि, यदि मेरी सामर्थ्य ही

देखना है, तो आज नहीं कल प्रातःकाल ही मैं नमस्कार करूंगा तब देखना।

"अच्छा कल ही सही" ऐसा कहकर राजाने उस मंदिरके चारोंओर पहरेका पक्का प्रबंध कर दिया, जिससे ये रात्रिमें भाग न जावें।

समन्तभद्रस्वामीने विचार किया कि, मैंने जल्दीमें कैसी असंभव बात कह डाली, अब सवेरे ही न मालूम क्या होगा। इसी चिन्ता में अन्तःकरणसे दुःखित हो रहे थे कि, अर्धरात्रिके पश्चात् अम्बिका नामकी जिनशासन देवीका आसन कंपायमान हुआ और वह तत्काल ही समन्तभद्रस्वामीके पास आकर बोली कि, आप चिन्ता न कीजिये, प्रातःकाल ही जब आप "स्वयम्भुवा भूतहितेन भूतले" इत्यादि चतुर्विंशति भगवान्का स्तवन करेंगे, तो वह मूर्ति अवश्यही फट जायगी। ऐसा कहकर देवी अदृश्य हो गई।

राजाने प्रातःकाल ही योगीको द्वार खोलकर बाहर निकाला। देखा तो योगिराज बड़े प्रसन्नचित्त हैं, और प्रफुल्लित वदन पर एक प्रकारका प्रतापसा झलक रहा है। राजाने कहा कि अब नमस्कार करके अपनी सामर्थ्य दिखाइये।

योगिराज तत्काल ही स्वयंभूस्तोत्र रचकर चतुर्विंशति भगवान्का स्तवन करने लगे और उसके पूरा होते २ शिवकी मूर्त्ति फट गई और उसमेंसे चन्द्रप्रभ भगवान्की रत्नमयी चतुर्मुख प्रतिमा प्रगट हुई। राजा वगैरह सब ही देखनेवाले आश्चर्यचित्त होकर जय जय ध्वनि करने लगे। राजाने पूछा कि हे योगीन्द्र! आप कौन हैं, जो इतनी सामर्थ्य रखते हैं?

समन्तभद्रस्वामीने कहा कि—हे राजन् ! मैं कांची देशमें दिगम्बर मुनि था। फिर पुंड्रपुरमें आकर शाक्य भिक्षु (बौद्धसाधु) हो गया और दशपुर नगरमें मिष्टभोजी परिव्राजक होकर इस वाराणसी नगरीमें (बनारसमें) शैव तपस्वी होकर आया हूं। यदि किसी विद्वान्‌की मेरेसाथ वाद करनेकी शक्ति हो तो मेरे सामने खड़ा होवे, मैं जैननिर्ग्रंथवादी हूं। मैंने पूर्वकालमें पाटलीपुत्र नगरमें (पटनेमें) वादका ढिंढोरा पिटवाया था. तत्पश्चात् मैं मालवदेश, सिन्धुप्रदेश, ढाका, बंगाल. कांचीदेश और वेदुपदेशमें वाद जीतकर विद्योत्कट भटोंके द्वारा सुवर्ण हस्ती आदि अनेक सम्मानोंको प्राप्त हुआ हूं। और हे राजेन्द्र ! अब मैं वादार्थी होकर सिंहकीसी क्रीड़ा करता हुआ विचरता हूं।

तत्पश्चात् उस भेषको छोड़कर जैननिर्ग्रन्थ मुनिका भेष धारण करके काशीके समस्त एकान्तवादी विद्वानोंको वादमें पराभव किया और महाराज सहित हजारों मनुष्योंको जैनमतावलंबी बनाया। शिवकोटि महाराज भी उनके उपदेशसे राजपाट छोड़कर उसी समय जैनसाधु हो गये और उनसे अनेक शास्त्र पढ़कर शेषमें शिवायननामके आचार्य हो गये। इन्होंने ही श्री लोहाचार्यकृत चौरासीहजार श्लोकमय आराधनासारको संचय कर प्राकृतभाषाके साढ़े तीन हजार श्लोकोंमें बनाया है।

इसप्रकार उस समय समन्तभद्रस्वामीने जिनशासनका प्रभाव प्रगट करके इस देशमें जिनधर्मका सर्वत्र प्रचार कर दिया था। कहते हैं कि उसी दिनसे काशीमें फटे महादेवका माहात्म्य हो गया है, सो अनेक शिवालयोंमें फटे महादेवोंकी स्थापना अब भी होती है।

४९ छहढालासार्थ—पांचवीं ढाल ।

चालछंद २४ मात्रा ।

मुनि सकल व्रती बडभागी । भव भोगनतैं वैरागी ॥
वैराग्य उपावन माई । चिंतों अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥
इन चिंतत समरस जागै । जिम ज्वलन पवनके लागै ॥
जबही जिय आतम जानै । तबही जिय शिवसुख थानै ॥

जो बड़भागी संसार भोगोंसे उदासीन होकर सकलव्रती मुनि होते हैं । वे वैराग्यको उत्पन्न करनेवाली माता बारह भावनाओंको वारंवार चिंतवन किया करते हैं क्योंकि इन बारह भावनाओंके चिंतवन करनेसे जिस प्रकार पवनके लगनेसे अग्नि प्रज्वलित होती है उसी प्रकार समता रूपी रस उत्पन्न होता है । जब ही यह जीव अपनी आत्माको जानता है । तब ही यह मोक्ष सुखको प्राप्त होता है ।

अनित्यभावना ।

जोबन गृह गोधन नारी । हय गय जन आज्ञाकारी ॥
इंद्रिय भोग छिन थाई । सुर धनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥

जोवन, घर, गौ, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, आज्ञाकारी नौकर इंद्रियोंके भोग ये सब इंद्रधनुष वा चपल विजलीके समान क्षण भर में नाश होनेवाले अनित्य हैं ॥ ३ ॥

अशरण भावना ।

सुर असुर खगाधिप जेते । मृग ज्यों हरिकाल दले ते ॥
मणि मंत्र तंत्र बहु होई । मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥

जिस प्रकार हिरनको सिंह मार डालता है । उसी प्रकार काल रूपी सिंह, सुर असुर विद्याधर राजा आदि सब जीवोंको मार देता है। उस समय मणि मंत्र तंत्र आदि कितने ही क्यों न हों कोई भी मरनेसे नहिं बचा सकता ॥ ४ ॥

संसार भावना ।

चहुं गति दुख जीव भरै हैं । परिवर्त्तन पंच करे हैं ॥
सब विधि संसार असारा । यामैं सुख नाहिं लगारा ॥५॥

सब जीव संसारमें चारों गतियोंके दुःख भरता हुवा पांच परावर्त्तन करता रहता है यह संसार सर्व प्रकारसे असार है इसमें सुख जरा भी नहीं है ॥ ५ ॥

एकत्व भावना ।

शुभ अशुभ करमफल जेते । भोगै जिय एक ही तेते ॥
सुत दारा होय न सीरी । सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ६ ॥

अपने शुभ अशुभ कर्मोंके जितने दुख सुख फल हैं वे सब यह जीव अकेला ही भोगता है। स्त्री पुत्र आदि कोई भी सुख दुखके साथी नहीं हैं ये सब तो अपने मतलबके साथी हैं ॥ ६ ॥

अन्यत्व भावना ।

जल पय ज्यों जियतन मेला । पै भिन्न भिन्न नहिं मेला ॥
तो प्रगट जुदे धन धामा । क्यों है इक मिलि सुत रामा ॥७

जल और दूध जैसे मिले हैं इसी प्रकार यह जीव और शरीर मिले हुये हैं परंतु वास्तवमें ये सब जुदे जुदे हैं, एक नहीं हैं। जब देह और जीव ही एक नहीं हैं तब प्रत्यक्षमें अन्य दीखने वाले धन मकानादि वा स्त्री पुत्रादि अपने कैसे हो सकते हैं ॥८॥

अशुचित्व भावना।

पल रुधिर राधमल थैली। कीकस वसादितैं मैली॥
नवद्वार वहैं घिन कारी। अस देह करै किम यारी॥

यह देह मांस रुधिर (पीव) राध वगेरह चर्वी मलोंकी मलीन थैलिया है। इस देहमें अपवित्र घिनावने नौ द्वारोंसे हमेशह मल वहते रहते हैं ऐसी देहसे कौन प्रीति करे ॥९॥

आस्रव भावना।

जो जोगनकी चपलाई। तातैं है आस्रव भाई॥
आस्रव दुखकार घनेरे। बुधिवंत तिन्हैं निरवेरे॥९॥

हे भाई! मन वचन कायसे योगोंका जो संचलन होता है उस से कर्मोंका आस्रव (आगमन) होता है। वे आस्रव बड़े दुखदायक हैं, बुद्धिमान पुरुष इनको दूर रहते करते हैं ॥ ६ ॥

संवर भावना।

जिन पुण्य पाप नहिं कीना। आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके। संवर लहि सुख अवलोके ॥१०॥

जिन्होंने पुण्य-पाप रूप भाव नहिं करके आत्माके अनुभवमें चित्त लगाया उन्होंने ही आते हुये कर्मोंको रोककर संवरको प्राप्त कर सुखका अवलोकन किया॥ १० ॥

निर्जरा भावना।

निजकालपाय विधि झरना तासौं निजकाज न सरना।
तप कर जो कर्म खपावै। सोई शिवसुख दरसावै॥ ११॥

कर्मोंकी स्थिति पूरी करकें जो कर्मोंका झड़ना है ऐसी निर्जरासे कोई कार्य नहिं सरता किंतु तप करकें कर्मोंको खपादे वही निर्जरा मोक्षके सुख दिखाती है॥ ११॥

लोकभावना।

किन हू न करयो न धरै को। षट द्रव्यमयी न हरै को॥
सो लोकमांहि विन समता। दुख सहै जीव नित भ्रमता॥

इस लोकको न तो किसीने बनाया और न कोई इसे धारण किये हुये है। यह तौ जीव पुद्गल धर्म अधर्म काल और आकाश इन छह द्रव्योंसे भरा हुवा अनादि कालसे विद्यमान है इसका कोई नाश नहीं कर सकता इस लोकमें यह जीव विना समता के नित्य भ्रमण करता हुआ दुःख भोगता रहता है॥ १२॥

बोधदुर्लभ भावना।

अंतिम ग्रीवकलोंकी हद। पायो अनंत विरियां पद॥
पर सम्यकज्ञान न लाध्यो। दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो॥१३

इस जीवने नौ ग्रीवक तक जाजाकर अहमिंद्र पद अनंतबार पाया परंतु सम्यग्ज्ञान प्राप्त नहिं हुआ। ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को मुनियोंने ही अपने आपमें साधा है॥ १३॥

धर्मभावना।

जो भाव मोहतैं न्यारे। दृग ज्ञान व्रतादिक सारे॥
सो धर्म जबै जिय धारै। तब ही सुख अचल निहारै॥१४॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये। तिनकी करतूति उचरिये॥
ताको सुनिकै भवि प्रानी। अपनी अनुभूति पिछानी॥१५॥

जो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र भाव मोहसे पृथक् हैं ये ही धर्म हैं. जब ऐसा धर्म जीव धारण करता है, तब ही मुक्तिका अचल सुख देख पाता है। ऐसा धर्म मुनियोंके द्वारा ही धारण किया जाता है। इस कारण अब अगली ढालमें उन मुनियोंकी करतूत (क्रिया) कही जाती है उसको सुनकरके हे भव्य प्राणी! अपनी अनुभूति पिछानो॥ १५॥

——:*:——

५०. श्रीमद्भट्टाकलंकदेव।

ईस्वीसन् ८०० के लगभग मान्यखेट नगरमें शुभतुंग नामका राजा था। उसका प्रधान मंत्री पुरुषोत्तम और उस मंत्रीके पद्मावती नामकी भार्या तथा अकलंक निष्कलंक नामके दो पुत्र थे। एक समय नंदीश्वर पर्वकी अष्टमीके दिन पुरुषोत्तम मंत्रीने जिनमंदिरमें जाकर अष्टाह्निकाके ८ दिनका रविगुप्तमुनिके निकट भार्यासहित ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया। उस समय कौतुकसे अपने दोनों पुत्रोंको भी ब्रह्मचर्यव्रत दिलवा दिया।

जब ये दोनों भाई विवाह योग्य युवावस्थाको प्राप्त हुए और पिताने इनके विवाहकी चर्चा उठाई। तब दोनों भाइयोंने हाथ

जोड़कर माता पितासे प्रार्थना की कि, आपने तो हमें रविगुप्त-मुनिकी साक्षीसे ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कराया था, अब आप विवाहकी चर्चा क्यों चलाते हैं? पिता माताने कहा कि, उस समय तुम बच्चे थे, वह व्रत हमने कौतुकसे दिलाया था और सो भी केवलमात्र आठ दिनके लिये था। क्योंकि हमने भी तो उस समय ८ दिनका ब्रह्मचर्यव्रत लिया था। तब दोनोंने कहा कि कहीं व्रत ग्रहण करानेमें भी हंसीठट्ठा होता है? दूसरे आपने ८ दिनकी बात उस समय प्रगट नहीं की थी, हमने तो उसी समय यावज्जीव ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा करली थी। सो अब हम उसे तोड़ेंगे नहीं। मंत्रीने इसप्रकार पुत्रोंकी व्रतकी दृढ़प्रतिज्ञा देख विवाहकी चर्चा छोड़ उन दोनों भाईयोंको बड़े २ विद्वान् उपाध्यायोंकी सेवामें रखकर जिनधर्म व संस्कृतविद्याका पूर्णतया अभ्यास कराया जिससे वे दोनों भाई बालकपनमें ही अद्वितीय विद्वान् हो गये।

उस समय इस आर्यावर्त्तमें बौद्धधर्मकी बड़ी उन्नति थी। ऐसे बहुत ही कम विद्वान थे, जो बौद्धाचार्योंके सामने वाद विवादमें ठहर सकें। बौद्धोंने अनेक राजावोंको भी अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया था, और राजाका जो धर्म होता है वही प्रायः प्रजाका हुआ करता है, इस कारण इस भारतवर्षके प्रायः सबही देशमें बौद्धधर्मका प्रबल प्रताप विस्तृत था। उस समय उन धर्मवत्सल दोनों भाइयोंने विचार किया कि, अपन दोनों बौद्ध-शास्त्रोंका पठन करके बौद्धमतसे परिचित होनेपर बौद्धोंके धर्माभिमानी पंडितोंको वादविवादमें परास्त करके इस देशसे

बौद्धधर्मका अभाव करें और सत्यार्थ उपदेश देकर सनातन पवित्र जैनधर्मका प्रभाव प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें बिठाकर "जैनं जयति शासनम्" की लोकोक्तिको चरितार्थ कर देवें तो अपना जन्म सफल समझें।

इसप्रकार विचार करके वे दोनों भाई महाबोधी स्थानमें (पटनेमें) बौद्धधर्म पढ़नेके लिये अतिशय अज्ञान बौद्धविद्यार्थी का वेप बनाकर गये। क्योंकि उस समय मान्याखेट नगरमें ऐसा कोई विद्वान् नहीं था जो उन्हें पढ़ा सकै। वहां जाकर प्रसिद्ध महाबौद्धपरिज्ञाता धर्माचार्यके शिष्य बनकर पढ़ने लगे। इनमेंसे अकलंक देव एकसंस्थ थे अर्थात् कैसा ही कठिन विषय वा श्लोक क्यों न हो, एकबार सुननेसे ही उनको हृदयस्थ (कंठाग्र) हो जाता था और निष्कलंक द्विसंस्थ थे अर्थात् वे दो बार सुननेसे हृदयस्थ करनेवाले थे। सो अल्प कालमें ही ये दोनों भ्राता बौद्धशास्त्रोंमें भी अतिशय प्रवीण हो गये।

एक समय वह बौद्ध गुरु पाठ्यग्रंथमें जैनधर्मके सप्तभंगी न्यायके पूर्वपक्षका व्याख्यान करता था। परंतु पाठ अशुद्ध होनेसे लगता नहीं था. इसलिये बहाना बनाकर आप पाठशालासे बाहर टहलने लगा। उस समय अकलंक देवने उस अशुद्ध पाठको सुधार दिया। परन्तु ऐसी चतुराईसे सुधारा कि पास के बैठे हुए बौद्धविद्यार्थियोंको कुछ भी भान नहिं होने दिया। जब कुछ समयके पश्चात् बौद्धगुरुने आकर पुस्तकको देखा तो किसी महाविद्वानने वह पाठ शुद्ध कर दिया है, यह देखनेसे उसे निश्चय हो गया कि कोई भी धूर्त्त जैनी विद्वान् हमारे धर्म

को विध्वंस करनेकी इच्छासे बौद्धविद्यार्थीका वेष बनाकर हमारे धर्मको जाननेके लिये आया है। सो उसका पता लगाकर उसे शीघ्र मरवा डालना चाहिये, नहीं तो हमारे धर्मको बड़ी हानि पहुंचावेगा।

ऐसा विचार कर उसने नानाप्रकारसे सब विद्यार्थियोंकी परीक्षा की, परन्तु वे दोनों भाई नहीं पहिचाने गये। अन्तमें सब विद्यार्थियोंके सो जाने पर अचानक ही कांस्यपात्रोंको पटक-कर बिजलीकासा भयंकर शब्द किया, जिससे सब विद्यार्थी चौंककर बुद्धदेवका स्मरण करने लगे। परन्तु जिनभक्त अक-लंक निष्कलंकके मुखसे 'णमो अरहंताणं' इत्यादि मंत्रका उच्चा-रण हो गया, जिससे बौद्धगुरुने उन दोनोंको पहिचान लिया कि—'ये ही दोनों जैन हैं. तत्पश्चात् राजासे उनकी शिकायत करके उन्हे पकड़वा दिया और राजाने रात्रिको सख्त पहरेमें रखकर प्रातःकाल ही शूलीपर चढ़ानेका हुकुम दे दिया।

अर्द्धरात्रिके समय निष्कलंकने अकलंकदेवसे कहा कि, भाई प्रातःकाल ही अपन दोनों मारे जांयगे, मुझे मरनेका तो भय रंचमात्र भी नहीं है। परंतु हमने जिस अभिप्रायसे महापरिश्रम करके विद्याध्ययन किया था, उससे जैनशासनका कुछ भी उपकार नहिं कर सके, इसी बातका मुझे अतिशय दुःख है। अकलंकने धैर्य देकर कहा कि, तुम इस संकटका कुछ भी भय मत करो। मैंने मन्त्रबलसे सबको निद्रावश कर दिया है। चलो इसी समय यहांसे निकल चलें। ऐसा विचारकर दोनों भाई कैदखानेसे निकल गये। किंतु जब पहरा बदला गया, तो भेद

खुल गया। कोटपालने उसी वक्त चारों ओर घुड़सवार दौड़ाये और उनको तत्काल ही शिरश्छेदन करनेका हुकुम दिया।

ये दोनों भाई अपने देशकी तरफ भागे जा रहे थे। सवेरा हो चला था, कुछ २ अंधेरा था। उस समय पीछेसे घोड़ोंकी टापें सुनाई दीं तो दोनों घबड़ाये। निष्कलंकने कहा कि—अब हम किसी प्रकार भी नहीं बच सकते। भाई तू बड़ा विद्वान् है। यदि तू जीता रहेगा तो अकेले ही जिनधर्म और समाजका बहुत कुछ कल्याण कर सकता है. सो मेरी समझमें तो तू झटपट इस तालावमें डूबकर बैठ जा। जहां तक बना मैं भी अपने बचनेका उपाय करूंगा। यह बात सुनकर अकलंकदेव त्वरित ही तालावमें डूबकर कमलपत्रोंसे अपना मुख ढककर महामंत्रका जप करने लगे। वहीं पर एक धोबीका लड़का खडा था। उसने इस प्रकारकी क्रिया देखकर निष्कलंकसे उसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि, इन घोड़ों पर शत्रुओंकी सेना आ रही है। मार्गमें जो मिलता उसीको मारती चली आती है। यदि तुझे अपने प्राण बचाने हों तो, भाग। यह बात सुनकर धोबी का लडका भी निष्कलंकके साथ भागने लगा। दैवयोगसे इस धोबीके लडकेकी सूरत सकल व कद भी अकलंक देवसे मिलता था, इसलिये घुडसवारोंने क्रोधके तीव्र वेगमें कुछ भी ध्यान न देकर त्वरित ही उन दोनोंको मार डाला और वहीं उन्हें गडवा दिया। इधर राजाने प्रातःकाल ही उनके मारनेकी खबर मंगाई, तो कोटवालने उनके भागने वगैरहका कुछ भी समाचार न भेजकर उनको मारडालनेकी सूचना कर दी।

तत्पश्चात् विघ्न टल जाने पर अकलंकदेव तालावसे निकले और विद्वान् भ्रातृवियोगका दुःख छोड़कर अपने देशको न आ कर अनेक देशोंमें धर्मोपदेश करते हुए विचरने लगे। उनकी विद्यामयी मूर्ति और लोकोपकारार्थ आनन्दसे भोगते हुए महा-परिश्रमको देखकर सब लोग उनको देवतुल्य समझते थे।

एक समय अकलंकदेव विहार करते २ कांची देशमें रत्न-संचयपुरके निकटवर्ती वनमें आकर ठहरे। उस नगरमें उस समय हिमशीतल नामक बौद्धधर्मी राजाका राज्य था, किन्तु उसकी प्रियतमा पट्टराणी मदनसुंदरी जिनभक्त थी।

जिस समय अकलंकदेव उस नगरके समीपवर्ती वनमें आये थे, उसी दिन फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको नंदीश्वर पर्वके महोत्सवका प्रारंभ था, सो मदनसुंदरी राणीने जिनेन्द्र भगवान् की रथयात्राका उत्सवपूर्वकमहान् पूजन विधानका प्रारंभ किया था। परंतु राजगुरु संघश्री बौद्ध साधुने राजासे कहकर रथ-यात्राके उत्सवको अटका दिया और मदनसुंदरीको कहला भेजा कि—"जबतक संघश्रीको वादविवादमें कोई जैनी विद्वान् नहिं जीत लेगा, तबतक जिनेन्द्रका रथ इस नगरमें नहीं चल सकता तब मदनसुंदरी सचिंत हो सब मंदिरोंमें गई, परन्तु उस समय कहीं पर भी संघश्रीको जीतनेवाले किसी विद्वान् वा मुनिके दर्शन नहीं हुए। तब निरुपाय होकर उसने जिनेन्द्र भगवानके सन्मुख प्रतिज्ञा की कि "जब तक जिनरथयात्रा निर्विघ्नताके साथ न होगी, तब तक मेरे अन्नजल ग्रहण करनेका त्याग है" इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वह जिनेन्द्र भगवानके सन्मुख ही बैठ

-कर महामंत्रका जाप करते २ ध्यानमें मग्न हो गई। उसी रात्रि-को चक्रेश्वरी देवीका आसन कम्पायमान हुआ और तत्काल ही उसने रानीके पास आकर उसे सूचना दी कि, "हे मदनसुंदरी! तू चिंता मत कर, प्रातःकाल ही इस नगरके समीप पूर्वकी तरफ अनेक शिष्योंसहित अकलंकदेव पधारेंगे, सो वे धर्म-सम्बन्धी वाद विवाद करके तेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे"। यह सूचना पाकर रानी प्रातःकाल ही पूर्वकी तरफ गई तो अकलंक-देवके पवित्र दर्शन हुए और प्रार्थना करके आनंदोत्साहके साथ नगरके मंदिरमें ले आई. और रथके अटकानेका वृत्तांत सुनते ही अकलंकदेवने राजसभामें जाकर त्वरित ही संघश्रीको वादमें परास्त करके गर्वरहित किया। परन्तु उस सभाके समस्त सभासद विद्वान् बौद्धधर्मावलंबी होनेसे पक्षपातपूर्वक बोले कि, अभी वाद समाप्त नहीं हुआ है, कल फिर भी वाद होना चाहिये। अकलंकदेवने कहा कि—'बहुत ठीक एक दिन ही नहीं बल कि, छह महीने तक मैं वाद करनेको तैयार हूं।'

तत्पश्चात् दूसरे दिन संघश्रीने अपने मतकी तारादेवीको आराधना करके उसको परदेके भीतर एक मट्टीके घड़ेमें स्थापन किया और तारादेवीने संघश्रीकी बोली बनाकर अकलंक-देवसे वाद करना स्वीकार किया। इसकारण संघश्रीने भी वहीं बैठकर वादकी सूचना दी कि—मैं परदेमें बैठकर वाद करूंगा। अकलंकदेवने 'तथास्तु' कहकर वाद करना प्रारंभ किया। पर-देमेंसे तारादेवी प्रश्न करती थी, उन सबका उत्तर और खंडन अकलंकदेव बराबर करते जाते थे और जिनमतकी जय होती

जाती थी। परन्तु परदेकी प्रश्नावली ६ महीने तक होती रही. किसीकी भी हार जीत नहीं हुई। अकलंकदेवके मनमें आश्चर्य हुआ कि, जो संघश्री मेरे सन्मुख क्षणभर भी नहिं ठहर सकता था, वह आज छह महीने हो गये, बराबर प्रश्न किये जाता है सो यह क्या भेद है, इसी चिन्तामें रात्रिको कुछ शयन किया। उस समय चक्रेश्वरी देवीने स्वप्न दिया कि हे विद्वन्! परदेमेंसे संघश्री प्रश्न नहिं करता है, किन्तु घड़ेमें स्थापन कियी हुई उसकी शासन देवता तारा देवी तुम्हारे साथ विवाद करती है। कल जब आप उसके किये हुए प्रश्नको फिरसे पूछेंगे, तो वह चुप हो जायगी। क्योंकि उसने एक बार प्रश्न किये हुए वाक्यको दूसरी बार न बोलनेकी प्रतिज्ञा की है। सो वह चुप हो जायगी और आपकी जीत होगी।

इसप्रकार गूढ़ रहस्यको जानकर अकलंकदेवने प्रातःकाल ही सभामें उपस्थित होकर राजा और समस्त विद्वानोंसे सिंहगर्जनाके साथ कहा कि—आज छह महीने पर्यन्त जो मैंने वाद-विवाद किया, सो केवल मात्र जिनशासनका प्रभाव दिखानेके लिये किया था परन्तु आज मैं इस वादको समाप्त कर देता हूं। ऐसा कहकर परदेकी ओर देखा, तो परदेसे त्वरित ही एक प्रश्न हुआ, बस उसे सुनकर अकलंकदेवने कहा कि, एकबार प्रश्नको फिरसे कहो। फिर क्या था, तारादेवीसे बोला नहिं गया, अकलंकदेवने परदेमें जाकर उस घड़ेपर लात जमादी। जिससे वह घड़ा फूट गया और तारादेवी भाग गई। तब उस संघश्रीसे कहा कि, बोलता क्यों नहीं? परन्तु उसने विद्वानोंकी भरी सभा

में हाथ जोड़कर कहा कि,-"भगवन्! मेरी क्या सामर्थ्य है? जो आपसे विवाद करूं? आज छह महीने तक जो वाद चला, वह घड़ेमें बैठी तारा देवीके साथ चलता था। धन्य है आपकी विद्वत्ता और जैनशासनको जो देवीसे भी आप निरुत्तर न हुए' इत्यादि वचनोंके सुनते ही प्रत्येक मनुष्यके मुखसे जिनशासनकी जयध्वनि हुई। अनेक विद्वान् बौद्धधर्मको छोड़कर जिनधर्माव-लंबी हो गये। हिमशीतल राजा भी परम जिनभक्त हो गया और उसी दिनसे रथयात्राका महोत्सव बड़ी धूमधामके साथ किया गया, जिससे जैनधर्मकी अतिशय प्रभावना हुई। उस नगरके प्रायः सबही लोग जैनमतावलंबी हो गये। इसी प्रकार अकलंक देवने अनेक बौद्ध विद्वानोंके साथ वादविवाद करके जिनमतकी बड़ी भारी उन्नति की।

यह घटना ईस्वी सन् ८५५ की है। इससे पहिले बौद्ध लोग बनारस गयाजीकी तरफसे कांची देशमें ईस्वी सनके तीसरे शतकमें आये थे, अर्थात् ५०० वर्षसे वहां पर बौद्धधर्मका प्रचार हो रहा था, सो उसको अकलंकदेवने वादविवादके द्वारा बदल कर वहां पर जैनधर्मका प्रचार कर दिया। इसीसे अनुमान करना चाहिये कि, अकलंकदेवका ज्ञान-विभव कैसा था। इस ज्ञान-विभवके प्रभावसे ही इन्हें 'भट्ट' की पदवी मिली थी। अर्थात् इनको स्वमती परमती समस्त ऋषि मुनि व विद्वजन 'भट्टाकलंकदेव' कहने लगे थे।

ये भट्टाकलंकदेव समस्त ही विषयोंके पारंगत विद्वान् थे। तथापि न्याय-विषयमें इनका प्रेम अधिक था। इस कारण इनके

बनाये हुये बृहत्त्रयी, लघुत्रयी, न्यायचूलिका, आप्तमीमांसा भाष्य, आदि न्यायके ग्रंथ ही विशेष प्रसिद्ध हैं। राजवार्त्तिकालंकार भी इनहीका बनाया हुआ है।

ये भट्टाकलंक समस्त विषयोंके दिग्गज विद्वान् थे। इसका एक प्रमाण और भी मिलता है। वह यह है कि, एकबार आपने साहसतुंग राजाकी सभामें जाकर दो श्लोक[1] कहे थे, जिनका भावार्थ यह है, कि, "हे साहसतुंग राजन्! यद्यपि इस जगत में श्वेतछत्रके धारी अनेक राजा हैं, परन्तु तुझ सरीखे रण-विजयी दानशूर राजा बहुत दुर्लभ हैं। इसी प्रकार हे राजन्! इस जगतमें पंडित, कवि, वाग्मी, वादी अनेक हैं, परंतु मेरे समान अनेक शास्त्रोंके विचारमें चतुरबुद्धि और समस्तवादी पंडितोंका गर्व दूर करनेमें समर्थ प्रसिद्ध विद्वान कोई भी नहीं है। इस तेरी सभामें अनेक संत महंत विद्यमान हैं। यदि उनमें

---

१ "राजन्! साहसतुंग संति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न संति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नानाशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः॥ १॥
राजन्! सर्वारिदर्पप्रविदलनपटुस्त्वं यथात्र प्रसिद्धस्
तद्वत्ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिलमदोत्पाटने पण्डितानां।
नो चेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा संति संतो महांतो
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेषशास्त्रो यदि स्यात्॥ २॥

श्रवणवेलगुलके शिलालेखोंमेंसे उद्धृत।

कोई सर्वशास्त्रमें निपुण हो, तो मेरे सामने आवे, यह मैं विवादार्थी खड़ा हूं!"

इन स्वगर्व प्रकाशक दो श्लोकों परसे ही अकलंकदेवकी विद्वत्ता प्रगट होती है ऐसा नहीं है। इनके बनाये हुए न्यायके ग्रंथ ही ऐसे अपूर्व और विलक्षण हैं कि, उनको देखनेसे हर एक नैयायिक विद्वान् उनकी विद्वत्ताको पूज्यदृष्टिसे स्मरण करने लगता है।

---

५१. जीवोंके विशेषभेदादि।

१। मनुष्य, चार प्रकारके हैं। आर्य, म्लेच्छ, भोगभूमिज और कुभोगभूमिज।

२। देव चार प्रकारके हैं। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

३। भवनवासीदेव दश प्रकारके हैं, असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, दीपकुमार, दिक्कुमार,

४। व्यंतरदेव आठ प्रकारके हैं,—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच। भवनवासी और व्यंतरदेव पहिली पृथिवीके खरभाग और पङ्कभाग तथा तिर्यक् लोकमें रहते हैं।

५। ज्योतिष्कदेव पांच प्रकारके हैं-सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र

और तारे। ज्योतिष्कदेव पृथिवीसे सातसौ नव्वे योजनकी ऊं-चाईसे लगाकर नौसौ योजनकी ऊंचाई तक अर्थात् एकसौ दश योजन आकाशमें एक राजूमात्र तिर्यक् लोकमें रहते हैं।

६। वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतके भेदसे दो प्रकारके हैं जिनमें इंद्रादिकोंकी कल्पना है उनको कल्पोपपन्न कहते हैं और जिनमें इंद्रादिककी कल्पना न हो ऐसे नवग्रैवेयकादि में रहनेवाले देव कल्पातीत कहाते हैं।

७। कल्पोपपन्न देव सोलह प्रकारके हैं—सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

८। कल्पातीतदेव २३ प्रकारके हैं—जो कि नवग्रैवेयक, नव अनुदिश, पांचपंचोत्तर (विजय. वैजयन्त जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) इन तेईसविमानोंमें रहते हैं।

९। नारकी जीव अधोलोककी सात पृथिवियोंमें रहनेवाले सात प्रकारके हैं। रत्नप्रभा (धर्मा) शर्कराप्रभा (वंशा) वालु-काप्रभा (मेघा), पंकप्रभा (अंजना), धूमप्रभा (अरिष्टा), तमप्रभा (मघवी), महातमप्रभा (माघवी)।

१०। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्वलोकमें रहते हैं। बादर एकें-द्रिय किसी आधारका निमित्त पाकर यत्र तत्र निवास करते हैं। त्रसजीव त्रसनालीमें (जो कि चौदह राजू ऊँची एक राजू लंबी चौड़ी होती है) रहते हैं। विकलत्रय जीव कर्मभूमि और अंत के आधे द्वीप तथा अंतके स्वयंभूरमण समुद्रमें ही रहते हैं।

११। पंचेंद्रिय जीव तिर्यक् लोक में रहते हैं परन्तु जलचर

तिर्यंच लवणसमुद्र कालोदधि समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्रके सिवा अन्य समुद्रोंमें नहीं हैं।

१२। मेरुसे नीचे सात राजू अधोलोक है। मेरुके ऊपर लोकके अन्त पर्यन्त उर्ध्वलोक है। और एक लाख चालीस योजन * मेरुकी ऊंचाईके बराबर मध्य लोक है। मध्यलोकके अत्यंत वीचमें एक लाख योजन चौड़ा गोल थालीकी तरह जंवूद्वीप है। जंवूद्वीपके वीचमें एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है जिसका एक हजार योजन जमीनके भीतर मूल है। निन्याणवे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है और चालीस योजन की चूलिका (चोटी) है। जंवूद्वीपके वीचमें पश्चिम पूर्वकी तरह लंवे छह कुलाचल पर्वत पड़े हुये हैं। जिनसे जंवूद्वीपके सात खंड होगये हैं इन सातो खंडोंके नाम इस प्रकार हैं, भरत १ हैमवत २, हरि ३ विदेह ४, रम्यक ५, हैरण्यवत ६ और ऐरावत ७। और ६ पर्वतोंके नाम इस प्रकार हैं-हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी। विदेहक्षेत्रमें मेरुसे उत्तर की तरफ उत्तरकुरु और दक्षिणकी तरफ देवकुरु नामकी दो भोगभूमि हैं। जंवूद्वीपके चारों तरफ खाईकी तरह वेढ़े हुये दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवणसमुद्रकी चारों तरफ वेढ़ा हुवा चार लाख योजन चौड़ा धातकीखंड नामका द्वीप है। इस धातुकीखंड द्वीपमें दो मेरु पर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादिकी सव रचना जंवूद्वीपसे दूनी है। धातुकी खंडको चारों तरफ वेढ़े हुये आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र है।

* यहां एक योजन दो हजार कोषका जानना।

और कालादोधिको वेड़े हुये सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्कर-द्वीप है पुष्करद्वीपके वीचों वीच वलयके आकार चौड़ाई पृथिवी पर एक हजार वाईस योजन वीचमें सातसौ तेईस योजन ऊपर चार सौ चौवीस योजन ऊंचा सतर सौ इकईस योजन और जमीनके भीतर चारसौ सवातीस योजन जिसकी जड़ है। ऐसा मानुषोत्तर नामा पर्वत पड़ा हुवा है जिससे पुष्कर द्वीपके दो खंड हो गये हैं। पुष्कर द्वीपके पहिले अर्द्धभागमें जंबूद्वीपसे दुनी २ अर्थात् धातकी खंडके बराबर सब रचना है। जंबूद्वीप धातुकीखंडद्वीप, पुष्करार्धद्वीप, तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको नरलोक कहते हैं। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एक दूसरेको वेड़े हुये दुने २ विस्तारवाले मध्य-लोकके अन्त तक असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। पांच मेरु सम्बन्धी पांच भरत, पांच ऐरावत, पांच देवकुरु पांच उत्तर कुरुको छोड़ कर पांच विदेहक्षेत्र इस प्रकार सब मिलकर १५ तो कर्मभूमि, पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दश क्षेत्रोंमें जघन्य भोग-भूमि है। और पांच हरि और पांच रम्यक इन दश क्षेत्रोंमें मध्य-मभोग भूमि हैं और पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु इन दश क्षेत्रोंमें उत्तम भोगभूमि हैं। जहांपर असि, मषि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन षट् कर्मोंकी प्रवृत्ति हो, उसको कर्म-भूमि कहते हैं। जहां इनकी प्रवृत्ति न हो, उसको भोगभूमि कहते हैं। मनुष्य क्षेत्रसे वाहरके समस्त द्वीपोंमें जघन्य भोग-भूमि कीसी रचना है। किंतु अंतिम स्वयंभूरमण द्वीपके उत्त-रार्धमें तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी

चारों पृथिवियोंमें कर्मभूमि कीसी रचना है। लवणसमुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तर्द्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमि कीसी रचना है। वहां मनुष्यही रहते हैं। उनमें मनुष्योंकी आकृतियें नाना प्रकारकी कुत्सित है।

१३। संसारमें समस्त प्राणी सुखको चाहते हैं और अहो-रात्र सुखका ही उपाय करते हैं परंतु सुखकी प्राप्ति नहिं होती इसका कारण यह है कि संसारी जीव असली सुखका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय न तो जानते हैं और न उसका साधन करते हैं इस लिये असली सुखको भी प्राप्त नहिं होते।

१४। आल्हाद स्वरूप जीवके अनुजीवी गुणको असली सुख कहते हैं। यही जीवका खास स्वभाव (धर्म) है। परंतु संसा-री जीवोंने भ्रमवश साता वेदनीय कर्मके उदय जनित उस असलीसुखकी वैभाविक परिणतिरूप साता परिणा:को ही सुख मान रक्खा है। कर्मोंने उस असली सुखको घात रक्खा है इस कारण असली सुख नहिं मिलता। संसारी जीवको असली-सुख मोक्ष होने पर ही मिल सकता है।

१५। आत्मासे समस्त कर्मोंके विप्रमोक्ष (अत्यंत वियोग) होनेको मोक्ष कहते हैं। मोक्ष प्राप्तिका उपाय संवर और निर्जरा है।

१६। आस्रवके निरोधको संवर कहते हैं। अर्थात् अना-गत (नवीन) कर्मोंका आत्माके साथ सम्बंध न होनेका नाम संवर है।

१७। आत्माका पूर्व संवन्ध हुये कर्मोंसे सम्बंध छूट जाने को निर्जरा कहते हैं।

१८। आत्माके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों गुणोंकी पूर्ण एकता ही संवर और निर्जरा होनेका उपाय है।

—:*:○:*:—

५२. पात्रकेशरी वा विद्यानंद।

भारतवर्षमें मगध नामका एक देश है। उसके अंतर्गत एक अहिछत्र नामका सुंदर शहर था। उस नगरका राजा अवनिपाल बडा गुणी था समस्त राजविद्या आदि विद्याओंका पंडित था। अपने राज्यका पालन अच्छी रीतिके साथ करता था। उस नगरमें पांच सौ विद्वान ब्राह्मण रहते थे जो कि राजसभामें या राज्यकार्यमें बड़ी सहायता दिया करते थे उन सबमें प्रधान समस्त विद्याओंका पारगामी पात्रकेशरी नामका दिग्गज वैदिक विद्वान् था।

एक दिनकी बात है कि—वह विद्वान उन पांचसौ शिष्यों सहित राजाके यहां जाता था। मार्गमें एक पार्श्वनाथ भगवानका मंदिर था उसे देखनेको गया। वहां पर चारित्रभूषण नामके एक मुनि भगवानके सन्मुख देवागमस्तोत्र पढ़ रहे थे सो पात्रकेशरी विद्वानने शेषका भाग सुना जब मुनिमहारज सब पढ़ चुके तब वह मुनिसे बोला कि—हे मुने! तुम्हें इसका अर्थ भी आता है कि नहीं? मुनिने कहा कि मुझे अर्थ नहीं आता। पात्रकेशरीने कहा कि—इसे फिरसे आरंभसे अंत तक पढ़ जावो

तौ मुनिने धीरे धीरे देवागमस्तोत्रको फिरसे पढ़ा। आद्योपांत सुननेसे पात्रकेशरीको वह स्तोत्र याद हो गया। सो वे उस स्तोत्रका अर्थ विचारने लगे विचारते २ उनको दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयोपशम होनेसे विश्वास (श्रद्धान) हो गया कि-जिनेंद्र भगवानने जो जीवादि पदार्थोंका स्वरूप कहा है वही सत्य है। अन्य सब मिथ्या है। इसके वाद फिर वे अपने घर पर जाकर वस्तुका स्वरूप भले प्रकार विचारने लगे। सब दिन उनका इसी तरह विचारमें वीता, रातको भी उनका यही हाल रहा। उन्हें निश्चय हो गया कि, सब पदार्थ ठीक समझे गये हैं। इसी मतसे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। परंतु एक संदेह रह गया कि—जिनमतमें अनुमान प्रमाणका लक्षण कहा नहीं गया। सो क्यों? यह संदेह दूर हो जाय तो वस कलसे जैनधर्मानुयायी ही वन जाऊंगा। इसी वीचमें पद्मावती देवीका आसन कंपायमान हुआ और वह देवी तुरंत ही वहां आई और कहने लगी कि—आपको जैनधर्मके पदार्थमें जो संदेह हो गया है उसकी चिंता नहीं करें। आप प्रातःकाल पार्श्वनाथ भगवानके दर्शनार्थ आवेंगे तौ आपका सव संदेह दूर हो जायगा और वहींपर आपको अनुमान प्रमाणका स्वरूप मिल जायगा। इसप्रकार कह कर देवी चली गई और मंदिरमें जाकर पार्श्वनाथके फनके ऊपर एक श्लोक लिख कर वह अपने स्थान चली गई वह श्लोक यह था।

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र यत्र त्रयेण किं ।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥

प्रातःकालही जब पात्रकेशरी मंदिरमें आकर पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमाका दर्शन करने लगे तो फणके ऊपर लिखा श्लोक देखकर बड़े प्रसन्न हुये सब संदेह दूर हो गया। और जैनधर्मके सच्चे श्रद्धानी हो गये एवं घरपर अन्य सब छोडकर एकमात्र जैनधर्मके ग्रन्थोंपर ही विचार करने लगे। ऐसा देखकर अन्य सब विद्वान कहने लगे कि—यह क्या बात है? आजकल न्याय, वेदांत, मीमांसा आदि ग्रंथोंको छोडकर एकमात्र जैनधर्मके ग्रंथोंको ही क्यों देख रहे हैं? तब पात्रकेशरीने कहा कि, आपलोगोंको अपने वेदोंपर ही विश्वास है। इसलिये आपकी दृष्टि सत्यकी तरफ ही नहीं जाती। परंतु मेरा विश्वास आपसे उलटा है। मुझे वेदोंपर विश्वास न होकर जैनधर्मपर विश्वास है। जैनधर्म ही मुझे संसारमें सर्वोत्कृष्ट दीखता है। मैं आपलोगोंको भी आग्रहसे कहता हूं कि—आप विद्वान हैं सत्य झूठकी परीक्षा कर सकते हैं। इसलिये जो मिथ्या हो उसे छोड़कर सत्यको ग्रहण कीजिये। ऐसा धर्म एकमात्र जिनधर्म ही है और ग्रहण करने योग्य है।

पात्रकेशरीके इस उत्तरसे ब्राह्मणविद्वानोंको संतोष नहीं हुआ। वे इसके विपरीत शास्त्रार्थ करनेको तैयार हो गये और राजाके पास जाकर आपसमें शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की। राजाने पात्रकेशरीको राजसभामें बुलाया और शास्त्रार्थ कराया पात्रकेशरीने समस्त ब्राह्मणविद्वानोंको पराजित करके संसार-

पूज्य और समस्त प्राणिओंको सुख देनेवाले जिनधर्मका बड़ा भारी प्रभाव प्रगट किया।

उनने एक जिनस्तोत्र बनाया था जिसका नाम आप्तपरीक्षा स्तोत्र कहा जाता है। उसमें जिनधर्मके तत्त्वोंका विवेचन और अन्यमतके तत्त्वोंका बड़ेभारी पांडित्यके साथ खंडन किया गया है। उसका पठन पाठन सबके लिये सुखका कारण है। पात्रकेशरीके श्रेष्ठ गुणों और बड़े बड़े विद्वानों द्वारा आदर सत्कार देख कर अवनिपाल राजाने तथा उन पांचसौ विद्वान ब्राह्मणोंने मिथ्यामतको छोड़कर शुभभावोंके साथ जैनमतको ग्रहण किया।

तत्पश्चात् ये पात्रकेशरी मुनिदीक्षा लेकर विद्यानंद वा विद्यनंदी नामसे प्रसिद्ध हुये। आचार्य पद प्राप्त होकर न्यायके प्रमाण परीक्षा पत्रपरीक्षा आदि अनेक ग्रंथ बनाये तथा देवागमस्तोत्र पर भगवान अकलंकदेवकृत आप्तमीमांसा टीका पर अष्टसहस्त्री नामकी बडी भारी टीका रची है। जिसके पांडित्यको देखकर बड़े २ विद्वान चकरा जाते हैं इसके सिवाय—भगवत्समंतभद्राचार्यकृत युक्तयनुशासन आदि ग्रंथोंपर भी टीकायें लिखी हैं ये विद्यानंद स्वामी भट्टाकलंक देवके पश्चात् हो गये हैं।

———:o:———

५२. छहढाला सार्थ—छठी ढाल।

हरिगीता छंद, मात्रा २८।

षटकाय जीव न हननतैं सब,-विध दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी॥

जिनके न लेश मृषा न जल तृण, हू विना दीयो गहैं।
अठदश सहस विधि शीलधर, चिद्ब्रह्ममें निन रमि रहैं॥

मुनियोंके षट्कायके जीवोंकी हिंसाका त्याग होनेसे सर्वप्रकार की द्रव्य हिंसा छूटगई। और रागद्वेष मोहादि भावोंके दूर होने से भाव हिंसा भी नहीं होती। इसके सिवाय लेशमात्र भी असत्यवचन नहिं बोलते और विना दिया एक तृण भी नहिं ग्रहण करते और अठारह हजार दूषण रहित ब्रह्मचर्यको धारण करते हुये चिद्ब्रह्ममें ही हमेशह मग्न रहते हैं॥१॥ इसके सिवाय

अंतरचतुर्दश भेद बारह संग दशधातें टलैं।
परमाद तजि चौ कर मही लखि समिति ईर्यातैं चलैं॥
सुजग हितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरैं।
भ्रमरोग-हरजिनके वचन, मुखचन्द्रतैंअमृत झरैं॥ २॥

अंतरंग चौदह और वाह्यके दश परिग्रह रहित हैं इसप्रकार पांच महाव्रत पालते हैं। तथा परमाद रहित हो चार हाथ परिमाण मार्ग देखकर चलते हुए ईर्यासमिति पालते हैं। सबके हित करनेवाले और अहित हरनेवाले कानोंको प्रिय संशयके हरने व भ्रमरोग हरनेवाले मुखरूपी चंद्रमासे अमृतकी समान वचन उच्चारणकर भाषा समितिका पालन करते हैं॥ २॥

छयालीस दोष बिना सुकुल श्रावक तणे घर असनको।
लैं, तप बढावन हेत नहिं तन, पोखते तजि रसनको॥
शुचि ज्ञान संजम उपकरन, लखिकैं गहैं लखिकें धरैं।
निर्जंतु थान बिलोक, तनमल मूत्रश्लेषम परिहरैं॥ ३॥

तथा छियालीस दोष टालकर कुलीन श्रावकके घर तप बढ़ानेके लिये तनको पुष्ट नहीं करनेवाले नीरस आहार लेकर एषणा समिति पालन करते हैं। और पवित्र ज्ञान और संयमके उपकरण शास्त्र और पीछी कमंडलुको देखकर उठाते और धरते हुये आदाननिक्षेपण समिति पालते हैं और जीवरहित स्थानको देखकर मलमूत्रादि क्षेपण करके व्युत्सर्ग समिति पालते हैं॥ ३॥

सम्यक प्रकार निरोधि मनवचकाय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग गन, उपल खाज खुजावते॥
रसरूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध, पंचेंद्रिय जयनपद पावने॥ ४॥

इसके सिवाय मनवचकायको भले प्रकार वश करके तीन गुप्तिका पालन करते हुये आत्माका ध्यान करते हैं। जिनको ध्यानमें निश्चल पत्थर समान देखकर हिरण अपनी खाज खुजावते रहते हैं। और पंचेंद्रियोंके विषयोंमें अर्थात् स्वाद लेने-रूप देखने, गंध लेने, स्पर्शन करने वा शब्द सुननेमें वा सुहावने असुहावने पदार्थोंमें रागद्वेष छोड़कर पांचों इंद्रियोंको जय करके पंचेंद्रिय जयन पदको पाते हैं॥ ४॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वंदना जिनदेवको।
नितकरैं श्रुतरति धरैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेवको॥
जिनके न न्हौन न दंत धोवन, लेश अंबर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु, शयन एकासन करन॥ ५॥

इनके सिवाय मुनिमहाराज त्रिकाल सामायिक करते हैं भगवान्‌को स्तुति वन्दना करते हैं स्वाध्याय, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग करते हैं तथा स्नान करना, दन्त धावन नहीं करके नग्नमुद्रा धारण करते हुये पिछली रातमें थोडोसी देर एकही करवट शयन करते हैं ॥ ५ ॥

इक वार दिनमें लें अहार, खडे अलप निज पानमें।
कचलोंच करत न डरत परिसह,-सों लगे निज ध्यानमें ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, काच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन असिमहारन, में सदा समता धरन ॥ ६ ॥

तथा मुनिगण दिनमें एकवार खड़े होकर हाथमें ही आहार करते हैं। वालोंको हाथसे उपाडते (केशलोंच करते) हैं। परिसहोंसे न डरकर निजध्यानमें लगे रहते हैं। इस प्रकार पांच महाव्रत पांच समिति पांचों इन्द्रियोंका विजय छह आवश्यक और नग्नता आदि सात, कुल अठाईस मूल गुण पालन करते हैं। इनके सिवाय शत्रु, मित्र, महल, मसान, सोना, काच, निंदा, स्तुति, पूजा करना तलवारसे मारने आदिमें समता रखते हैं ॥

तप तपैं द्वादस, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा।
मुनिसाथमें वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव सुख कदा ॥
यों है सकल संजम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै परकी प्रवृति सब ॥७॥

तथा मुनि महाराज बारह प्रकारके तप दश प्रकारके धर्म वा

रत्नत्रयका पालन करते हैं। विहार कभी तो अकेले ही करते कभी मुनियोंके साथमें करते हैं। सांसारिक सुखको कभी चाहते नहीं इस प्रकार मुनिका सकल चारित्र (व्यवहार चरित्र) वर्णन किया गया। अब निश्चय चारित्रको (स्वरूपाचरण चारित्रको) कहते हैं जिसके अपनी ज्ञानादि संपत्ति प्रगट होनेसे परवस्तु मैं समस्त प्रकारकी प्रवृत्ति मिट जाती है ॥ ७ ॥

जिन परमपैनी सुबुधिछैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भावको न्यारा किया ॥
निजमाहि निजके हेतनिजकर, आपको आपे गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञानज्ञेय-मझार कछु भेद न रह्यो ॥ ८ ॥
जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहां ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल दशा।
प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकैलशा ॥ ९ ॥

मुनिमहाराजने जब परम पैनी सुबुद्धिरूपी छैनीके द्वारा अपने अंतरंगका भेद किया तो वर्ण रस गंधादि २० गुणों व रागादि भावोंसे अपनेको न्यारा कर लिया तब अपनेमें ही अपने लिये अपने द्वारा अपने आत्माको आप ही ग्रहण करते हैं। तब गुण और गुणी, ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेयमें कुछ भी भेद नहिं रहता। आत्मध्यान अवस्थामें ध्यान ध्याता और ध्येयका कुछ भी भेद या विकल्प नहिं रहता है और न वचनसे जुदा २ कहनेका

ही भेद रहता है। क्योंकि इस अवस्थामें चेतन भाव ही तौ कर्म होता है चेतन ही कर्त्ता है और चेतना ही क्रिया है ये तीनों अभिन्न अखिन्न शुद्धोपयोगकी निश्चल दशा प्रगटी है। इस अवस्थामें दर्शन ज्ञान चारित्र तीन प्रकार का होते हुये भी एक ही हो जाते हैं॥ ९॥

परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभवमें दिखै।
दृग ज्ञान सुख बलमय सदा नहिं आन भाव जु मोविखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित पिंडचंड अखंड सुगुन करंडच्युत पुनि कलनितैं॥१०॥

इस प्रकार अनुभव दशामें (ध्यान अवस्थामें) प्रमाण नय निक्षेपका प्रकाश भी अनुभवमें नहिं आता किंतु उस समय आत्मा विचारता है कि मैं अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीर्यरूप हूं मुझमें दूसरा कोई भाव नही है, मैं ही साध्य हूं, मैं ही साधक हूं, तथा मैं ही कर्म व कर्मके फलसे रहित हूं। मैं चैतन्यका पिंड प्रचंड अखंड उत्तम गुणोंका पिटारा हूं॥ १०॥

यों चिंत्य निजमें थिरभये तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नागनरेंद्र वा अहमिन्द्रके नाही कह्यो॥
तब ही शुकलध्यानाग्निकरि चउघातिविधिकाननदह्यो।
सब लखौकेवल ज्ञान करि, भविलोकको शिवमगकह्यो ११

इस प्रकार विचार कर जब मुनिमहाराज आत्मध्यानमें लीन हो जाते हैं तब उन्हें जो अकथनीय (सुख) होता है वैसा

आनंद वा सुख न इन्द्रको मिलता है न नागेंद्रको वा चक्रवर्त्ती वा अहमिंद्रको मिलता है । उसी वक्त ही शुक्लध्यानरूपी अग्निसे चार घातिया कर्मरूपी वनको भस्म करके केवलज्ञानको प्राप्त करते हैं और उसके द्वारा तीनोंकालकी बातोंको जानकर भव्य पुरुषोंको मोक्षमार्गका उपदेश करते हैं ॥ ११ ॥

पुनि घात शेष अघातिविधि, छिनमाहि अष्टमभू वसैं ।
वसु कर्म विनसैं सुगुनवसु, सम्यक्त्व आदिक मत्र लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार, तिर तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुधचिद्रूप अविनाशी भये ॥१२॥
निजमाहिं लोकअलोक गुन, परजाय प्रतिबिंबित थये ।
रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परनये ॥
धन धन्य हैं जे जीव नर भव पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादी भ्रमण पंचप्रकार तजिवर सुख लिया ॥१३॥

तत्पश्चात् फिर आयु नाम गोत्र और अंतराय इन चारों अघातिया कर्मोंको छिन भरमें नष्ट करके मोक्ष चले जाते हैं। आठ कर्मोंका नाश होनेसे उनमें सम्यक्त्वादि आठ गुण प्रगट हो जाते हैं । मोह कर्मके नष्ट होनेसे तो सम्यक्त्व, ज्ञानावरणी कर्मके नाश होनेसे अनंतज्ञान, दर्शनावरणीय कर्मके नाश होनेसे अनंतदर्शन. अंतरायकर्मके नाश होनेसे अनंतवीर्य, आयुकर्मके नाश होनेसे अवगाहनत्वगुण, नामकर्मके नष्ट होनेसे सूक्ष्मत्व गुण, गोत्रकर्मके नष्ट होनेसे अगुरु लघुत्व और वेदनीय कर्मके

नाश होनेसे अव्याबाधत्व इस प्रकार आठगुण सिद्ध होनेपर हो जाते हैं। वे संसाररूपी अपार क्षार समुद्रसे पार उतर कर विकार, शरीर, और रूपरहित होकर शुद्ध चैतन्यमय अविनाशी सिद्ध हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जब सिद्ध हो जाते हैं तब अपनी आत्मामें लोक-अलोकके समस्त द्रव्योंके गुण पर्याय दर्पणकी माफक प्रतिबिंबित हो जाते हैं। मोक्षमें जैसें और सिद्ध हैं वैसे ये भी अनंतानंत काल पर्यंत रहैंगे। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने नर भव पायकर यह कार्य सिद्ध किया। ऐसे ही जीवोंने अनादिकालसे चले आये पंच परावर्त्तनरूप संसारको त्यागकर उत्तम सुखको प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

मुख्योपचार दुभेद यों बडभागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश जल जगमल हरैं।
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरो ॥
जबलों न रोग जरा गहै तबलौं, झटिति निजहित करो ॥
यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।
चिर भजे विषय कषाय, अब तौ त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो परपदमें न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब दौल होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ॥ १५ ॥

जो बडभागी इस प्रकार निश्चय व्यवहार दो भेदरूप चारित्रको धारण करते हैं वा धरैंगे वे मोक्षको पावैंगे। उनका सुयशरूपी जल जगतके मैलको हरैगा यह जानकरकें आलस्यरहित हो और अपने साहसपूर्वक यह उपदेश ग्रहण करो कि जब तक

रोग और बुढ़ापा नहिं आवे तब तक जल्दीसे अपना कल्याण कर डालो। क्योंकि रागरूपी आग सब जीवोंके हृदयमें सदासे जल रही है इस कारण समतारूपी अमृतका सेवन करना चाहिये। हे दौलतराम! चिरकालसे विषय कषाय सेवन किये अब तो इन सबको त्याग करके अपने निजपदको जान, जो तू पर वस्तुमें रुच रहा है सो यह पद तेरा नहीं है क्यों यह सब दुःख भोग रहा है। अब स्वपदमें रुचकर सुखी हो यह दाव (मोका) हरगिज नहीं खो देना ॥ १५ ॥

इक नव वसु इक वर्षकी, तीज सुकल वैशाख।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥ १ ॥
लघुधी तथा प्रमादतें, शब्द अर्थकी भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल ॥ २ ॥

पंडित दौलतरामजीने प० बुधजनकृत छहढालेको देखकर यह तत्त्वोपदेशमय छहढाला सम्वत् १८९१ मिती वैशाख सुदी तृतीयाको पूर्ण किया है। पंडितजी कहते हैं कि थोड़ी बुद्धि तथा प्रमादसे जो कहीं शब्द वा अर्थकी भूल हो गई हो तो सुधी पुरुष इसे सुधार कर पढें जिससे संसार-समुद्रका किनारा मिले ॥२॥

इति दौलतरामकृत छहढाला भाषानुवादसहित समाप्त।

५४. राखी पूर्णिमा।

——:※:——

अवन्ती देश उज्जयनी नगरीमें राजा श्रीवर्मा था। उसकी राणी श्रीमती थी। उसके बलि, बृहस्पति. प्रह्लाद और नमुचि ये ४ मंत्री थे। ये सब भिन्नधर्मी थे। उस नगरीके बाहर उद्यान में एक समय समस्त शास्त्रोंके जाननेवाले, दिव्यज्ञानी अकम्पनाचार्य सातसौ मुनिसहित पधारे। संघाधिपति आचार्य महाराजने संघके समस्त मुनि गणोंसे कह दिया कि, यहां राजा वगेरह कोई लोग आवें, तो किसीसे भी बोलना नहीं, सब मौन धारण करके रहना। नहीं तो संघको उपद्रव होगा।

उस दिन राजाने अपने महल परसे नगरके स्त्री पुरुषोंको पुष्पाक्षतादि लिये जाते हुये देखकर मंत्रियोंसे पूछा कि,—ये लोग विना समय किस यात्राके लिये जाते हैं? मंत्रियोंने कहा कि, नगरके बाहर नग्न दिगम्बर मुनि आये हुए हैं, उनकी पूजा के लिये ये सब जाते हैं। राजाने कहा कि—चलो अपन भी चलकर देखें कि वे कैसे मुनि हैं। तब राजा भी उन मंत्रियों सहित वनमें गया। वहां सबको भक्ति पूजा करते हुये देखकर राजाने भी नमस्कार किया परन्तु गुरुकी आज्ञानुसार किसी भी मुनिने राजाको आशीर्वाद नहीं दिया।

यह क्रिया देख राजाको कुछ क्षोभ और सन्ताप हुआ। तब मंत्रियोंने अवसर पाकर कहा कि—महाराज! ये सब मूर्ख बलीवर्द्ध हैं, इनको बोलना नहीं आता है, इसी कारण छलसे

सबने मौन धारण कर लिया है। इत्यादि निंदा व हास्यादि करके मंत्रीगण राजाके साथ नगरको ओर लौटे, किंतु मार्गमें उसी संघके श्रुतसागर नामके मुनि नगरीसे चर्या करके वनको आते थे। उनको सम्मुख देखकर उन चारों मंत्रियोंने कहा कि देखिये महाराज! यह भी एक तरुण बलीवर्द्द पेट भरके आ रहा है। श्रुतसागर मुनिने इस पर मंत्रियोंको अच्छा मुंहतोड़ जवाब दिया और पीछे विवाद करके राजाके सम्मुख ही उन्हें अनेकांत वादसे हरा दिया। जिससे कि, वे बड़े लज्जित हुए। पीछे संघमें पहुंच कर श्रुतसागरने आचार्य महाराजको यह सब वृत्तांत कह सुनाया। आचार्य महाराजने कहा कि, तुमने बहुत बुरा किया। समस्त संघपर तुमने बड़ी भारी विपत्ति ला दी। अस्तु; अब प्रायश्चित्त यही है कि, तुम उसी वादकी जगह पर जाकर कायोत्सर्ग पूर्वक ठहरो और जो जो उपसर्ग आवें उन्हें सहन करो। आज्ञा पाकर श्रुतसागरने ऐसा ही किया। और रात्रिको वे चारो मंत्री समस्त संघको मारनेका संकल्प करके आये। परंतु मार्गमें अपने असली शत्रु श्रुतसागर मुनिको देखकर ये चारोंके चारों खड्ग लेकर पहिले उसीपर टूट पडे। किंतु उस जगहके वन देवतासे यह अन्याय देखा नहीं गया। इसलिये उसने मुनिको मारनेके लिये हाथमें तलवार उठाये हुए उन चारों मंत्रियोंको जहांका तहां कील दिया—अर्थात् वे चारो पत्थर जैसे हो गये और मुनिको नहीं मार सके। प्रातःकाल ही यह वृत्तांत राजाने सुना तो उसने उन चारोंका काला मुँह करके और गधेपर सवार करके देशसे निकाल दिया।

वे चारो मंत्री कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके राजा पद्मसे जाकर मिले और उसके मंत्री हो गये। उस समय उस नगर पर कुंभपुरका राजा सिंहवल चढ़ आया था, सो उन चारोंमेंसे वलि नामक मंत्री अपनी चतुराईसे उस सिंहवल राजा को हराकर पकड़ लाया, तव पद्मराजाने खुश होकर वलिको मनवांछित वर मांगनेका वचन दिया। वली मंत्रीने कहा कि, मेरा वर इस समय जमा रहै, जब मुझे आवश्यकता होगी तव याचना करूंगा। राजाने तथास्तु कहकर स्वीकार किया।

इसके पश्चात् कुछ दिनोंमें वे ही अकम्पनाचार्य अपने सात-सौ मुनियोंके संघसहित हस्तिनापुरके वनमें आये, तव वलिने यह वात जानकर उन मुनियोंको मारनेकी इच्छासे राजासे अपना वह पुराना वर मांगा कि, मुझे सात दिनका राज दीजिये। राजा पद्म, सात दिनके लिये वलिको राजा वनाकर आप अपने राजमहलोंमें रहने लगा।

वलिने आतापन नामक पर्वत पर कायोत्सर्गसे ध्यान करते हुये मुनियोंको मारनेके लिए वहींपर नरमेध 'यज्ञका प्रारंभ किया। उनके निकट वकरे वगेरहोंका हवन करके उसकी दुर्गंधसे वड़ा कष्ट पहुंचाया यहां तक कि अनेक मुनियोंके उस दुर्गंधित धुंए-से गले फट गए और अनेक वेहोस हो गये।

इसी समयमें मिथिलापुरीके निकट एक वनमें श्रुतसागर चंद्राचार्य महाराजने अर्द्धरात्रिके समय श्रवण नक्षत्रको कंपाय-मान देखकर अवधिज्ञानसे विचारकर खेदके साथ कहा कि— 'महामुनियोंको महान् उपसर्ग हो रहा है' उस समय पास वैठे

पुष्पदंत नामक विद्याधर क्षुल्लकने पूछा कि, 'भगवन्! कहां पर किन २ मुनिमहाराजोंको उपसर्ग हो रहा है? तब आचार्य महाराजने हस्तिनापुरके वनमें अकंपनाचार्यादिके उपसर्गका समस्त वृत्तांत कहा। क्षुल्लक महाराजने पूछा कि—इस उपसर्गके दूर होनेका भी कोई उपाय है? तब मुनि महाराजने अवधिज्ञानसे कहा कि, धरणिभूषण पर्वतपर विष्णुकुमार नामके मुनि हैं। उनको विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हुई है। उनसे जाकर तुम प्रार्थना करो, तो वे इस उपसर्गको दूर कर सकते हैं। यह सुनते ही उस विद्याधर क्षुल्लकने तत्काल ही विष्णुकुमार मुनिके निकट जाकर मुनिसंघके उपसर्गकी वात कही और यह भी कहा कि, आपको विक्रिया ऋद्धि है, आप समर्थ हैं। तब विष्णुकुमार मुनि महाराजने हाथ पसार कर देखा, तो कोसों तक हाथ लंबा होता चला गया। तब उसी वक्त पद्म राजाके पास गये। उसको बहुत कुछ कहा उसने कहा कि मैंने ७ दिनका राज्य बलिको दे दिया है वही उपसर्ग करता है। तब विष्णुकुमार बलिराजाके पास गये, जहां कि वह सबको इच्छित दान दे रहा था. विष्णुकुमारने वामन रूप धारण करके कुटीर बनानेको अपने पांवसे तीन पैंड जमीन मांगी। बलिने तत्कालही दे दी—विष्णुकुमारने विक्रिया ऋद्धिसे बहुत बड़ा शरीर बनाकर एक पांव दक्षिण तरफके मानुषोत्तर[1] पर्वतपर रक्खा और एक पांव सुमेरुपर्वत

---

१ अढाई द्वीपके चारों तरफ आधे द्वीपमें कोटकी तरह एक पर्वत है। वहांसे आगे विद्याधर मनुष्य भी नहीं जा सकता, इस कारण उसको मानुषोत्तर पर्वत कहते हैं।

पर रखकर दूसरा पांव उत्तरके मानुषोत्तर पर्वतपर रक्खा. और तीसरे पांवसे देवोंके विमानोंको क्षोभित करके बलिकी पृष्टपर रखके उसको काबूमें कर लिया अर्थात् बलिको बांध लिया तब देवताओंने आकर मुनियोंके उपसर्गको निवारण किया, पूजा वंदनादि की, पद्मराजा और चारों मंत्रियोंने विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादि मुनि महाराजोंके चरणोंमें पड़कर क्षमा प्रार्थना करके अपराध क्षमा कराया। सबने जैनधर्म धारण कर श्रावकके १२ व्रत ग्रहण किये। मुनियोंके कंठ धुयेंसे फट गये थे, बड़ी तकलीफ थी, सो नगरके लोगोंने उस दिन दुधकी खीरके भोजन तैयार किये और सब मुनियोंको आहार दिया। उस दिन श्रावण शुक्ला पूर्णमासीका दिन था, सातसौ मुनियोंकी रक्षा हुई, इस कारण देशभरकी प्रजाने परस्पर रक्षाबंधन किया और उस दिन को पवित्र दिन मानकर प्रतिवर्ष रक्षाबंधन क्षीरभोजनादिसे इस पर्वको सुरू किया। उसी दिनसे यह राखीपूर्णिमाका तिहवार चला है। अन्यमतियोंने विष्णुकुमारकी जगह विष्णुभगवान् और बलि मंत्रीकी जगह सुग्रीवके भाई बलि राजाको मानकर मनघडंत कहानी बनाली है, सो मिथ्या है।

---

५५. जकडी पं० दौलतरामजीकृत (१)

अब मन मेरा वे, सीखवचन सुन मेरा।
भजि जिनवरपद वे, ज्यौं विनसै दुख तेरा॥

विनसै दुख तेरा भवबनकेरा, मनवचतन जिनचरन भजौ।
पंचकरन वश राख सुज्ञानी, मिथ्यामतमग दूर तजौ॥
मिथ्यामतमग पगि अनादितैं, तैं चहुंगति कीन्हा फेरा।
अबहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मन मेरा॥ १॥
इस भववनमें वे, तैं साता नहिं पाई।
वसुविधिवश है वे, तैं निजसुधि विसराई॥
तैं निजसुधि विसराई भाई, तातैं विमल न बोध लहा।
परपरनतिमें मगन भयो तू, जन्म-जरा-मृत-दाह दहा॥
जिनमत सारसरोवरकौं अब,-गाहि लागि निजचिंतनमें।
तो दुखदाह नशै सब नातर, फेर फँसै इस भववनमें॥ २॥
इस तनमें तू वे, क्या गुन देख लुभाया।
महा अपावन वे, सतगुरु याहि बताया॥
सतगुरु याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा।
कृमिकुल-कलित लखत घिन आवै, यासौं क्या कीजे नेहा॥
यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमें।
तो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमें॥ ३॥
भोग भले न सही रोग शोकके दानी।
शुभगतिरोकन वे, दुर्गतिपथअगवानी॥
दुर्गतिपथअगवानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसौं।
तिन नानाविधि विपति सही है, विमुख भया निजसुख तिनसौं

१ संसाररूपी वनका। २ पांच इन्द्रियां। ३ आठ कर्मोंके वश हो कर।

कुंजर[1] झख[2] अलि[3] शलभ[4] हिरन इन, एक अक्षवश[5] मृत्यु लही।
यातैं देख समझ मनमाहीं, भवमें भोग भले न सही ॥ ४ ॥

काज सरै तब वे, जब निजपद आराधै।
नशै भवावलि[6] वे, निराबाधपद लाधै ॥

निराबाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां।
सुख अनंत अतिइन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥
ऐसा पद चाहै तो भज निज[7], बारबार अब को उचरं।
'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै ॥ ५ ॥

---

५६. विषयोंमें फंसे संसारी जीवका दृष्टांत।

किसी समयमें एक मनुष्य भयंकर वनमें जा पहुंचा उसमें एक जंगली हस्तीने इसका पीछा किया। यह मनुष्य भागते २ अचानक कहीं एक अंधकूपमें गिरने लगा गिरते २ वटके वृक्षकी जड़ पकड़ ली सो कूपमें अधर लटकने लगा। हस्तीने क्रोधमें आकर वट वृक्षकी शाखाको हिलाया तो उसमें मधुमक्खियोंका छत्ता था उसकी समस्त मक्खियें उड़कर उस मनुष्यके सर्व शरीर में चिपट कर काटने लगीं उसने नीचे कूपमें झांककर देखा तो उसमें चारों तरफ चार सर्प मुख बाये इसके गिरनेकी बाट देख रहे हैं और बीचमें एक अजगर भी मुख बाये

१ हाथी। २ मछली। ३ भौंरा--भ्रमर। ४ पतंग। ५ एक एक इंद्रियके वससे। ६ भवोंका समूह। ७ "जिन" भी पाठ है।

पड़ा है। ऊपरको देखा तो जिस वृत्तकी जड़ को पकड़े हुये हैं उस जड़को एक सफेद एक काला दो चूहे काट रहे हैं। इस प्रकार चारों ओर दुःख और महा कष्ट हो रहा है इसी समय मधुछत्तेमेंसे एक मधुका विंदु उसके मुखमें आपड़ा उसका स्वाद बहुत ही मिष्ट लगा सो फिर भी ऊपरको मुख बाये रहा थोड़ी देरमें एक बूंद और पड़ी उसका स्वाद लेकर अन्य समस्त दुःख भूल गया। इसीप्रकार बारंबार मधुकी बूंदोंका आनंद लेरहा था इसी बीचमें एक विद्याधर दंपती (स्त्रीपुरुष) विमानमें बैठे जा रहे थे उनकी दृष्टिमें यह मनुष्य पड़ा तो उनने दयाकरके विमानको नीचें उतारा और मनुष्यसे कहा कि भाई! तुम बड़े कष्टमें हो, यह हाथी तुम्हें बिना मारे छोड़ेगा नहीं. आओ तुमको विमान में बिठाकर तुमारे घर पर पहुंचादें। उस दुखी पुरुषने कहा कि आप जरा देर ठहरिये एक बूंद आ रही है उसको लेलूं तो मैं चलूं जब एक बूंद आ गई तो विद्याधरने कहा कि चलो आवो हमको फिर देर हो जायगी। उसने कहा कि-जरासी दया और कीजिये एक बूंद और आजाने दो फिर मैं चलता हूं। थोड़ी देर बाद जब एक बूंद आ गई तो फिर विद्याधरने कहाकि-तुम बड़े मूर्ख हो इस एक बूंद मधुके लिये यहां कितना कष्ट भोग रहे हो यदि हमारे साथ विमानमें नहिं आते हो तो फिर तुमारी यहीं पर मृत्यु है। इस जंगलमें कोई नहिं आता तुमारे भाग्य योगसे तुम हमारी दृष्टिमें आगये अब चलना हो तो चलो नहीं तो हम चले जाते हैं। इत्यादि बहुत कुछ समझाया इसी बीचमें एक बूंद और भी उसके मुंहमें पड़ गई परन्तु फिर भी वह कहता है कि-एक

बूंद और आजाने दो फिर तौ अवश्य ही चलूंगा। लाचार थोड़ी देर और ठहरकर बुलाया तौ फिर भी वही बात। तब वह विद्याधर वहीं छोड़ कर अपने इष्ट स्थानको चला गया।

जिस प्रकार यह मनुष्य दुःखी था ठीक इसी प्रकार यह संसारी जीव इस संसाररूपी वनमें दुःख भोग रहा है। सफेद और काले दो चूहे दिन और रात हैं सो आयुरूपी जड़को काट रहे हैं हस्तीरूपी विकराल हमारी मृत्यु है सो सिरपर घूम रही है। कूपमें चार सर्प थे सो चार गतियां हैं सो किसी न किसी गति में मर कर जाना है। और एक अजगर था सो निगोद राशि है सो अधिक पाप किया तौ निगोदमें जाना पड़ैगा। मधुमक्खियें जो चारों तरफ शरीरको नोंच रही वा काट रही हैं सो ये सब कुटुंबके लोग हैं सो हर तरहसे संसारी जीव को दुःख देरहे हैं। वह विद्याधर था सो सुगुरु समान है। सुगुरु महाशय धर्मोपदेश देकर इस जीवको संसारके दुःखोंसे छुटा कर मोक्ष मार्गमें ले जाना चाहते हैं परन्तु यह जीव जरासे इन्द्रियजनित सुखके लिये सब दुःख भोग रहा है संसारका मोह छोड़ धर्म मार्गमें नहिं लगता सो अवश्य ही नरकादिगतियोंमें दुःख भोगैगा।

—:*:—

५७. जकडी दौलतरामकृत (२)

वृषभादिजिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं।
द्वैविधि-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहुं स्वपरहितकारी।

हितकारि तारक देव श्रुत गुरु, परख निजउर लाइये।
दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये॥
चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि ठग्यौ भव-कानन परयौ।
व्यालीसद्विकलख जौनिमें. जर-मरन-जामन-दव जरयौ।१॥

जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरियां, तसुवश निगोदमें परिया।
तहां स्वास एकके माहीं, अष्टादश मरन लहाहीं॥

लहि मरन अन्तमुहूर्तमें, छयासठ सहस शत तीन ही।
पटतीस काल अनंत यौं दुख, सहे उपमा ही नहीं॥
कबहूं लही वर आयु छिति-जल, -पवन-पावक-तरुतणी।
तसु भेद किंचित कहूं सो सुन, कह्यौ जो गौतमगणी॥ २॥

पृथिवी द्वयभेद वखाना, मृदु माटी कठिन पखाना।
मृदु द्वादशसहस बरसकी, पाहन बाईस सहसकी॥

पुनि सहस सात कही उदंक त्रय, सहसवर्ष समीरकी।
दिन तीस पावक दशसहस तरु,-प्रभृति नाश सुपीरकी॥
विनघात सूच्छमदेहधारी, घातजुत गुरुतन लह्यौ।
तहं खनन तापन जलन व्यंजन, छेद भेदन दुख सह्यौ॥३॥

शंखादि दुइंद्री प्रानी, थिति द्वादशवर्ष वखानी।
यूंकादि तिइंद्री हैं जे, वासर उनचास जियें ते॥

---

१ संसाररूपी वन। २ चौरासीलाख योनी। ३ वृद्धावस्था, मृत्यु, और जन्मरूपी अग्निमें जला। ४ पृथ्वी। ५ पानी। ६ जू आदि।

जीवैं छमास अली[1]प्रमुख, ब्यालीस-सहस उरगतनी ।
खगकी बहत्तर-सहस नवपूर्वांग सरीसृप[2]की भनी ॥
नरमत्स्यपूरबकोटकी थिति, करमभूमि बखानिये ।
जलचरविकलविन भोग[3]भू-नर.-पशु त्रिपल्य प्रमानिये ॥४॥

अघवश करि नरक बसेरा, भुगतै तहं कष्ट घनेरा ।
छेदैं तिलतिल तनसारा, छेपैं द्रह[4]पूतिमंझारा ॥

मंझार वज्रानिल पचावैं, धरहिं शूली ऊपरैं ।
सींचैं जु खारे वारिसौं दुठ, कहैं ग्रणौं नीके करैं ॥
वैतरणिसरिता समल जल अति, दुखद तरु सेंवलतने ।
अति भीमवन असि[6]कांत सम दल[7], लगत दुख देवैं घने ॥५॥

तिस भूमैं हिम गरमाई, सुरगिरिसम अंस[8] गल जाई ।
तामैं थिति सिंधुतनी है, यौं दुखद नरकअवनी[9] है ॥

अवनी तहांकीतैं निकसि, कबहूं जनम पायौ नरौं ।
सर्वांग सकुचित अति अपावन, जठर जननीके परौ ॥
तहँ अधोमुख जननी रसांश,-थकी जियौ नवमास लौं ।
ता पीरमें कोउ सीर नाहीं, सहै आप निकास लौं ॥ ६ ॥

जनमत जो संकट पायौ, रसनातैं जात न गायौ ।
लहि बालपने दुख भारी, तरुनापौ लयो दुखकारी ॥

दुखकारि इष्टवियोग अशुभ.-संयोग सोग सरोगता ।
परसेव[10] ग्रीषम सीत पावस, सहै दुख अतिभोगता ॥

---

१ भ्रमरआदि । २ सर्पविशेष । ३ भोगभूमियां मनुष्य और पशु । ४ दुर्गंधिके भरे तालाब । ५ फांदे । ६ तलवारकी धार ! ७ पत्ते । ८ लोहा । ९ पृथ्वी । १० दूसरोंकी सेवा-नौकरी ।

काहू कुतिय काहू कुबांधव, काहू सुता व्यभिचारणी ।
किसहू विसन-रत पुत्र दुष्ट, कैलत्र कोऊ पररिणी ॥ ७ ॥
वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयनन ते ते ।
मुख लाल वहै तन हालै, विन शक्ति न वसन संभालै ॥
न संभाल जाके देहकी तो, कहो वृषकी का कथा ।
तव ही अचानक आन जम गह, मनुजजन्म गयौ वृथा ॥
काहू जनम शुभठान किंचित, लह्यौ पद चहुँदेवको ।
अभियोग किल्विष नाम पायौ, सह्यौ दुख परसेवको ॥ ८ ॥
तहं देख महत सुररिद्धी, झूर्‌यौ विषयनकरि गृद्धी ।
कवहूं परिवार नसानौं, शोकाकुल है विललानौ ॥
विललाय अति जब मरन निकर्‌यो, सह्यौ संकट मानसी ।
सुरविभव दुखद लगी तबै जव, लखी माल मलानसी ॥
तव ही जु सुरउपदेशहित समु, झाइयौ समुझौ न त्यौं ।
मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई, लहै फिर सो स्वपद क्यौं ॥६॥
यौं चिरभव अटवी गाही, किंचित साता न लहाही ।
जिनकथित धरम नहिं जान्यौ, परमाहिं अपनपो मान्यौ ॥
मान्यौ न सम्यक त्रयातम, आतम अनातममें फस्यौ ।
मिथ्या-चरन-दृग्ज्ञान रंज्यौ, जाय नवग्रीवक वस्यौ ॥
पै लह्यौ नहिं जिनकथित शिवमग, वृथा भ्रम भूल्यौ जिया ।
चिद्भाउके दरसावविन सव, गये अहले तप किया ॥ १० ॥

---

१ दुष्टस्त्री । २ व्यसनी । ३ लाला-लार । ४ धर्मकी । ५ चार प्रकारके देव । ६-७ देवोंमें अभियोग और किल्विष एक प्रकारके नीचे सेवकोंके समान देव होते हैं । ८ माला । ९ मुरझानी हुई । १० व्यर्थ ।

अब अद्भुत पुण्य उपायो, कुल जात विमल तू पायो।
यातैं सुन सीख सयाने, विषयनसौं रति मत ठाने ॥
ठाने कहा रति विषयमैं ये, विषम विषधरसम लखौ
यह देह मरत अनंत इनकौं, त्यागि आतमरस चखौ ॥
या रसरसिकजन बसे शिव अब, बसे पुनि बसि हैं सही।
'दौलत' स्वरचि परविरचि सतगुरु,-सीख नित उर धर यही ॥

५८. सुकुमालमुनि।

कौशांबीके राजा अतिबलका पुरोहित सोमशर्मा था उसकी स्त्रीका नाम काश्यपी था। उसके अग्निभूत वायुभूत नामके दो पुत्र थे। माता पिताके अधिक लाड प्यारके कारण वे कुछ पढ़ लिख न सके। कालकी विचित्रगतिसे सोमशर्मा असमयमें ही चल बसा। राजाने अग्निभूतिको मूर्ख देख उसके पिताका पुरोहित पद किसी अन्य विद्वानको दे दिया। सो ठीक ही है मूर्खों का आदर सत्कार कहीं नहीं होता। यह देख दोनों भाइयोंको बड़ा दुःख हुआ। तब इनको पढ़नेकी सूझी और राजगृहीमें अपने काकाके पास पांचसात वर्ष रहकर विद्वान होकर आये तौ राजाने उनको पुरोहित पद देदिया।

इधर राजगृहीमें एक दिन संध्याके समय सूर्यमित्र सूर्यको अर्घ चढ़ा रहा था, उसकी अंगुलीमें राजाकी एक रत्नजडित बहुमूल्य अंगुठी थी सो अर्घ देते समय महलके नीचे तालावमें खिले हुये कमलमें गिर पड़ी और सूर्यास्त होनेसे कमल मुद गया। अर्घ देनेके बाद अंगूठीका ख्याल हुआ तौ बड़ा घबराया।

राजा मांगैंगे तो क्या जवाब दूंगा। अंगूठी ढूंढनेका बहुत यत्न वा परिश्रम किया परंतु अंगूठी नहिं मिली तब किसीके कहनेसे अवधिज्ञानी सुधर्ममुनिके पास गया और हाथ जोड़कर अंगूठी की बाबत पूछा उन्होंने कहा कि सूर्यको अर्घ देते समय तालाबमें एक कमलमें गिर पड़ी है वह कल तुझे मिल जायगी। दूसरे दिन कमल खिलनेसे वह अंगूठी मिल गई सूर्यमित्र बड़ा खुश हुआ। उसे बड़ा अचंभा हुवा कि मुनिने यह बात कैसे बतलाई? दूसरे दिन फिर मुनि महाराजके पास जाकर प्रार्थना की कि प्रभो! जिस विद्यासे आपने अंगूठी बताई कृपाकरके मुझे वह विद्या पढ़ादें तो बड़ा ही उपकार हो। मुनि महाराजने कहा कि-मुझे इस विद्याके बतानेमें कोई इनकार नहीं है परंतु जैनमुनिकी दीक्षा लिये विना यह विद्या आ नहिं सकती।

सूर्यमित्र तब केवल विद्याके लोभसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर उसने विद्या पढ़ानेको गुरुसे कहा तो सुधर्म मुनिराजने मुनियोंके आचार विचारके ग्रंथ तथा सिद्धांत शास्त्र पढ़ाये। तब तो सूर्यमित्रकी एक दम आंखें खुलगई। अब तो वह जैनधर्मके ज्ञाता विद्वान हो गये और अपने मुनिधर्ममें खूब दृढ़ हो गये तब गुरुकी आज्ञा लेकर एकविहारी होगये। एकबार विहार करते हुये कौशांबी नगरीमें आये तो अग्निभूति पुरोहितने भक्तिपूर्वक आहारदान दिया और अपने छोटे भाई वायुभूति को भी मुनिके पास चलने वा वंदना करनेको कहा। परंतु वह तो जिन धर्मसे सदा विरुद्धही रहता था। वदंनाके बदले उसने निंदा करके बहुत कुछ बुरा भला कहा। सो ठीकही है जिनको

दुर्गतिमें जाना होता है वे दूसरोंकी प्रेरणासे भी धर्मके सन्मुख नहिं होते। अग्निभूतिको अपने भाईकी दुर्बुद्धिपर बड़ा दुःख हुवा और मुनिमहाराजके साथ ही वनमें जाकर धर्मोपदेश सुननेसे संसार शरीर भोगोंसे उदास होकर मुनि दीक्षा लेली।

अग्निभूतिके मुनि हो जानेकी वात जव उसकी सती स्त्रीने सुनी तौ उसने वायुभूतिसे कहा कि-देखो तुमने मुनिको वंदना नहिं करके उनकी वुराई की सो सुना जाता है कि तुमारे भाई इसीसे दुःखी होकर मुनि हो गये हैं यदि अव तक मुनि न हुये हों तौ चलो उन्हें समझा कर लौटा लावें। परंतु वायुभूतिने गुस्सा होकर कहा तुम्हे गर्ज हो तौ तुम जावो, मैं उन नंगे मुनियोंके पास नहिं जाता इत्यादि मर्मभेदी वचन कह कर अपनी भौजाईको एक लात मारकर चल दिया। जिससे भौजाईको वड़ा दुःख हुआ स्त्री जाति अवला होनेसे और तौ कुछ नहिं कर सकी परंतु मनमें निदान वांध लिया कि-"इस वक्त तौ मैं लाचार हूं परंतु अगले किसी न किसी जन्ममें तेरी यही टांग और हृदय खाऊंगी तव ही मुझे संतोष होगा।" धिक्कार है इस प्रकारके मूर्खलोगोंके निदान विचारको।

इसके वाद मुनि निंदाके फलसे सात ही दिन वाद वायुभूतिके सारे शरीरमें कोढ निकल आया सो ठीकही है अत्युत्कट पुण्य वा पापका फल तीन दिन या तीन पक्ष या तीन मास और तीन वर्षके भीतर २ अवश्य मिल जाता है। वायुभूति कोढके रोगसे मरकर कोशाँवीमें एक नटके यहां गधा हुआ। गधा मरकर जंगली सूअर हुआ। सूअर मरकर चंपापुरीमें एक चंडाल

के यहां कुत्तीका जन्म धारण किया। कुत्ती मरकर चंपापुरीमें ही एक दूसरे चंडालके यहां जन्मांध लड़की हुई। इसके सारे शरीरमें धद्रू होनेसे इसके माता पिताने उसे छोड़ दिया। परन्तु भाग्यसे वच रही, एक जामनके पेड़के नीचे पड़ी २ जामुन खा रही थी। दैव योगसे सूर्यमित्र मुनिअग्निभूतिको साथ लेकर उसी तरफ आ निकले थे सो अग्निभूतिकी दृष्टि इस कन्या पर पड़ी तो हृदयमें कुछ मोह और दुःख हुआ तव गुरुसे पूछा कि-प्रभो इस लड़कीकी दशा वड़ी कष्टमय है यह कैसे जी रही है। अवधिज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने कहा-तुमारे भाई वायुभूतिने हमारी घोर निंदा की थी उसके पापसे उसे कोढ़ हुआ, मरकर गधा और सूअर तथा कुत्ती होकर अव यह चंडालके यहां जन्मांध और दुर्गंधमय शरीरवाली लड़की पैदा हुई है। इसकी उमर वहुत थोड़ी रह गई है इस लिये तुम जाकर इसे अणुव्रत देकर सन्यास देआवो। अग्निभूतिने जाकर उसे दुःखका कारण वता कर अणुव्रत दिलवाये सन्यास लिवा दिया सो मरकर व्रतके प्रभावसे चंपापुरीमें नागशर्मा ब्राह्मणके यहां नागश्री नामकी कन्या हुई।

एक दिन नागश्री कितनी ही लड़कियोंके साथ वनमें नागपूजा करनेको गई थी सो पुण्ययोगसे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि भी विहार करते इसी वनमें आकर विराजे थे। उन्हे देख कर नागश्रीके मनमें अत्यंत भक्ति हो गई। वह उनके पास गई, वदंना करके उनके पास वैठ गई। नागश्रीको देखकर अग्निभूतिके मनमें कुछ स्नेहका उदय हुआ। क्यों कि यह पूर्व जन्ममें इसकी

भाई थी। गुरुसे स्नेह होनेका कारण पूछा-उन्होंने भ्रातृभावही कारण बताया। तब अग्निभूतिने उसे धर्मका उपदेश दिया सम्यक्त्व तथा पांच अणुव्रत उसे ग्रहण कराये। नागश्री व्रत ग्रहण करके जाने लगी तब मुनिराजने कहा कि-हां! बच्ची सुन! तेरे पिता यदि तुझसे इन व्रतोंको लेनेके कारण नाराज हों तो हमारे व्रत हमे आकर वापिस देजाना।

इसके बाद नागश्री घर गई तो व्रत ग्रहणकी बात सुनकर पिता बड़ा नाराज हुआ और नागश्रीसे बोला कि-बेटी तू बड़ी भोली है, चाहे जिसके बहकानेमें आ जाती है तू नहीं जानती कि-अपने पवित्र ब्राह्मण कुलमें उन नंगे मुनियोंके दिये व्रत नहिं लिये जाते। वे अच्छे लोग नहिं होते इस लिये उनके व्रत छोड़ दे। तब नागश्रीने कहा कि-पिताजी! उन मुनिमहाराजने आते समय कह दिया था कि—यदि तुझसे तेरे पिताजी इन व्रतोंके छोड़नेके लिये कहैं तो तू हमारे व्रत हमें यहां आकर वापिस दे जाना। सो आप चलिये जो उनके व्रत वापिस दे आऊं। सोमशर्मा नागश्रीको लेकर क्रोध कर्त्ता गर्जता हुआ मुनियोंके पास चला। नागश्रीने रास्तेमें-एक आदमी बंधा हुआ पड़ा था कई जने उसे निर्दयतासे मार रहे थे उसे देखकर पितासे पूछा कि निर्दयतासे क्यों मारा जाता है? सोमशर्माने कहा कि—इसको एक बनियेके लड़केके रुपये देने थे बनियेके लड़केने तकाजा किया इसने रुपये न देकर उसे जानसें मार डाला इस कारण अपने राजाने इसे प्राणदंडकी आज्ञा दी है इस कारण राजपुरुष इसे मारते पीटते हैं। नागश्रीने कहा-मुझे मुनिमहाराजने यही तो अहिंसा

व्रत दिया है कि—किसी जीवको किसी प्रकारकी पीड़ा नहिं देना इसे छोड़नेको आप क्यों कहते हैं? तब सोमशर्माने कहा कि अच्छा ! यह व्रत तो रखना और सब छोड़ देना ।

आगे चलने पर नागश्रीने एक अन्य पुरुषको बंधा देखकर पूछा-पिताजी इसने क्या अपराध किया था तब पिताने कहा कि यह झूठ बोलकर लोगोंको ठगा करता था इस लिये इसे बांध-कर लेजाते और पीटते हैं । नागश्रीने कहा-पिताजी मेरे व्रतमें एक यह भी व्रत है कि कभी झूठ नहिं बोलना सो यह भी तो अच्छा है इसे क्यों छुड़ाते हैं ? तब पिताने कहा कि-अच्छा यह व्रत भी रख लेना बाकी सब छोड़ देना । आगे जाकर इसी प्रकार चोरी परस्त्रीगमन और लोभ वगैरह पापोंके अपराधियोंको दंड पाते देखकर पितासे पूछा कि ये ही तो व्रत मुझे मुनिमहाराजने दिये हैं इन्हे क्यों छोडूं । तब सोमशर्माने कहा कि अच्छा इन व्रतों को तो नहिं छोड़ना परंतु मुनियोंको जाकरके मुझे अवश्य कहना है कि—तुम्हें हमारे बिना पूछे हमारी बेटीको व्रत देनेका क्या अधिकार है ? सो चल, वे नंगे मुनि कहां हैं सो नागश्रीका हाथ पकड़कर मुनियोंके पास गया। दूरसे ही देखकर सोमशर्मा क्रोधित होकर बोला कि-क्यों रे नंगों ! तुमने मेरी लड़कीको व्रत देकर क्यों ठग लिया बतलाओ तुम्हें इसका क्या अधिकार था ?

सूर्यमित्र मुनि महाराजने—सोमशर्माको उत्तेजित देख धीर-तासे कहा कि—भाई ! जरा धीरज धर, क्यों इतनी जल्दी कर रहा है ! मैंने इसे व्रत दिये है परंतु अपनी लड़की समझकर दिये हैं और वास्तवमें यह लड़की है भी मेरी । तेरा तो इस पर

कुछ भी अधिकार नहीं है। तू भले ही कह कि यह मेरी लड़की है परंतु वास्तवमें यह तेरी लड़की नहिं है ऐसा कहकर मुनिमहाराजने नागश्रीको पुकारा। नागश्री झटसे आकर उनके पास बैठ गई। अब तो ब्राह्मण देवता बड़े घबराये। 'अन्याय' 'अन्याय' कहकर चिल्लाते हुये राजाके यहाँ जाकर पुकारा कि मेरी बेटीको नंगे साधुओंने छीन लिया। सो मुझे दिला दीजिये। यह बात सुनकर राजा और राजसभा चकित हो गई। क्या बात है ऐसा कैसे हो सकता है तब राजा सबके साथ मुनिमहाराजकी सभा में आया और सोमशर्माने फिर कहा कि देखिये वह नागश्री लड़की मेरी बैठी है मुनिराज कहते हैं कि—मेरी है। इस प्रकार झगड़ा होनेके बाद सोमशर्मासे मुनि बोले कि यदि यह लड़की तेरी है तो बता कि तूने इसे क्या पढ़ाया है? मैंने तो इसे सब शास्त्र पढ़ाये! इसलिये मैं कहता हूं कि—यह लड़की मेरी है। तब राजा बोले प्रभो! यदि आपने इसको सब शास्त्र पढ़ाये हैं तो उन शास्त्रोंमें इसकी परीक्षा दिलवाइये जिससे हमे विश्वास हो।

तब मुनिमहाराज नागश्रीके शिरपर हाथ रखकर बोले कि हे नागश्री! मैंने तुझे वायुभूतिके भवमें जितने शास्त्र पढ़ाये हैं उनमें इस उपस्थित मंडलीको परीक्षा दे। फिर क्या था मुनिमहाराजकी आज्ञा होते ही जन्मांतरके पढ़े हुये सब शास्त्र नागश्री ने धारा प्रवाह सुना दिये। राजा और उपस्थित समस्त जनोंको बड़ा अचंभा हुआ। सबके चित्त डामाडोल हो गये नागश्री छोटीसी लड़की अभी तक इसके पिताने अक्षराभ्यास भी नहिं कराया यह सब शास्त्र किस प्रकार सुनाने लगी। सबने हाथ:

जोड़कर कहा कि—महाराज यह क्या कौतुक है शीघ्र ही हम लोगोंका संदेह दूर कीजिये। तब मुनिमहाराजने नागश्रीके पूर्व-जन्मका समस्त चरित्र कहकर सुनाया और सबको जैनधर्मका उपदेश देकर संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होकर आत्म-कल्याण करनेमें प्रेरणा की जिसके सुननेसे राजाको वास्तवमें ये सब मोहकी लीला जान पड़ी मोह ही सब दुःखका मूल है इत्यादि विचारनेसे बड़ा वैराग्य हो गया। सो अनेक राजाओंके साथ जिनदीक्षा ग्रहण की। सोमशर्मा भी जैनधर्मका सत्यार्थ उपदेश सुनकर मुनि हो गया और तपस्या करके अच्युत स्वर्गमें देव हुआ। नागश्रीको भी अपने पूर्वके भव सुनकर वैराग्य हो गया सो दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई और अंतमें शरीर छोड़ कर अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिकदेव हो गई।

वहांसे विहार करके सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिमहाराजने अग्निमंदिर पर्वत पर जाकर तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंको नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और त्रिलोकपूज्य हो शेषमें शेष कर्मोंको नष्ट करके मोक्ष को पधारे।

इसके पश्चात् अवंतीदेशके उज्जैन नगरमें इन्द्रदत्त नाम का शेठ बड़ा धर्मात्मा जिनभक्त दृढ़ श्रद्धानी था उसकी स्त्री गुणवती के गर्भमें अच्युतस्वर्गका देव जो कि सोमशर्माका जीव था सो सुरेंद्रदत्त नामका गुणी पुत्र हुआ। सुरेंद्रदत्तका विवाह उज्जैनमें ही सुभद्रसेठकी लड़की यशोभद्राके साथ हुवा इनके घरमें किसी बातकी कमी नहीं थी पुण्यके प्रतापसे अटूट धन और सर्व प्रकारके सुख प्राप्त थे। परंतु कोई संतान नहीं थी। एक दिन

सुभद्राने अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा कि—महाराज मेरा मनोरथ भी कभी सिद्ध होगा ? मुनिमहाराजने मनोगत अभिप्राय जान कर, कहा कि-"हां होगा अवश्य होगा परंतु जिस दिन तेरे उस मोक्षगामी भव्यजीव पुत्रका जन्म होगा, तेरे स्वामी पुत्रका मुख देखकर मुनि हो जांयगे । दूसरे जिस दिन तेरा वह पुत्र किसी मुनिको देख पावेगा तौ वह भी मुनि दीक्षा लेकर योगी हो जायगा।

मुनिमहाराजके कथनानुसार नौ महिने बाद यशोभद्रा सेठानी के उदरसे नागश्रीका जीव वही महर्द्धिकदेव पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ और उसका नाम सुकुमाल रक्खा गया। उधर सुरेंद्र पुत्र के दर्शन करके मुनिदीक्षा लेकर कर्मोंको काटने लगा।

जब सुकुमाल युवावस्थाको प्राप्त हुआ तौ उसकी माता यशोभद्राने अच्छे २ घरानेकी ३२ सुंदर कन्याओंके साथ विवाह करा दिया और उन सबके लिये एक जुदा ही बड़े बड़े रमणीक महल जिसके पीछे मनोहर उपवन था बनवाकर सर्व प्रकारकी भोगोपभोग समाग्रियोंसे सजा दिया सो सुकुमालजी अहोरात्र ३२ स्त्रियों सहित नानाप्रकारके भोगोंमें अहोरात्र मग्न हो रहे सूर्योदय और अस्तका भी उन्हे ठिकाना न रहा।

एक दिन बाहरके सौदागरने एक बहुमूल्य रत्नजडित कंबल बेचनेके लिये राजाके पास जाकर दिखाया परंतु उसकी कीमत अत्यंत अधिक होनेसे राजा नहिं ले सका। किसी के कहनेसे वह सुकुमालशेठके घर आया तौ यशोभद्राने तुरंत ही मुखमांगे दाम देकर वह कंबल सुकुमालके लिये महल पर भेज दिया परंतु

वह सुकुमाल ही था सो उस कंवलको ओढ़ते ही घवड़ाया और उतार कर फेंक दिया। तव यशोभद्राने उसके टुकड़े करके वहुओं केलिये जूतियां वनवादीं। एक दिन सुकुमालकी एक स्त्री जूतियां खोलकर पांव धो रही थी सो चील उसे मांसखंड समझ जूतीको उठा लेगई परंतु यह मांस नहिं है ऐसा समझते ही एक वेश्याके घर पर छोड़ दिया। वेश्याने इतनी कीमती जूती राजघरानेकी समझ राजाके पास लेजाकर पेश की तौ राजाने वड़ा आश्चर्य किया कि जिसकी स्त्री ऐसी वहुमूल्य जूती पहरती है उसके धनका क्या ठिकाना इसका पता लगाना चाहिये। जब राजाने पता लगाया तौ मालूम हुआ कि वह शेठ सुकुमाल है और उसकी स्त्रीकी ही यह जूती है। राजाको सुकुमालसे मिलनेकी उत्कट इच्छा हुई तौ खवर देकर एक दिन महाराज स्वयं सुकुमालके घर गये। यशोभद्राने वड़ा आदर सत्कार किया और अपने पुत्र और राजाको एकही साथ घृतके दियेसे आरती उतारी जिससे सुकुमालकी आंखोंमें पानी आगया। राजाने पूछा तौ यशोभद्राने कहा कि महाराज! इसने जन्मसे लेकर आज तक रतनदीपकके सिवाय ऐसा दीपक कभी नहिं देखा था इसीसे इसकी आंखोंमें पानी आ गया है।

तत्पश्चात् राजाको और सुकुमालको भोजन कराया गया तौ सुकुमाल चावलोंको वीन वीन कर खाने लगा। राजाने भेद पूछा तौ यशोभद्राने कहा कि खिले कमलोंमें चावल रख कर सुगंधित किये जाते हैं वे ही चावल यह हमेशह खाया करता है आज वे चावल अधिक न होनेसे दूसरे चावल मिलाकर

बनाये गये हैं सो यह बीन बीन कर उन्हीं चावलोंको खाता है। राजाने खुश होकर पुण्यात्मा सुकुमालकी प्रशंसा करके कहा कि माताजी! आज तक तो यह तुमारे घरके ही सुकुमाल थे परंतु अब मैं इसे अवंतिसुकुमालकी पदवी देकर सारे देशका सुकुमाल बनाता हूं। तत्पश्चात्—राजा और सुकुमाल बागकी बावड़ीमें जल क्रीड़ा करनेको गये सो राजाकी एक बहुमूल्य अंगूठी जल में गिर पड़ी उसको ढूंढने लगे तो देखा गया कि हजारों बहुमूल्य रत्न जडित गहने उस बावड़ीमें पड़े हैं। उन्हे देखकर राजाकी अकल चकराई। सुकुमालके अनंत वैभवको देख कर बड़े ही चकित हुये. कुछ शरमिंदा होकर महलको लौट आये यशोभद्राने रत्नोंसे भरे हुये थाल राजाकी भेटमें दिये और विदा किया।

हे विद्यार्थियो! यह धन धान्यादि संपदाका मिलना, पुत्र, मित्र, सुंदर स्त्रीका प्राप्त होना अच्छे वस्त्र आभूषण आदि समस्त प्रकारकी भोगोपभोग सामग्रीका प्राप्त होना एक मात्र पुण्यका प्रताप है और पुण्य जिनेंद्र भगवान्‌की पूजा करनेसे पात्रोंको दान देनेसे और पंचाणुव्रत धारण करने आदिसे होता हैं सो तुम भी ये सब कार्य करो।

एक दिन जैन तत्वोंके पारगामी सुकुमालके मामा गणधराचार्य सुकुमालकी आयु बहुत थोड़ी रही जानकर उसके महल पीछे बागमें आकर ठहरे और चतुर्मास लगजानेसे उन्होंने वहीं पर चातुर्मासिक योगधारण कर लिया। यशोभद्राको उनके आने और चतुर्मास योग धारण करने की खबर मिली तो वह

दौड़कर आई और वंदना करके कह आई कि महाराज जब तक आपका चतुर्मास पूरा न हो तब तक आप ऊंचे स्वरसे स्वाध्याय या पठन पाठन न किया करें। जब उनका चतुर्मास पूर्ण हो गया तब उन्होंने योग संबंधी समस्त क्रियायें पूर्ण करके त्रिलोक प्रज्ञप्तिका पाठ कुछ ऊंचे स्वरसे करना प्रारंभ किया। उसमें उन्हों ने अच्युतस्वर्गके देवोंकी आयु काय आदिकी ऊंचाई वगैरहका वर्णन खूब अच्छी तरहसे किया था सो उसे सुनकर सुकुमाल को जातिस्मरण हो गया। पूर्व जन्ममें पाये हुये दुःखोंको याद-कर वह कांप गया फिर क्या था उसी समय चुपकेसे महलसे उतर कर मुनिमहाराजके पास आकर साष्टांग प्रणाम किया और बैठगया। मुनिमहाराजने कहा-बेटा! अब तुमारी आयु सिर्फ तीन दिनकी रह गई है इस लिये अब तुम्हे इन विषय भोगोंको छोड़कर आत्महितमें लग जाना चाहिये। ये विषयभोग पहिले कुछ अच्छेसे लगते हैं परंतु इनका अन्त बड़ा ही दुखदाई है। जो विषय भोगोंकी धुनमें ही मस्त रहकर अपने हितकी तरफ ध्यान नहिं देते उन्हे कुगतियोंमें अनंत दुःख उठाने पड़ते हैं। यद्यपि शीत कालमें अग्नि शरीर को सुखदायक प्यारी लगती है परंतु घनिष्ट संबंध करते ही यानी छूते ही जलादेती है इसी प्रकार ये विषय भोग हैं।

इस प्रकार मुनिमहाराजका उपदेश सुन सुकुमालको बड़ा वैराग्य हो गया और उसी समय सुखदायक जिन दीक्षा लेकर मुनिमहाराजके साथ वनमें चल दिया। जो सुकुमाल फूलोंकी शय्या पर सोते और फूलों सरीखी कोमल फर्सपर चलते थे।

वे आज कंकड़ पत्थर कंकड़मय पृथिवीपर नंगेपांव चल रहे हैं। यद्यपि पांवोंके तलुए छिलकर रक्त बहने लगा परंतु उस तरफ कुछ भी ध्यान नहीं हैं वे दनादन चले जा रहे हैं। सारी जिंदगीमें जिनकी आंखोंमें आंशु न भरे हों उनकी आंखोंमें भी सुकुमालका यह अंतिम तीन दिनका जीवन आंशु लादेनेवाला है। पांवों से खून बहता जाता है और सुकुमालमुनि चले जा रहे हैं. चलकर एक पहाड़की गुफामें पहुंचे वहीं पर ध्यानासन जमाकर बारह भावनाओंका विचार करने लगे। उन्होंने प्रायोपगमन सन्यास धारण कर लिया था जिसमें कि अपनी सेवा सुश्रूषा करानेका भी निषेध है। सुकुमाल मुनि तो इधर आत्मध्यानमें लवलीन हुये अब जरा इनके वायुभूतिके जन्मकी वात याद कीजिये।

जिस समय वायुभूतिके बड़े भाई अग्निभूति मुनि हो गये थे उस समय अग्निभूतकी स्त्रीको इन्होंने लात मारी थी सो उस वक्त उस भोजाईने निदान किया था कि इस अपमानका बदलेमें इस जन्ममें नहीं तो किसी न किसी अगले जन्ममें इसी पांवको और तुमारे हृदयको अवश्य खाऊँगी, तब ही मुझे शांति मिलेगी। सो वह भोजाई अनेक कुयोनियोंमें नानाप्रकारके दुःख भोगे सो अब वह इसी वनमें स्यारनी (गीदड़ी) हुई साथमें उसके तीन बच्चे थे सो वे चारों ही पावोंसे पथरों पर पडे हुये रक्त विंदुओंको चाटते २ इस गुफातक आ गये और स्यारनी सुकुमालको देखते ही क्रोध करके उस पर झपटी और अचल ध्यानमें बैठे हुये मुनिको खाना सुरूकर

दिया सो बराबर चारों जीवोंने तीन दिन तक मुनिमहाराजको थोड़ा थोड़ा करके खाया मुनिमहाराज उस पीड़ासे रंचमात्र भी चलायमान नहिं हुये तीसरे दिन शरीरको त्यागकर रागद्वेष रहित सम भावोंसे मरकर फिर भी अच्युत स्वर्गमें जाकर महर्द्धिकदेव हुये। वायुभूतिकी भोजाई स्यारनीने अपने निदानका वदला चुका लिया।

कहां वे मनको लुभानेवाले भोग और कहां यह दारुण तपस्या सच तो यह है कि महापुरुषोंका चरित्र कुछ विलक्षण ही हुआ करता है। सुकुमालमुनि अच्युत स्वर्गमें देव होकर अनेक प्रकारके दिव्य सुखोंको भोगते हैं और जिन भगवान्की भक्ति में सदा लीन रहते हैं। सुकुमालमुनिकी इस वीर मृत्युके प्रभाव से स्वर्गके देवोंने आकर उनका वड़ा भारी उत्सव मनाया और जय जय शब्द करके वड़ा भारी कोलाहल किया। कहते हैं कि-इसी कारणसे ही उज्जैनमें महाकाल नामके कुतीर्थकी स्थापना हुई हैं और देवोंने सुगंधित जलकी वर्षा की थी उसीसे यहांकी नदी गंधवती नामसे प्रसिद्ध हुई हैं।

———:o:———

५९. जकडी (३) भूधरदासकृत।

अब मन मेरे वे, सुन सुन सीख सयानी।
जिनवर चरना वे, कर कर प्रीति सुज्ञानी॥
कर प्रीति सुज्ञानी शिवसुखदानी, धन जीतव है पंचदिना।
कोटि वरष जीवौ किस लेखे, जिनचरणांवुजभक्ति विना॥

नर परजाय पाय अति उत्तम, गृहवसि यह लाहा लेरे।
समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानो मन मेरे ॥१॥
तू मति तरसै वे, सम्पति देख पराई।
बोये लुनि लेवे, जो निज पूर्वकमाई॥

पूर्वकमाई सम्पति पाई, देखि देखि मति झूर मरै।
बोय बंबूल शूल-तरु भोंडू, आमनकी क्या आस करै॥
अब कछु समझ बूझ नर तासौं, ज्यौं फिर परभव सुख दरसै।
कर निज ध्यान दान तप संजम देखि विभवपर मत तरसै ॥२॥
जो जगदीसै वे, सुंदर अर सुखदाई।
सो सब फलिया वे, धरमकल्पद्रुम भाई॥

सो सब धर्म कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही।
तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही॥
रति उनहार रूपकी सीमा, सहस छयानवै नारि वरै।
सो सब जान धर्मफल भाई, जो जग सुंदर दृष्टि परै ॥३॥
लगैं असुंदर वे, कंटकथान घनेरे।
ते रस फलिया वे, पापकनकतरुके रे॥

ते सब पापकनक-तरुके फल, रोग सोग दुख नित्य नये।
कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये॥
भूख प्यास पीड़ै कन मांगैं, होत अनादर पगपगमें।
ये परतच्छ पापसंचितफल, लगैं असुंदर जे जगमें ॥४॥
इस भववनमें वे, ये दोऊ तरु जाने।
जो मन माने वे, सोई सींच सयाने॥

सीख सयाने जो मन माने, वेर वेर अव कौन कहै।
तू करतार तुही फल भोगी, अपने सुख दुख आप लहै॥
धन्य धन्य जिनमारग सुंदर, सेवनजोग तिहूँपनमें।
जासों समुझि परै सब भूधर, सदा शरण इस भवबनमें॥५॥

——:०:——

६०. श्रुतपंचमी पर्वकी उत्पत्ति।

——:०:——

श्री महावीर स्वामीकी मुक्ति होनेके ६८३ वर्ष बाद जब कि अंगज्ञानका विच्छेद हो गया तव उर्ज्जयंत गिरिकी (गिरनारजी-की) चंद्र गुफामें निवास करनेवाले महातपस्वी श्रीधरसेनाचार्य हुये इन्हे अग्रायणी पूर्वके अंतर्गत पचम वस्तुके चतुर्थ महाकर्म प्राभृतका ज्ञान था जव उनके अपने निर्मल ज्ञानमें यह भास-मान हुआ कि अब मेरी आयु थोड़ी ही रह गई है और मुझे जो शास्त्रज्ञान है वही संसारमें कुछ दिन रहैगा इससे आगे मेरेसे अधिक कोई शास्त्रज्ञ नहिं होगा और यदि कोई विशेप प्रयत्न नहिं किया जायगा तो जिसको मुझे शास्त्रज्ञान है उसका भी विच्छेद हो जायगा। इसी प्रकार विचार करके निपुणमति धरसेनाचार्य महाराजने देशेंद्र (आंध्र) देशके वेणा तटाकपुरमें तीर्थ यात्रार्थ आये हुये संघाधिपति महासेनाचार्यको एक पत्र लिखा कर एक ब्रह्मचारीके साथ भेजा कि-"मेरी आयु अत्यंत स्वल्प रह गई है जिससे मेरे हृदयस्थशास्त्रज्ञानकी व्युच्छित्ति हो जानेकी संभावना है अतएव उसकी रक्षाके लिये आप यदि दो ऐसे यतीश्वरोंको

भेज दीजिये जो शास्त्रज्ञान धारण करनेमें समर्थ और तीक्ष्ण बुद्धि हों तो मैं हृदयस्थशास्त्रज्ञान उन्हे धारणा करा दूं। जिससे वे कुछ दिन वीर शासनको कायम रख सकें।

जब यह पत्र ब्रह्मचारीके हाथ महासेनाचार्यके हस्तगत हुआ तो पढ़नेसे बड़ा आनंद हुआ और अपने संघमेंसे पुष्पदंत और भूतबली नामके दो मुनियोंको तीक्ष्ण बुद्धि धारक समझ श्रीधरसेनाचार्यके पास भेज दिया जिस दिन प्रातःकाल ये दोनों मुनि पहुंचे उसी रात्रिको प्रभात ही श्रीधरसेनाचार्य महाराजको स्वप्न हुवा कि—दो हृष्ट पुष्ट सफेद बैल उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं इस उत्तम स्वप्नको देखकर आचार्य महाराजको बेहद प्रसन्नता हुई और यह कहकर उठ बैठे कि—समस्त संदेहोंको नष्ट करनेवाली श्रुतदेवी—जिनवाणी सदा काल संसारमें जयवंत रहै।"

प्रातःकाल होते ही उन दोनों मुनियोंने जिनकी उन्हे चाह थी आकर आचार्य महाराजके पावोंमें बड़ी भक्तिसे अपना शिर झुकाया और आचार्य महाराजकी स्तुति की। आचार्य महाराज उनको आशीर्वाद दिया कि-तुम लोग चिरंजीवी होकर भगवान् महावीर स्वामीकी पवित्र शासनकी सेवा करके विस्तार करो। अज्ञान और विषयोंके दास बने संसारी जीवोंको ज्ञान देकर उन्हे कर्त्तव्यकी तरफ लगाओ।

तत्पश्चात आचार्यमहाराजने उन दोनों मुनियोंको तीनतक मार्ग श्रमदूर करनेके पश्चात उनकी बुद्धिकी परीक्षा करनेके लिये दो साधनेके दो मंत्र विद्यायें दिये उन मंत्रोंमें दो तीन अक्षर न्यूना-

धिक करके इन्हे सिखाये। ये दोनों ही मुनि गिरनारजीपर भगवान नेमिनाथकी सिद्धशिला पर बैठकर मंत्र साधने लगे। मंत्र साधनेकी अवधि पूरी हुई तव कम अक्षरवाले मंत्रका जाप करनेवाले मुनिके सामने तौ एक आंखवाली देवी आई और अधिकाक्षर साधनेवाले मुनिके सामने वडे २ दांतवाली देवी आकर खडी हो गई। इन दोनोंने ही विचारा कि देवियोंके रूप तौ ऐसे कदापि नहिं हो सकते यह क्या कारण है जो इन विद्याओंका विकृत अंग है हमारी साधनामें कोई न कोई अवश्य भूल है तव दोनोंने ही अपने २ मंत्रोंको मंत्र व्याकरणके अनुसार मिलाकर ठीक किया और फिरसे उन मंत्रोंका जाप्य करना प्रारंभ किया तव मंत्राराधन विधि पूरी होते ही वे दोनों देवियें सुन्दराकारसे हाजिर हुई और बोलीं कि "कहिये किस कार्यके लिये हमे आज्ञा होती है।" मुनियोंने कहा कि—हमे कोई जरूरत नहिं है हमने तौ गुरुकी आज्ञासे मंत्रोंकी सिद्धि की है। तव "जव कभी जरूरत हो तव याद करैं हम तत्काल ही हाजिर होकर आज्ञा पालन करैंगी" ऐसा कह कर वे देवियां अपने २ स्थानको चली गई।

उन दोनों मुनियोंने आचार्य महाराजकी सेवामें उपस्थित होकर अपना सारा वृत्तांत निवेदन किया तौ सुनकर आचार्य महाराज वड़े प्रसन्न हुये और शुभ तिथि शुभ नक्षत्र समय देखकर उन्हे पढ़ाना प्रारंभ कर दिया और वे मुनि भी प्रमादरहित हो गुरुविनय और ज्ञानविनय पालन करते हुये अध्ययन करते रहे।

कुछ दिनके पश्चात् आषाढ़ शुक्ला एकादशीको विधिपूर्वक ग्रंथाध्ययन समाप्त हुआ उस समय देवोंने पुष्प वरसाये और

मुनिमहाराजकी दंतपंक्ति जो विषमरूप थी उसे सुंदर कुंदके पुष्प समान कर दिया और उनका पुष्पदंत नाम सार्थक कर दिया और इसी प्रकार भूतजातिके देवोंने भूतवली मुनिकी तूर्यनाद जयघोष तथा गंधमाल्य धूप आदिसे पूजा करके उनका भी सार्थक नाम भूतपति रख दिया।

दूसरे दिन आचार्य महाराजने यह सोचकर कि मेरी मृत्यु संनिकट है यदि ये समीप रहैंगे तौ ये वड़े दुःखी होंगे, उन दोनों मुनियोंको कुरीश्वर भेज दिया और तव वे ६ दिन चलकर उस नगरमें पहुंचे। वहां आषाढ़ कृष्णा[1] पञ्चमीको योग ग्रहण करके वर्षाकाल वहीं पर पूर्ण किया। तत्पश्चात् दक्षिणकी तरफ विहार करके कुछ दिनोंमें वे दोनों ही महात्मा करहाट नगरमें पहुंचे। वहां पर श्रीपुष्पदंतमुनि तौ अपने जिनपालित नामके भानजेको मुनिदीक्षा देकरके अपने साथ लेकर वनवासदेशमें जा पहुंचे। इधर भूतवलि महाराज द्रविड़देशके मथुरानगरमें पहुंचकर ठहर गये। करहाटनगरसे इन दोनों मुनियोंका साथ छूट गया।

श्रीपुष्पदंतमुनिने जिनपालितको पढ़ानेकी इच्छा करके कर्म प्राभृतकी छहखंडोंमें उपसंहार करके ग्रंथरूप रचना करनी चाहिये ऐसा विचार करके उन्होंने प्रथम ही जीव स्थानाधिकार की (जिसमें कि-गुणस्थान जीव सामासादि वीसप्ररूपणाओंका

---

१ दक्षिण देशमें पहिले शुक्लपक्ष पश्चात् कृष्णपक्ष होता है वह भी अगले महिने कृष्णपक्ष होता है। अर्थात् हमारे उत्तर हिंदुस्थानके पंचांगों के अनुसार यह आषाढ कृष्ण श्रावणका कृष्णपक्ष है।

वर्णन है) बहुत उत्तमताके साथ रचना की। फिर जिनपालित शिष्यको सौ सूत्र पढ़ाकर भूतवलिमुनिके पास उनका अभिप्राय जाननेके लिये भेजा और जिनपालितने जाकरके सौ सूत्र भूतबलिमहाराजको सुना दिये तो सुनकर उन्होंने श्रीपुष्पदंतमुनिका षट्खंडरूप आगम रचना करनेका अभिप्राय समझ लिया और अब लोग दिन पर दिन अल्पायु और अल्पमति होते जाते हैं ऐसा विचार करके स्वयं पांच खंडोंमें पूर्व सूत्रोंके सहित छह हजार श्लोकोंद्वारा द्रव्यप्ररूपणा अधिकारकी रचना की और इसके पश्चात् महाबंध नामक छठे खंडको तीस हजार सूत्रोंमें रचना करके समाप्त किया। पहिले पांचखंडोंके नाम—जीवस्थान, क्षुल्लकबंध, बंधस्वामित्व, भाववेदना और वर्गणा है।

श्रीभूतवलि मुनिमहाराजने इस प्रकार षट्खंड आगमकी रचना करके पुस्तकमें लिखवाकर लिपिबद्ध किया और ज्येष्ठ शुक्ला पञ्चमीको चतुर्विध संघसहित वेष्टनादि उपकरणोंके द्वारा क्रियापूर्वक पूजा की। उसी दिनसे यह जेष्ठशुक्ला पंचमी संसारमें श्रुतपंचमी पर्वके नामसे प्रसिद्ध हुई। इस दिन श्रुतका पुस्तक रूपमें अवतार हुआ इस लिये आजपर्यंत समस्त जैनी जेठ सुदी पंचमीके दिन श्रुतपूजा (श्रुतस्कंधविधान) करते हैं।

कुछ दिनके पश्चात् भूतवली आचार्यने षट् खंड आगम अच्छी तरह अध्ययन (कंठाग्र) करके जिनपालितके साथ वह पुस्तक देकर श्रीपुष्पदंतमुनिके पास भेज दिया और उसे देखकर अपने चिंतवन किये हुये कार्यको पूर्ण हुआ समझकर श्रीपुष्पदंताचार्य शास्त्रके प्रगाढ़ अनुरागमें तन्मय हो गये और उस ग्रंथको

बड़ी भक्तिसे पढ़कर अगले जेष्ठकी पंचमीको बड़े आनंद उच्छाय से श्रुतस्कंधविधान किया और इस वर्ष दक्षिणके सब नगरोंमें श्रुतपंचमी पर्व मानकर श्रुतपूजा की गई।

दक्षिण देशमें तौ यह श्रुतपंचमी पर्व उसी दिनसे आज तक मनाया जाता है परंतु हमारे उत्तरप्रांतमें कुछ दिनोंसे ही यह पर्व बड़े बड़े शहरोंमें मनाया जाता है। सर्वत्र इसका प्रचार अभी तक नहिं हुआ है अतएव विद्यार्थियोंको चाहिये कि-प्रति वर्ष जहां तक बनै इस पर्वके मनानेका प्रयत्न किया करैं और दो चार नवीन ग्रंथ प्राचीन ग्रंथ परसे जीर्णोद्धार करा कर अपने यहांके मंदिरजीमें स्थापन किया करैं।

——:०:——

६१. जकडी (४) रामकृष्ण कृत।

——:०:——

अरहंतचरन चित लाऊं। पुन सिद्ध शिवंकर ध्याऊं॥
वंदौं जिनमुद्राधारी। निर्ग्रन्थ यती अविकारी॥
अविकार करुणावंत वन्दौं. सकललोकशिरोमणी।
सर्वज्ञभाषित धर्म प्रणमूं, देय सुख सम्पति घनी॥
ये परममंगल चार जगमें, चारु लोकोत्तम सही।
भव भ्रमत इस असहाय जियको, और रक्षक कोऊ नहिं॥ १॥
मिथ्यात्व महारिपु दंड्यो। चिरकाल चतुर्गति हंड्यो॥
उपयोग-नयन-गुन खोयो। भरि नींद निगोदै सोयौ॥
सोयौ अनादि निगोदमें जिय, निकर फिर थावर भयौ।

भू तेज तोय समीर तरुवर, थूलसूक्ष्मतन जयौ ॥
कृमि कुंथु अली सेणी असैणी, व्योम जल थल संचर्यो ।
पशुयोनि वासठलाख इसविधि, भुगति मर मर अवतर्यो ॥ २ ॥
अति पाप उदय जब आयौ । महानिंद्य नरकपद पायो ॥
थिति सागरों वन्ध जहाँ है । नानाविधि कष्ट तहाँ है ॥
है त्रास अतिआताप वेदन, शीत बहुयुत है मही ।
जहां मार मार सदैव सुनिये एक क्षण साता नहीं ॥
नारक परस्पर युद्ध ठानें, असुरगण क्रीड़ा करैं ।
इसविधि भयानक नरकथानक, सहै जी परवश परैं ॥ ३ ॥
मानुषगतिके दुख भूलौ । वसि उदर अधोमुख झूलौ ॥
जन्मन जो संकट सेयौ । अविवेक उदय नहिं वेयौ ॥
वेयौ न कछु लघुवालवयमें, वंशतरुकोपल लगी ।
दल रूप यौवन वयस आयौ, काम-दौं तब उर जगी ॥
जब तन बुढ़ापौ घटौ पौरुष, पान पकि पीरौ भयौ ।
झड़ि परयौ काल बयार वाजत, वादि नरभव यौं गयौ ॥४॥
अमरापुरके सुख कीने । मनवांछित भोग नवीने ॥
उरमाल जबै मुरझानी । विलपौ आसन-मृतु जानी ॥
मृतु जान हाहाकार कीनौं, शरण अब काकी गहौं ।
यह स्वर्गसम्पति छोड़ अब मैं, गर्भवेदन क्यौं सहौं ॥
तब देव मिलि समझाइयौ, पर कछु विवेक न उर वसौ ।
सुरलोकगिरिसे गिरि अज्ञानी, कुमति-कांदौ फिर फंसौ ॥५॥
इस विधि इस मोही जीनें । परिवर्तन पूरे कीनें ॥
तिनकी बहु कष्टकहानी । सो जानत केवलज्ञानी ॥

ज्ञानी विना दुख कौन जानै, जगत वनमें जो लह्यो।
जरजन्ममरणस्वरूप तीक्षन. त्रिविधि दावानल दह्यो ॥
जिनमतसरोवरशीतपर अव, वैठ तपन वुझाय हौं।
जिय मोक्षपुरकी वाट वूझौं. अब न देर लगाय हौं ॥ ६ ॥
यह नरभव पाय सुज्ञानी। कर कर निजकारज प्रानी ॥
तिर्यंचयोनि जब पावै। तब कौन तुझे समुझावै ॥
समुझाय गुरु उपदेश दीनौं, जो न तेरे उर रहै।
तो जान जीव अभाग्य अपनो, दोष काहूको न है ॥
सूरज प्रकाशै तिमरनाशै, सकल जनकौ भ्रम हरै।
गिरिगुफागर्भे उद्योत होत न, ताहि भानु कहा करै ॥ ७ ॥
जगमाहिं विषयवन फूलौ। मनमधुकर तिस विच भूलौ ॥
रसलीन तहां लपटानौ। रस लेत न रंच अघानौ ॥
न अघाय क्यौं ही रमै निशिदिन, एक क्षण भी ना चुकै।
नहिं रहै वरजौ वरज देखौ, वार वार तहां झुकै ॥
जिनमतसरोत सिधान्तसुन्दर, मध्य याहि लगाय हौं।
अब 'रामकृष्ण' इलाज याकौ. किये ही सुखपाय हौं ॥ ८ ॥

——:०:——

६२. सुकोशलमुनि।

अयोध्यानगरीमें प्रजापाल राजाके समयमें एक सिद्धार्थ-नामके धनी शेठ थे। इनके ३२ स्त्रियां थीं परंतु संतान एकके भी नहीं थी। सबमे प्रिय जयावती नामकी स्त्री थी उसे पुत्र-प्राप्तिकी सबसे अधिक इच्छा थी जिससे वह अनेक यक्षदेवी देव-

ताओंकी पूजा करके उनसे पुत्र चाहती थी। परंतु किसी भी देवताने उसकी इच्छा पूर्ण नहिं की। उसे कुदेवादिकको पूजते हुये एक मुनिमहाराजने देखा तो उसे उपदेश दिया कि—पुत्रकी प्राप्ति इन मिथ्याती देवताओंको पूजनेसे कदापि नहिं हो सकती। पुत्र धन धान्यादि सुखकी जितनी सामग्री मिलती है वह पुण्यके उदयसे मिलती है। इस लिये तू पुण्यप्राप्तिके लिये जिनधर्म पर विश्वासकर जिससे तू सच्चे मार्ग पर आ जायगी और पुण्यके प्रतापसे तेरी इच्छा सातवर्षके भीतर २ पूरी हो जायगी मुनि महाराजका उपदेश उसे लग गया वह उसी दिनसे जिनधर्ममें रत हो गई।

कुछ वर्षोंके बाद जयावतीको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। पुत्रप्राप्ति की खुशीमें धर्मकी बड़ी प्रभावना की गई। नाम सुकोशल रक्खा गया। सुकोशल बड़ा सुंदर और तेजस्वी था। सिद्धार्थशेठ संसार शरीर भोगोंसे पहिलेसे ही विरक्त हो रहे थे। परँतु जब तक विषय संपत्ति संभालनेवाला वा भोगनेवाला न हो तब तक वे सर्वथा त्याग नहिं कर सकते थे। अब सुकोशलके होते ही उस के ललाट पर शेठपदका तिलक करके आप नयंधर मुनिके पास जिन दीक्षा ले गये।

अभी बालकको जन्मते देर न हुई कि सिद्धार्थशेठ घरबार छोड़कर योगी होगये इस कठोरता पर जयावतीको बड़ा क्रोध आया और नयंधर मुनिपर क्रोध आया कि उन्हे इस समय दीक्षा देना उचित न था इस कारण मुनिमात्रपर उसकी अश्रद्धा हो गई और अपने घर पर मुनियोंका आना जाना बन्द कर

दिया। बड़े दुःखकी वात है कि जीव मोहके वशीभूत हो धर्म को भी छोड़ बैठता है।

- बड़ा होनेपर सुकोशलने भी अपने पिताका अनुकरण करके बड़े २ घरोंकी ३२ कन्याओंसे विवाह किया और दिन रात भोगों में विताने लगे। माताका उसपर अत्यन्त स्नेह होनेके कारण नित्य नयी २ भोगसामग्री प्राप्त होती थी। सैकड़ों दास दासी हाजिर रहते थे। जो चाहता था वह वस्तु आंखोंके इशारा करते ही प्राप्त होती थी।

एक दिन सुकोशल अपनी माता धाय और कई स्त्रियों सहित महलकी छतपर बैठा २ अजोध्याकी शोभाको देख रहा था। उसकी दृष्टि बहुत दूर दूर तक जारही थी। उसने एक मुनिमहाराजको आते देखा वे मुनिमहाराज सुकोशलके पिता ही थे उनके बदन पर कुछ भी कपड़ा न देख चकित होकर मातासे पूछा कि-माता ये कौन हैं? जिनके पास कुछ भी वस्त्र नहिं है। सिद्धार्थको देखते ही जयावतीकी आंखोंमें खून बरसने लगा उसने कुछ घृणा और उपेक्षासे कहा कि—होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलव? परंतु माताके इस उत्तरसे सुकोशलका दिल नहिं भरा। माता ये तो बड़े खूबसूरत और तेजस्वी मालूम पड़ते हैं तुम इन्हें भिखारी कैसे बताती हो। जयावतीको अपने स्वामी पर ऐसी घृणा करते देख सुकोशलकी धाय सुनंदासे नहिं रहा गया। उसने कहा-तुम जानती हो कि ये हमारे मालिक हैं और सुकोशलको मिथ्याश्रद्धान करा रही हो। यह तुम्हें योग्य नहीं। क्या होगया यदि ये मुनि हो गये तो और भी हमारे पूज-

नीय हो गये। जिसकी जगह तू उल्टी निंदा कर रही है। यह बात पूरी भी न होने पाई थी कि जयावतीने आंखके इशारेसे समझाया कि—तू चुप रह, बीचमें क्यों बोलती है?

सुकोशल ठीक तो नहिं समझ पाया परंतु इतना अवश्य ज्ञान हो गया कि मेरी माने मुझे सच्ची बात नहिं बतलाई इतनेमें रसोइया सुकोशलको भोजनार्थ चलनेको प्रार्थना करने लगा। सुकोशलने भोजनार्थ जानेको इनकार कर दिया। माता वगेरह सबने कहा कि चलो! बहुत समय हो गया परंतु सुकोशलने कहा "जब तक उन महात्माका सच्चा २ हाल न जान लूंगा तब तक मैं भोजन नहिं करूंगा। जयावतीको सुकोशलके इस आग्रहसे कुछ गुस्सा आ गया सो वह तो वहांसे चली गई। पीछेसे सुनंदा-धायमाताने सिद्धार्थ मुनिकी सब बातें उसे समझा दीं। सुन-कर सुकोशलको बड़ा दुःख हुआ और साथ ही उसे संसार श-रीर भोगोंसे कुछ वैराग्य भी हो आया। वह उसी वक्त मुनिमहा-राजके पास गया और उन्हें विनयसहित नमस्कार करके धर्म श्रवण करनेकी इच्छा प्रगट की। सिद्धार्थ मुनिमहाराजने उसे मुनि और गृहस्थका स्वरूप भिन्न भिन्न प्रकारसे विस्तार सहित सम-झाया। सुकोशलको गृहस्थधर्मपर रुचि न होकर मुनिधर्म बड़ा पसंद आया और अपनी स्त्री सुभद्राकी गर्भज संतानको अपने शेठ पदका तिलक करके माया ममता धन दौलत और स्वजन-परिवारको त्यागकरके अपने पिताके पास ही मुनिदीक्षा लेकर वनको चल दिया।

एक मात्र पुत्र और वह भी योगी हो गया वह सुनकर जया-

वतीके हृदय पर बड़ी भारी चोट लगी। वह पुत्रवियोगसे पग-ली हो गई खाना पीना उसके लिये जहर हो गया। अहोरात्र नेत्र आंसुओंसे भरे रहते। इसी चिंता दुःख और आर्तध्यानसे मरकर मगधदेशके मोद्गलिक नामके पर्वत पर व्याघ्रीका जन्म पाया। इसके तीन बच्चे हुये, सो बच्चों सहित उसी पर्वत पर रहती थी।

विहार करते २ एक दिन सिद्धार्थ और सुकोशल मुनिने इस पर्वत पर आकर योग धारण किया। योग पूरा होने पर ये जब सिद्धार्थ शहरमें जानेके लिये पर्वतसे उतरने लगे तो उस समय वह व्याघ्री (जो कि पूर्व जन्ममें सिद्धार्थकी स्त्री और सुकोशल की माता थी) इन्हे खानेको दौड़ी। ये जबतक सन्यास लेकर बैठते हैं कि इतनेमें उसने आ दबाया और फाड़कर खाने लगी सुकोशलको खाते २ जब उसका हाथ खाने लगी तो उस समय सुकोशलके हाथके चिन्हों (लांछणों) पर दृष्टि जा पडी। उन्हें देखते ही उसे पूर्व जन्मकी स्मृति हो आई और जिस पुत्रपर बेहद प्यार था जिसके वियोग दुःखसे ही मरी थी उसी पुत्रको खा रही हूं। धिक्कार है मुझ पापिनीको ! जो अपने ही प्यारे पुत्रको मैं खा रही हूं। हाय हाय मैं मोहमें फसकर ऐसा घोर पापकर रही हूं इत्यादि अपने पापोंकी आलोचना करके वह व्याघ्री एकदम शरीरसे विरक्त हो सन्यास धारण करके शुभ भावोंसे प्राण छोड़कर सौधर्म स्वर्गमें देव हुई और वे दोनों पिता पुत्र स-माधिसे शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें गये।

६३. जकड़ी (५) कविदासकृत ।

—:०:—

तुम त्रिभुवनपति हो जिया, बल अपना क्यों गमाया ।
तत्त्व सकल परहत्थे[1] दिया, विषयनिसौं मन लाया ॥
लाय मन विषयहिं निरत्ता चहूंगतिमें अति भमौ ।
जिनधर्म तजि मिथ्यात सेया, रहसि बांधे दुहकमौ ॥
संसारमें वसु सार जान्या मोह परिग्रह तुम किया ।
कवि दास वास कुवास छांड़ौ तुम त्रिभुवनपति हो जिया ॥

ज्ञान कछू हिरदै धरौ जग धंदा करि जानौ ।
कामविषय सब परिहरौ, समता घटमें आनौ ॥
आनि समताभाव घटमें, कुमति दूरि निवारओ ।
दिढ़ गहौ समकितभाव करुना, होय शुभमति सारओ ॥
बहुत दिन भव बसत बीते, क्यों न घरकी सुधि करौ ।
कवि दास वास कुवास छांड़ौ, ज्ञान कछु हिरदै धरौ ॥ २ ॥

काल बहुत भमते गए, मारग कहूं न पाया ।
मोहकरमठग संग लगे, नट ज्यौं नाच नचाया ॥
नाच नट ज्यों तू नचाया, स्वांग बहुतेरे धरे ।
पांच पात्री[2] छठौ नायक[3], नाचते त्रिभुवन फिरे ॥
जिय सकल सकति गंवाय अपनी, आनिके परहथ भए ।
कवि दास वास कुवास छांडौ, काल बहु भमते गए ॥ ३ ॥

---

१ पराये हाथमें । २ पांचों इन्द्रियां । ३ मन ।

परम महासुख चाहहु, तो परसंग निवारो ।
अष्ट करमदल गाहहु, अपनी सकति संभारो ॥
जिय सकल सकति संभार अपनी, सबै सेव तेरी करैं ।
सुर असुर नर धरणिंद खग मुनि, तोहि जपि हियरे धरैं ।
तुम आप परका भेद जानो, बहुरि भव नहिं आवहु ।
कवि दास वास कुवास छांड़ो, परम महासुख चाहहु ॥ ४ ॥

——:०:——

६४. कार्तिकेय मुनि ।

——:०:——

कार्तिक पुरके राजा अग्निदत्तकी रानी वीरवतीके कृत्तिका नामकी एक लड़की थी । वह बहुत ही सुंदरी थी । एकबार अ-ठाईके दिनोंमें उसने आठ दिनके उपवास किये । अंतके दिन वह भगवानकी पूजा करके आशका (पुष्पमाला) लेकर आई और अपने पिताको उसने दी । पिता माला लेते समय उसकी दिव्य रूप राशिको देखकर उसपर आशक्त हो गया । शेषमें कामसे पीडित होने पर उसने अनेक अजैनी और कुछ जैन मुनियोंको एकत्र करके उनसे पूछा कि- क्यों महात्मा विद्वानों ! आपलोग कृपा करके यह बतावें कि—मेरे घरमें पैदा हुये रत्नका मालिक मैं ही हो सकता हूं कि अन्य कोई ? राजाका प्रश्न पूरा होते ही सब ओरसे एकही आवाज आई कि – महाराज उस रत्नके तो

१ दलन करो-नष्टकरो ।

आपही मालिक हो सकते हैं न कि दूसरा। परंतु जैन साधुओंने राजाके प्रश्नका गहरा विचार करके उत्तर दिया कि-अपने यहां उत्पन्न हुये रत्नके मालिक आप ही हैं परंतु एक कन्यारत्नको छोडकर। क्योंकि कन्या पर मालिकी आप पिताके नातेसे योग्य वरके साथ विवाहादि क्रिया कर देने आदि द्वारा कर सकते हैं। जैन साधुओंका यह हितभरा उत्तर राजाको बहुत बुरा लगा और लगना ही चाहिये क्योंकि पापियोंको हितकी बात कदापि नहीं सुहाती। राजाने जैन मुनियोंको देश निकाला दे दिया और अन्य विद्वानोंकी सम्मतिको मानकर अपनी पुत्रीके साथ स्वयं विवाह कर लिया। कुछ दिनोंके बाद कृत्तिकाके दो संतान एक लड़का और लड़की हुई। लडकेका नाम कार्त्तिकेय और लड़कीका नाम वीरमती रक्खा गया। वीरमती बडी सुन्दर थी उसका विवाह रोहेड नगरके राजा क्रौंचके साथ किया। वीरमती वहीं रहकर सुखके साथ दिन विताने लगी।

इधर कार्त्तिकेय भी चौदह वर्षका हो गया। एकदिन कार्तिकेय अपने साथी राजकुमारोंके साथ खेल रहा था उस दिन वे सब नानाके यहांसे आये हुये नाना प्रकारके अच्छे २ वस्त्र और गहने पहिरे हुये थे। पूछने पर कार्त्तिकेयको मालूम हुवा कि वे वस्त्राभूषण सब राजकुमारोंके नाना मामाओंके यहांसे आये हुये थे। तब उसने अपनी मासे जाकर पूछा कि-क्यों मा! मेरे साथी राजकुमारोंके लिये तो उनके नाना मामा अच्छे २ कपड़े गहने भेजते हैं, मेरे नाना मामा क्यों नहीं भेजते? अपने प्यारे बच्चेकी ऐसी भोली बात सुनकर कृत्तिकाका हृदय भर आया आं-

खोंसें आंसू वह चले। अब उसे वह क्या कहकर समझावे, शेषमें वेसमझ वच्चेके अत्यंत आग्रहसे उसे सच्ची वात कह देना पड़ी वह रोती हुई वोली-वेटा! मैं इस महा पापकी वात तुझसे क्या कहूं? कहते हुये मेरी छाती फटती है। जो वात दुनियामें आज तक भी न हुई वही वात तेरे मेरे संबंधमें है। वह यह है कि— जो तेरा वाप है वही मेरा वाप है। मेरे पिताने मुझसे जवर्दस्ती व्याह करकें मुझे कलंकित किया और उसीका तू फल है।

कार्तिकेयको इस वातके सुननेसे वेहद दुःख और ग्लानि हुई, लज्जा और आत्मग्लानिसे उसका हृदय तलमला उठा। उस ने फिर मातासे पूछा कि-क्यों मा! उस समय मेरे पिताको ऐसा अनर्थ करते किसीने रोका नहीं, सब कानोंमें तेल डाले पड़े रहे उसने कहा-वेटा! रोका क्यों नहीं। अनेक जैनमुनियोंने समझाया था परंतु उनकी वात नहिं मानी गई, उल्टा उन मुनियोंको देशसे निकाल दिया।

कार्त्तिकेयने फिर पूछा कि-माता वे गुणवान् मुनि कैसे होते हैं! कृत्तिका वोली-वेटा! वे वड़े शांत रहते हैं किसीसे लड़ते झगड़ते नहिं। कोई पचासों गालियां भी उन्हे दे जाय तौ वे उसे कुछ नहिं कहते और न उन पर क्रोध करते हैं। वेटा! वे वड़े विद्वान होते हैं अपने पास धन दौलत तौ दूर रहे वे एक फूटी कौड़ी भी अपने पास नहिं रखते। वे चाहे कैसी ही ठंडी गर्मी वा वर्षा क्यों न हो कपड़ा नहिं पहरते, दशों दिशा वा आकाशही उन के कपड़े होते हैं। उनके सब समान हैं। वेटा! वे वड़े ही दया-वान् होते हैं कभी किसी जीवको जरा भी नहीं सताते जीवोंकी

रक्षाके लिये वे सब एक मयूरके पांखोंकी बड़ी कोमल पीछी रखते हैं सो चलते उठते वैठते समय उस पीछीसे जीवोंको हटा कर साफ जमीन पर चलते वैठते उठते हैं। उनके हाथमें एक लकड़ीका कमंडलु होता है उसमें शौचादि क्रियाके लिये जल रहता है। वे भिक्षाके लिये श्रावकोंके घर जाते जरूर हैं परंतु मांगकर नहिं खाते कोई नवधा भक्तिपूर्वक प्रासुक आहार देता है तौ हाथमें ही लेकर सोलह ग्राससे अधिक नहिं खाते। वहींपर प्रत्येक ग्रासके साथ एक एक चुलु पानी पीते जाते हैं। फिर कभी पानी नहिं पीते। यदि कोई भक्तिपुर्वक आहारके लिये नहिं वुलाता है तौ फिरकर वनमें चले आते हैं इसी प्रकार पंद्रह २ महीनेके उपवास करजाते हैं। वेटा! मैं उनके आचार विचारकी वाते कहां तक समझाऊं। ससारमें सच्चे साधु एक मात्र वेही होते हैं। अन्य नहीं।

अपनी माताके द्वारा जैन साधुओंकी प्रशंसा सुनकर कार्तिकयकी उनपर वडी श्रद्धा हो गई। उसे अपने पिताके अनुचित कार्यसे विराग तौ पहिले ही हो गया था माताके इसप्रकार समझानेसे उसको दृढ जम गई। वह उसी समय माया ममता छोड घरसे निकल कर जैन मुनियोंके स्थान तपोवनमें पहुंच गया। मुनियोंका संग देखकर उसे वडी प्रसन्नता हुई। उसने वडी भक्तिसे उन सब साधुओंको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और मुनिदीक्षाके लिये प्रार्थना की। संघके स्वामी आचार्य महाराजने उसे दीक्षा देकर मुनि वना लिया। कुछ दिनोंमें ही कार्त्तिकेय मुनि समस्त शास्त्रोंको पढकर विद्वान हो गये।

कार्त्तिकेयकी माताने पुत्रके सामने मुनियोंकी प्रशंसा अवश्य की थी परंतु उसे क्या मालूम था कि वह यह सब सुनकर मुनि हो जायगा। इसलिये जब उसने सुना कि कार्त्तिकेय तो मुनि हो गया तो वडा पश्चात्ताप करने लगी उसके वियोगसे उसे वहुत ही दुःख हुआ। शेषमें पुत्रके आर्त्तध्यानसे ही मरकर वह देवी हुई।

उधर कार्त्तिकेय मुनि घूमते फिरते एक दिन अपने वहनोईके रोहेड नगरमें आये, जेठका महीना था गर्मी खूब तेजीसे तप रही थी। अमावस्याके दिन कार्त्तिकेय मुनि भित्ताके लिये राज महलके नीचे होकर जा रहे थे कि—उन पर महलमें बैठी हुई उनकी वहन वीरमतीकी नजर पड़ गई। उसे अपना भाई पहचान कर उसी वक्त अपनी गोदमें शिर रखकर लेटे हुये स्वामी का शिर नीचे रखकर दौडी हुई भाईके पास आई और वडी भक्तिसे अपने भाईको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया तथा अनुरागके वश हो मुनिके पावोंमें गिर पड़ी। सो उचित ही है क्योंकि प्रथम तो भाई फिर मुनि हो तव किसका प्रेम उस पर न हो। क्रौंच राजाने जव एक नंगे भिखारीके पांव पड़ते हुये अपनी रानीको देखा तो उन्हें वडा क्रोध हो आया। इस कारण उसने अपने सेवकों द्वारा मुनिको खूब पिटवाया। यहां तक मुनिमहाराज पीटे गये कि मारसे वेहोश हो जमीन पर गिर पड़े। सच है पापी मिथ्याती और जैनधर्मसे द्वेष रखनेवाले लोग ऐसा कौन सा नीच कर्म है जो नहिं कर डालते।

कार्त्तिकेय मुनिको अचेत पडे देखकर उनकी पूर्वजन्मकी माता जो इस जन्ममें व्यंतरनी हुई है मोरनीका रूप लेकर आई और उन्हे उठाकर शीतलनाथ भगवानके मंदिरमें निरापद स्थान पर रख दिया, मुनिकी अवस्था वहुत खराव हो चुकी थी। उनके अच्छे होनेकी कोई सूरत न थी इस कारण मूर्च्छासे चैतन्य होने पर उन्होंने सन्यास धारण कर लिया सो मरकर स्वर्गधाम पधारे। उस समय देवोंने आकर उनकी भक्ति पूजा की थी। उसी दिनसे वह स्थान कार्त्तिकेय तीर्थसे प्रसिद्ध हुआ और वे वीरमतीके भाई थे उसने उनकी पुजाकी थी इस कारण दुसरा भाई वीजिका त्यौहार भी तवहीसे चलता है।

ये ही कार्त्तिकेय स्वामी प्राकृत द्वादशानुप्रेक्षा नामक ग्रंथके कर्त्ता हैं जो कि—इस समय स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा नामसे प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि—ये कार्त्तिकेयस्वामी महावीरभगवान से पहिले और पार्श्वनाथभगवानके पीछे किसी समयमें हो गये हैं।

——:०:——

६५. जकडी (६) जिनदासकृत।

राग आसासिंधु।

थिर चिर देवा गणहरसेवा, कर गुनमालाज्ञान।
थिर चिर जीवा भरमनि भमता, करि करुना परिनाम॥
करि करुनापरिनाम सुजंता, गुणकरि सवै समाना।
कर्मतनी थिति अति बधि दीसै, निश्चय केवलज्ञाना॥

यौं ज्ञानै विनु जतन करीजें, परिहरियै परपीडा।
मूर्ख होय जिन आप बँधावौ, ज्यौं कुसियाला कीडा॥ १॥
ज्यौं कुसियाला अपनी लालों, फंदति आपोंआप।
त्यौं तू आला विकलपमाला, बंधति पुन्न रु पाप॥
पुन्न रु पाप हुवै दिढ़ बंधन, लोकशिखर किम जावै।
थिर चर होय चहूँगति भीतर, रह्यौ चिदानँद छावै॥
चितमें चेत चमकृत नाहीं, साथि सरूपी कूड़ा।
इंद्री पंचतनैं वसि पड़करि, विषय विनोदां बूड़ा॥ २॥
विषय विनोदां आप विरोध्या, जात निगोद अपार।
तहां काल अनंता दुःख सहँता एकलड़ौ निरधार।
एकलड़ौ निरधार निरंतर, जामन मरन करंतौ।
कर्म विपाकतनैं वसि पड़ियौ, फिर फिर दुःख सहंतौ॥
वरजै कौन स्वयंकृत कर्महिं, यौहि अनादि सुभावौ।
वांछित सुक्ख कहौ किमि पावौ, दंसणतणौ अभावौ॥ ३॥
दंसण गुण विन जात जिंके दिन, सो दिन धिक धिक जानि।
धन्य सोही सोही परभिन्नो, भ्रांति न मनमंहि आनि॥
भ्रांति सुमिथ्यादृष्टीलच्छन, संशयरहित सुदिष्टी।
यौं जानें विन गह्यौ गहीजै, पद पावें परमिष्टी॥
ए दुइ भेद जिनागम कहिया, ते तनमैं अवधारै।
सुद्ध सुसम्यकदरसन कारन, मिथ्यादृष्टि निवारै॥ ४॥

---

१ कोशेका अर्थात् एक प्रकारके रेशमका कीडा। २ वासे। ३ दोनों। ४ अकेला। ५ जिस दिन।

मिथ्याती मुनिवर अवर सुतरुवर, सहैं कलेश अनेक।
तप तप्यौ न तपियौ खप्यौ न खपियौ, दोऊ रहित विवेक॥

दोऊरहित विवेक जीव इक, कर्म बँधै इक छोड़ै।
आस्रव बंध उदय नहिं समझत, क्यौंकर कर्महिं तोड़ै॥
दंसण-णाण-चरण-गुणरयणा, मूरख खिन न सँभालै।
काचसमान विषयसुख साटै, ते गहि तीनौ रालै॥ ५॥

गहि तीनौ रयणा तनमन वयणा, चर निज चरन सयान।
डंडसि करुणा खंडसि मँयणा, मंडसि धरमह ध्यान॥
मंडसि ध्यान कर्मक्षयकारण, कारण काज दिखावै।
काज सुदंसण ज्ञान सकतिसुख, सहजहि चारो पावै॥

वहुडि न कोइ रहै कृतकर्मह, जो जग जीवा ताणै।
एक समयमें केवलज्ञानी, अतीत अनागत जाणै॥ ६॥

अतीत अनागत देखत जानत, सो हम लख्यौ न देव।
जो हूं देखत देखि विहरखत, हरखि करत तसु सेव॥
हरखि हरखि तसु सेव करंता, जिन आपनसौ कीनौं।
मोहनधूलि धरी सिर ऊपरि, ठगि रयणत्तो लीनौं॥

अब श्रीकुन्दकुन्दगुरुवयणा, जिन विन घडि न सुहावै।
आपणड़ा गुण सहज सुनिर्मल, यौं जिनदास हि गावै॥७॥

---

२ ज्ञान। ३ रत्न। ४ बदले। ५ फेंक देता है। ६ वचन।
७ मदन-कामदेव।

६६. ब्रह्मगुलालमुनि।

——:०:——

विक्रमसंवतके सोलह सौ और सतरह सौ के बीचमें सूरदेशके अन्तर्गत एक टापा नामका नगर था। उस नगरमें पद्म नगरके निवासी पद्मावतीपुरवालमेंके पांड़े हीरग और हल्ल नामके दो भाई व्यापारार्थ आये थे। उस टापा नगरमें ये दोनों भाई अपने धर्म कर्ममें सावधान होकर प्रसिद्ध हुये। हल्ल नामका छोटा भाई एक दिन कार्यवश ग्रामांतरमें गया था उनके पीछे टापा नगरमें आग लगी सो बहुतसे घर कुटुम्ब पशु जलकर मर गये। उसमें हल्लका कुटुंब भी मय हिरगके सब जलकर मर गया हल्लने आकर सुना तो बड़ा ही दुःखी हुआ। टापाके राजाके पास जाकर रोया धोया तो राजाने इसको धर्मात्मा गुणी समझ अपने पास रख लिया। फिर थोड़े दिनमें इसका विवाह करके घर गृहस्थी बना दिया। उस हल्लके कुछ दिन बाद सुन्दर गुणी पुत्र हुआ उसका नाम ब्रह्मगुलाल रक्खा गया। यह लड़का बडा होने पर समस्त प्रकारकी विद्या पढ़कर बहुतही चतुर हो गया। परंतु संगीत शास्त्रमें (नाचने, गानेमें) बड़ा नामी हुवा। नाटक स्वांग भरकर नाचने गानेको बहुत अच्छा समझता था। सो इसी काममें रहते रहते बहुरूपियाके भेष लानेमें बड़ा ही चतुर होगया जिससे राजकुमारकी प्रीति ब्रह्मगुलाल पर बहुत हो गई। नित्य नये स्वांग लालाकर राजा व राजाके पुत्रका मनोरंजन किया करता था।

एक समय राजकुमारने अपने अजैन दोस्तोंके बहकानेसे प्रस्ताव किया कि ब्रह्मगुलाल ! तुम सर्व प्रकारके भेष तो बनालेते हो परंतु सिंहका भेष बनाकर लावो जिसमें वही पराक्रम वही गर्जन आदि सब गुण हों। ब्रह्मगुलालने कहा-सिंहका भेष बनाना कोई मुस्किल नहिं है। परन्तु सिंहके भेषमें किसी पर चोट हो जाय तो मुस्किल है। राजकुमारने एक खून माफ करनेकी लिखित आज्ञा पितासे दिलवादी या स्वयं लिखदी।

फिर क्या था ब्रह्मगुलाल सिंहका रुप बनाकर राजाकी भरी सभामें कड़ककर आया। राजकुमारने वहाँ पर बकरीका एक बच्चा मगाकर बाँध रक्खा था। क्योंकि राजकुमार और उसके दोस्तोंने ब्रह्मगुलालके जैनीपनेकी परीक्षा करनेके लिये सिंहका रूप धरवाया था। देखें ! यह बकरीके बच्चेको मारता है कि नहीं। इस कारण राजकुमारने कहा कि—यह सिंह काहेका है गीदड़ है। सिंह होता तो आंगनमें बकरीका बच्चा खड़ा है उसको मार न डालता। वश ! फिर क्या था ? सिंह क्रोधित होकर बकरीके बच्चेको मारना उचित न समझ राजकुमार पर झपटा सो उसे थप्पड़से गिराकर चीर डाला जिससे राजकुमार मर गये। बड़ा हाहाकार होने लगा, सिंह तो घर चला गया। राजाने एक खून माफ कर दिया था सो वह ब्रह्मगुलालको कुछ भी दंड नहिं दे सका। परंतु पुत्रकी मृत्युका बड़ा भारी शोक था। किसी न किसी तरह चित्तको शांत होना चाहिये। इस चिंतामें देख राजाके मंत्रीने ब्रह्मगुलालको कहा कि तुमने सिंहका रूप तो अच्छा बनाया परन्तु अब मुनिका रूप भी जैसेका तैसा बनना चाहिये।

मंत्रीने सोचा था कि यदि यह मुनिका रूप बनानेको इनकार करैगा तो राजाज्ञाके उल्लंघन करनेका दंड दिया जायगा और मुनि होकर मुनिरूप छोड़ देगा तो इसका भी दंड दिया जायगा। ब्रह्मगुलालने कहा कि—महाराज मुनिका रूप तो मैं अवश्य भरूंगा परन्तु उसके लिये कुछ दिनोंकी मुहलत देना चाहिये तब राजाने जब तुमारी खुशी हो तब रूप लेना ऐसा स्वीकार किया और ब्रह्मगुलालने अपने घर आकर कहा कि—मैं तो अब मुनिदीक्षा लेऊंगा। माता पिता स्त्री वगेरहने बहुत कुछ समझाया परंतु सबको उपदेशामृतसे संतुष्ट करके सबसे क्षमा प्रार्थना करली फिर बारह भावना भाकर अपने चित्तको अच्छी तरह दृढ़ कर एक दिन श्रीजिनमंदिरमें जाकर प्रतिमाके सम्मुख प्रार्थना करने लगा कि—अब कालदोषसे मुनिका संयोग मिलना अत्यंत कठिन हो गया है, लाचार हे भगवान! मैं आपके सम्मुख पंचमहाव्रत धारण करता हूं। ऐसा कहकर अपने हाथसे अपने केशोंका लोच करके पीछी कमंडलु धारण करके नग्न दिगंबर मुनि हो गया और उसी वक्त समस्त जैनी भाईयोंको जिन धर्मका उपदेश देकर राजसभामें गया। राजा ब्रह्मगुलालको मुनिके रूपमें देखकर चकित हो गया और शांत मुद्राको देखकर नमस्कार करना पड़ा। फिर उसने जिनधर्मके तत्त्वोंका स्वरूप अच्छी तरहसे वर्णन करके संसार शरीर विषय भोगोंकी असारता दिखाकर राजकुमारकी मृत्युका जो राजाके चित्तमें शोक भर रहा था सो दूर कर दिया। राजानें निष्कपट और प्रसन्न होकर कहा कि तुमने मुनिका बहुत ही अच्छा रूप बनाकर सच्चे धर्मका

उपदेश दिया सो बड़ा उपकार किया अब तुम्हें जो इच्छा हो सो मांगों; मैं देनेको तैयार हूं ।

ब्रह्मगुलालने कहा कि–महाराज बस मुझे क्षमा कीजिये मैंने संसार शरीर भोगोंसे नाता तोड़ दिया अब मुझे किसी भी सांसारिक वस्तुकी कुछ भी चाह नहीं है । ऐसा कह पीछी कमंडलु उठाकर वनको चल दिये । राजाने तथा राजाके मंत्रीने वनमें जा कर बहुत कुछ प्रार्थना करी कि हमारा अपराध क्षमा करके चले आवो । जिस प्रकार सब भेष बना २ कर छोड़ते थे, उसी प्रकार यह वेष भी छोड़ दो । तुमारी वयस और यह काल मुनि होकर कठिन तपस्या करनेका नहीं है । परन्तु ब्रह्मगुलाल तो सच्चे मुनि हुये थे, वे क्यों आने लगे ? तत्पश्चात् माता पिताने तथा स्त्रीने भी वनमें जाकर बहुत कुछ प्रार्थना की परन्तु सबको संसारकी असारताका उपदेश देकर लौटा दिया ।

———:o:———

६७. जकडी (७) जिनदासकृत ।

———:o:———

राग धनाश्री ।

भूला मन मेरा, जिनवर धर्म न वेवै ।
मिथ्या ठग मोह्या, कुगुरु कुमारग सेवै ॥
सेविया कुगुरु कुमार्ग रे जिय, फिरै चहुंगति बावरौ ।
चार विकहा[1] अनादि भापै, सुननकौ[2] जु उतावरौ ॥

1 विकथा । २ सुननेके लिये ।

पर्याय रातौ मदहिं मातौ, फिरै फूल्यौ फुल्लवौ (?)।
यौं कहै दरिगह धरम जिनवर, वेवै जीव न भुल्लवौ ॥ १ ॥

तू यह मगुत्तन[1], काहे मूढ़ गंवावै।
सासय[2] सुखदायक, सो तू ढूंढ़ि न पावै ॥
ढूंढै न पावै पासि तुम ही, आपआप समावए[3]।
गुनरतन मूठीमाहिं तेरी, काई दह दिसि धावए[4] ॥
वह राज अविचल करहि शिवपुर, फिर संसार न आवए
यौं कहै दरिगह यह मगुत्तण, काहे मूढ़ गँवावए ॥ २ ॥

दरसन विन भूला, लीना संजमभार।
काया कष्ट किया, सहै परिसहसार ॥
सारे परीसह सहै दुद्धर, पार नवग्रीवक[5] गयौ।
मारग न जान्यौ पन्यौ उन्मग[6], मांझि भववन थकि रह्यौ ॥
सो धरम कवहुं न पालि सकियौ जो जु जिन आगम कह्यौ।
यौं कहै दरिगह खैयाति-रातौ[7], भार संयम जिय वह्यौ ॥

समकित प्रोहण[8] चढि, ज्यौं पावहि भवपार।
दरसन विन मूढ़ा, करनी सबै असार ॥
करनी सवाई नाव पाथर, चढि न डूबै रे जिया।
सव जाय अहिला[9] विना दरसन, सील संजम तप किया।

---

१ मनुज-तन अर्थात् मनुष्यका शरीर। २ शाश्वत-अविनाशी। ३ समाना-लवलीन हो जा। ४ दशोंदिशाओंमें क्यों दौड़ता है? ५ नव ग्रैवेयिक तक। ६ उन्मार्ग-खोटा मार्ग। ७ प्रशंसामें रत होकर। ८ जहाज। ९ व्यर्थ।

ज्यौं लाव ऊपर चढै बाजी, लेय बांस-अधार वे।
यौं कहै दरिगह सेय जिनवर, ज्यौं पावै भवपार वे ॥ ४ ॥

(२)

सुन सुन जियरा रे, तू त्रिभुवनका राव रे।
तू तजि परभाव रे, चेतसि सहज सुभाव रे ॥
चेतसि सहज सुभाव रे जियरा, परसौं मिलि क्या राच रहै।
अप्पा पर जान्या पर अप्पाणा, चउगइ दुःख अणाइ सहै ॥
अब सो गुन कीजे कर्मह छीजै, सुणहु न एक उपाव रे।
दंसणणाणचरणमय रे जिय, तू त्रिभुवनका राव रे ॥ १ ॥
कर्मनि वसि पड़िया रे, प्रणाया मूढ़ विभाइ रे।
मिथ्यामद नडिया रे, मोह्या मोह अनाइ रे ॥
मोह्या मोह अनाइ रे जियड़े, मिथ्यामद नित माचि रह्या।
पँडि पडिहार खड्ग मदिरावत, ज्ञानावरणी आदि कह्या ॥
खोड़ा चिंत्री कुलाल भँडारी, आठौं दिये बताइ रे।
रे जियडे करमनिवसि पडिया, प्रणाया मूढ़ विभाइ रे ॥२॥
तू मति सोवहि नचीता रे, वैरिनमैंका वास रे।
भव भव दुखदायक रे, तिनका करहि विसास रे ॥
तिनका करहि विसास रे जिवडे, तू मूढा नहिं निमेपु डरै।
जामन मरण जरा दुखदायक, तिनसौं तू नित नेह करै ॥
आपै ज्ञाता आपै दृष्टा, कहि समझाऊँ कासरै ॥

---

१ वरद। २ बाजीगर—नट। ३ अपनाया। ४ चारों गति। ५ अनादि। परिणया। ७ परदा। ८ द्वारपाल। ९ चित्रकार। १० विश्वास। जरा भी। १२ किसको

रे जिय तू मति सोवहि नचीता. वैरिनमैंका वास रे॥ ३॥

ते जगमहिं जागे रे, रहे अंतरलौं लाइ रे।

केवल विगत भया रे, प्रगटी जोति सुभाइ रे॥

प्रगटी जोति सुभाइ रे जिवडे, मिथ्यारैन विहानी।

सुपरभेदकारण जिन मिलिया, ते जगि हूवा णाणी॥

सुगरु सुधर्म पंचपरमेष्टी, तिनके लागौं पाय रे।

कहै दरिगह जिन त्रिभुवन सेवै, रहै अंतरलौं लायरे ॥४॥

(२)

जिया जगतके राय, सकति सँभालहु आपनी।

तिहुंअण लागहि पाय, मुकति मिलै वर कामिनी॥

भमियौ काल अनादि, दुख देख्यौ सुख ना लहै।

रहियौ जगतहिं छाय, आठ करम अरि संग्रहै॥

संग्रहै करम अचेत जड़मय, लाज तुमहि न दीजिये।

निरग्रंथ गुरु दे कर विंजंपु (?), सुकिन सो घर कीजिये॥

तिहु वंअसहित त्रिकाल माया, मान संजम गद पिया।

आपणी सकति सँभाल अतिवल, जगतके राएँ जिया॥१॥

तुम विन अवर न कोइ, तुमको कोइ न आपनौ।

मीत नचीत न सोइ, काज महा सिर है घनौ॥

साधत शिव सिधि होइ, वासौं शिवपुर पाइए।

जंपौ जिनवर देव, जिनवयणनि मन लाइए॥

मन लाय वयणनि जिनपजंपौ, परय परिगह परिहरै।

अरहंतदेव समान निहचै, सदा आपौ अनुसरै॥

---

१ ज्ञानी। २ त्रिभुवन। ३ राजा। ४ कहा है। ५ जिनदेवका कहा हुआ।

विष-सरिस इंद्रिय विषय माया, अथिर पुद्गल परियणु[1] ।
आपनौ अवर न कोइ जाणौ, जिया तुझको तुज्झविणु[2] ॥ २ ॥
चलु चलु पूर्वविदेह, रतनत्रय आराहिए[3] ।
औतरि श्रावग गेहि, आठवरसमहि साहिए[4] ॥
करि तपु तीनहुँ काल गिरिसिरि तरुतलि वासिए ।
दुःसह सहि दुख झाल, केवलज्ञान पयासिए ॥
सहि दुसह झाल पयासि केवल, कम्म गहि तू कूडओ ।
चढि लोयँ-सिहरि पलोय तिहुवण, थान संगहि रूडओ ॥
वसु गुण विराडणि (?) काय माया, सुद्धपय सिद्धहँ मिलु ।
पूरव विदेह विदेह अविचल, वेगि रे जिय चलु चलु ॥ ३ ॥
सोहं सोहं देव, निवसौ काया-देहुरै ।
लांधौ भवियण भेव, मेरो करम कहा करै ॥
जा सरि पुन्न न पाप, राउ विसाउ न हौं करो ।
१०
... ... ॥
सांभलहु परम जिणंद जगगुरु, जीव अति गुणसुंदरो ।
आदिरहित अनंत सोहं, ज्ञानसुखगुणमंदिरो ॥
दीनौं दिखाई पसाइ तुझको, गह्यौ गुड़ जिमि रंकवो ।
काय देहुरौ कहै साहणु, सोहं सोहं देव सो ॥ ४ ॥

इति चतुर्थ भाग समाप्त ।

---

१ परिजन-परिवारके लोग । २ तेरे विना । ३ आराधिये । ४ साधिये । ५ आंच । ६ प्रकाशियें । ७ लोक शिखर । ८ सुन्दर । ९ लाधना अर्थात् प्राप्त करना । १० यहां एक चरण रह गया है ।

पृथक् २ पढानी पड़ती हैं सो हमने इन विषयोंका इन भागोंमेंही यथास्थान पर समावेश कर दिया है जिससे कोई पुस्तक जुदी न पढाकर इस एक पुस्तकके पढानेसे ही समस्त विषयोंका ज्ञान प्राप्त हो जायगा। हां! हिंदी व्याकरण व गणित मात्र जुदा अवश्य पढाना पड़ैगा और अंगरेजी पढाना हो तो इस चौथेभागको पढानेके बाद संस्कृतकी प्रवेशिकादि कक्षाओंमें पढाना ठीक होगा।

ये सब विषय हमने वंबई जैन यूनिवर्सिटी वा मालवा प्रांतिक जैन यूनिवार्सिटी और गोपालजैनसिद्धांतविद्यालयके पठन क्रमानुसार ही रक्खे हैं। अतएव इन सबके पठन क्रममें इन भागोंको रखकर परीक्षा लेनेका प्रचार करेंगे तो यह श्रम सार्थक समझा जायगा।

निवेदक—

मोरेना—१—६—१९१२ ई०] पन्नालाल बाकलीवाल।

Printed and Published by
Srilal Jain
at the JAIN SIDDHANT PRAKASHAK PRESS,
9, Visvakosha Lane, Baghazar—CALCUTTA.